विनय तथा भक्ति

मंगलाचरण

चरन-कमल बंदौं हरि-राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कों सब कछु दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहिं पाइ ।।१।।

सगुणोपासना

अबिगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगै मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै।
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै ।।२।।

भक्त-वत्सलता

बासुदेव की बड़ी बड़ाई।
जगत-पिता, जगदीस, जगत-गुरु, निज भक्तनि की सहत ढिठाई।
भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर, बोले बचन सकल-सुखदाई।
सिव-बिरंचि मारन कौं धाए, यह गति काहू देव न पाई।
बिनु बदलैं उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई।
रावन अरि कौ अनुज बिभीषन, ताकौं मिले भरत की नाई।
बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई।
बिनु दीन्हैं ही देत सूर-प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं ।।३।।

प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ।
अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनि राइ।
तिनका सौं अपने जनकौ गुन मानत मेरु-समान।
सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूँद-तुल्य भगवान।
बदन-प्रसन्न कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसैं।
बिमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिरि चितयौं तौ तैसैं!

भक्त-बिरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे।
सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे॥४॥

राम भक्तबत्सल निज बानौं।
जाति, गोत, कुल, नाम, गनत नहिँ, रंक होइ कै रानौं।
सिव-ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु, हौं अजान नहिँ जानौं।
हमता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं, सो हमता क्यौं मानौं?
प्रगट खंभ तैं दए दिखाई, जद्यपि कुल कौ दानौ।
रघुकुल राघव कृष्न सदा ही गोकुल कीन्हौं थानौ।
बरनि न जाइ भक्त की महिमा, बारंबार बखानौं।
ध्रुव रजपूत, बिदुर दासी-सुत कौन कौन अरगानौ।
जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, भक्तनि हाथ बिकानौ।
राजसूय मैं चरन पखारे स्याम लिए कर पानौ।
रसना एक, अनेक स्याम-गुन, कहँ लगि करौं बखानौ!
सूरदास-प्रभु की महिमा अति, साखी बेद पुरानौ॥५॥

काहू के कुल तन न विचारत।
अबिगत की गति कहि न परति है, ब्याध अजामिल तारत।
कौन जाति अरु पाँति बिदुर की, ताही कैं पग धारत।
भोजन करत माँगि घर उनकैं, राज मान-मद टारत।
ऐसे जनम-करम के ओछे, ओछनि हूँ ब्यौहारत।
यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त-बछल-पन पारत॥६॥

सरन गए को को न उबार्‌यौ।
जब जब भीर परी संतनि कौं, चक्र सुदरसन तहाँ सँभार्‌यौ।
भयौ प्रसाद जु अंबरीष कौं, दुरबासा कौ क्रोध निवार्‌यौ।
ग्वालनि हेत धर्‌यौ गोबर्धन, प्रकट इंद्र कौ गर्ब प्रहार्‌यौ।
कृपा करी प्रहलाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मार्‌यौ।
नरहरि रूप धर्‌यौ करुनाकर, छिनक माहिँ उर नखनि बिदार्‌यो।
ग्राह ग्रसत गज कौं जल बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख टार्‌यौ।
सूर स्याम बिनु और करै को, रंग-भूमि मैं कंस पछार्‌यौ॥७॥

स्याम गरीबनि हूँ के गाहक।
दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निवाहक।
कहा बिदुर की जाति-पाँति, कुल, प्रेम-प्रीति के लाहक।

कह पांडव कैं घर ठकुराई ? अरजुन के रथ-वाहक।
कहा सुदामा कैं धन हौ ? तौ सत्य-प्रीति के चाहक।
सूरदास सठ, तातैं हरि भजि आरत के दुख-दाहक ॥८॥

जैसैं तुम गज कौ पाउँ छुड़ायौ।
अपने जन कौं दुखित जानि कै पाउँ पियादे धायौ।
जहँ जहँ गाढ़ परी भक्तनि कौं, तहँ तहँ आपु जनायौ।
भक्ति हेत प्रहलाद उबारयौ, द्रौपदि-चीर बढ़ायौ।
प्रीति जानि हरि गए बिदुर कैं, नामदेव-घर छायौ।
सूरदास द्विज दीन सुदामा, तिहिँ दारिद्र नसायौ ॥९॥

जापर दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन, बड़ौ सुंदर सोइ, जिहिँ पर कृपा करै।
कौन बिभीषन रंक निसाचर, हरि हँसि छत्र धरै।
राजा कौन बड़ौ रावन तैं, गर्बहिँ-गर्ब गरै।
रंकव कौन सुदामाहूँ तैं आप समान करै।
अधम कौन है अजामील तैं, जम तहँ जात डरै।
कौन बिरक्त अधिक नारद तैं, निसि-दिन भ्रमत फिरै।
जोगी कौन बड़ौ संकर तैं, ताकौं काम छरै।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा तैं, हरि पति पाइ तरै।
अधिक सुरूप कौन सीता तैं, जनम बियोग भरै।
यह गति-मति जानै नहिं कोऊ, किहिँ रस रसिक ढरै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु फिरि फिरि जठर जरै ॥१०॥

अविद्या माया

बिनती सुनौ दीन की चित दै, कैसैं तुव गुन गावै ?
माया नटी लकुटि कर लीन्हें कोटिक नाच नचावै।
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वाँग बनावै।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै।
मन अभिलाष-तरंगनि करि करि, मिथ्या निसा जगावै।
सोवत सपने मैं ज्यौं संपति, त्यौं दिखाइ बौरावै।
महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहिं लगावै।
ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै, लै पर-पुरुष दिखावै।

मेरे तो तुम पति, तुमहीं गति, तुम समान को पावै ?
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, को मो दुख बिसरावै ॥११॥

हरि, तेरौ भजन कियौ न जाइ ।
कह करौं, तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ ।
जबै आवौं साधु-संगति, कछुक मन ठहराइ ।
ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता, बहुरि बहै सुभाइ ।
बेष धरि धरि हर्यौ पर-धन, साधु-साधु कहाइ ।
जैसे नटवा लोभ-कारन करत स्वाँग बनाइ ।
करौं जतन, न भजौं तुमकौं, कछुक मन उपजाइ ।
सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहि भुलाइ ॥१२॥

गुरु महिमा

गुरु बिनु ऐसी कौन करै ?
माला-तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै ।
भवसागर तैं बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै ।
सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ, छिन मैं ले उधरै ॥१३॥

नाम महिमा

हमारे निर्धन के धन राम ।
चोर न लेत, घटत नहिं कबहूँ, आवत गाढ़ैं काम ।
जल नहिँ बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसौ हरि-नाम ।
बैकुँठनाथ सकल सुख-दाता, सूरदास-सुख-धाम ॥१४॥

बड़ी है राम नाम की ओट ।
सरन गऐं प्रभु काढ़ि देत नहिँ, करत कृपा कैं कोट ।
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट ?
सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट ॥१५॥

जो सुख होत गुपालहिँ गाऐं ।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हैं, कोटिक तीरथ न्हाऐं ।
दिऐं लेत नहिँ चारि पदारथ, चरन-कमल चित लाऐं ।
तीनि लोक तृन-सम करि लेखत, नंद-नँदन उर आऐं ।
बंसीबट, बृंदाबन, जमुना तजि बैकुंठ न जावै ।
सूरदास हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव-जल आवै ॥१६॥

बिनती

बंदौं चरन-सरोज तिहारे।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान-पियारे।
जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु-सुता उर तैं नहिं टारे।
जे पद-पदुम तात-रिस-त्रासत, मन-बच-क्रम प्रहलाद सँभारे।
जे पद-पदुम-परस-जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत अघ भारे।
जे पद-पदुम-परस रिषि-पतिनी बलि, नृग, ब्याध, पतित बहु तारे।
जे पद-पदुम रमत बृंदाबन अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे।
जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनि सरबस दै, सुत-सदन बिसारे।
जे पद-पदुम रमत पांडव-दल दूत भए, सब काज सँवारे।
सूरदास तेई पद-पंकज त्रिबिध-ताप-दुख-हरन हमारे ॥१७॥

अब कैं राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान।
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयौ आनि यह, कौन उबारै प्रान?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान।
सूरदास सर लग्यौ सचानहिं, जय-जय कृपानिधान ॥१८॥

आछौ गात अकारथ गार्‌यौ।
करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जनम जुवा ज्यौं हार्‌यौ।
निसि-दिन बिषय-बिलासनि बिलसत, फूटि गईं तब चार्‌यौ।
अब लाग्यौ पछितान पाइ दुख, दीन, दई कौ मार्‌यौ।
कामी, कृपन, कुचील, कुदरसन, को न कृपा करि तार्‌यौ।
तातैं कहत दयाल देव-मनि, काहैं सूर बिसार्‌यौ? ॥१९॥

तुम बिनु भूलोइ भूलौ डोलत।
लालच लागि कोटि देवन के, फिरत कपाटनि खोलत।
जब लगि सरबस दीजै उनकौं, तबहीं लगि यह प्रीति।
फल माँगत फिरि जात मुकर ह्वै, यह देवनि की रीति।
एकनि कौं जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैंकु न तूठे।
तब पहिचानि सबनि कौं छाँड़े, नख-सिख लौं सब झूठे।
कंचन मनि तजि काँचहिं सैंतत, या माया के लीन्हे।
चारि पदारथ हूँ कौ दाता, सु तौ बिसर्जन कीन्हे।

तुम कृतज्ञ, करुनामय, केसव, अखिल लोक के नायक ।
सूरदास हम दृढ़ करि पकरे, अब ये चरन सहायक ॥२०॥

आजु हौं एक-एक टरिहौं ।
कै तुमहीँ, कै हमहीँ माधौ, अपने भरोसैँ लरिहौँ ।
हौँ तो पतित सात पीढ़िनि कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौँ ।
अब हौँ उघरि नच्यौ चाहत हौँ, तुम्हैँ बिरद बिन करिहौँ ।
कत अपनी परतीति नसावत, पायौ हरि हीरा ।
सूर पतित तबहीं उठिहै, प्रभु जब हँसि दैहौ बीरा ॥२१॥

प्रभु, हौँ सब पतितन कौ टीकौ ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौँ तौ जनमत ही कौ ।
बधिक अजामिल, गनिका तारी और पूतना ही कौ ।
मोहिँ छाँड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यौँ जी कौ ?
कोउ न समरथ अघ करिबे कौँ, खैँचि कहत हौँ लीको ।
मरियत लाज सूर पतितनि में, मोहूँ तैँ को नीकौ ! ॥२२॥

अब मैँ नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल ।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल ।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल ।
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिँ काल ।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नंदलाल ॥२३॥

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ ।
इक लोहा पूजा मैँ राखत, इक घर बधिक परौ ।
सो दुबिधा पारस नहिँ जानत, कंचन करत खरौ ।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ ।
जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै, गंगा नाम परौ ।
तन माया, ज्यौं ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ ।
कै इनकौ निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ ॥२४॥

भगवदाश्रय

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसैं उड़ि जहाज को पच्छी, फिरि जहाज पर आवै।
कमल-नैन कौ छाँड़ि महातम, और देव कौं ध्यावै॥
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल भावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥२५॥

हमैं नँदनंदन मोल लिये।
जम के फंद काटि मुकराए, अभय अजाद किये।
भाल तिलक, स्रबननि तुलसीदल, मेटे अंक बिये।
मूँड्यौ मूँड़, कंठ बनमाला, मुद्रा-चक्र दिये।
सब कोउ कहत गुलाम स्याम कौ, सुनत सिरात हिये।
सूरदास कौं और बड़ौ सुख, जूठनि खाइ जिये॥२६॥

राखौ पति गिरिवर गिरि-धारी!
अब तौ नाथ, रह्यौ कछु नाहिन, उघरत नाथ अनाथ पुकारी।
बैठी सभा सकल भूपनि की, भीषम-द्रोन-करन ब्रतधारी।
कहि न सकत कोउ बात बदन पर, इन पतितनि मो अपति बिचारी।
पांडु-कुमार पवन से डोलत, भीम गदा कर तैं महि डारी।
रही न पैज प्रबल पारथ की, जब तैं धरम-सुत धरनी हारी।
अब तौ नाथ न मेरौ कोई, बिनु श्रीनाथ-मुकुंद-मुरारी।
सूरदास अवसर के चूकैं फिरि पछितैहौ देखि उघारी॥२७॥

भावी

करी गोपाल की सब होइ।
जो अपनौ पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोइ।
साधन, मंत्र, जंत्र, उद्यम, बल, ये सब डारौ धोइ।
जो कछु लिखि राखी नँदनंदन, मेटि सकै नहिं कोइ।
दुख-सुख, लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरत हौ रोइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, स्याम-चरन मन पोइ॥२८॥

होत सो जो रघुनाथ ठटै।
पचि-पचि रहैं सिद्ध, साधक, मुनि, तऊ न बढ़ै-घटै।
जोगी जोग धरत मन अपनैं, सिर पर राखि जटै।
ध्यान धरत महादेव ऽरु ब्रह्मा, तिनहूँ पै न छटै।

जती, सती, तापस आराधैं, चारौं बेद रटै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, करम-फाँस न कटै ॥२९॥

भावी काहू सौं न टरे।
कहँ वह राहु, कहाँ वे रवि ससि, आनि सँजोग परै!
मुनि बसिष्ट पंडित अति ज्ञानी, रचि-पचि लगन धरै।
तात-मरन, सिय-हरन, राम बन बपु धरि बिपति भरै।
रावन जीति कोटि तैंतीसौ, त्रिभुवन राज करै।
मृत्युहिं बाँधि कूप मैं राखै, भावी-बस सो मरै।
अरजुन के हरि हुते सारथी, सोऊ बन निकरै।
द्रुपद-सुता कौ राजसभा, दुस्सासन चीर हरै।
हरीचंद सो को जगदाता, सो घर नीच भरै।
जौ गृह छाँड़ि देस बहु धावै, तउ वह संग फिरै।
भावी कैं बस तीन लोक हैं, सुर नर देह धरै।
सूरदास प्रभु रची सु ह्वै है, को करि सोच मरै ॥३०॥

तातैं सेइयै श्री जदुराइ।
संपति बिपति, बिपति तैं संपति, देह कौ यहै सुभाइ!
तरुवर फूलै, फरै, पतझरै, अपने कालहिं पाइ।
सरवर नीर भरै भरि, उमड़ै, सूखै, खेह उड़ाइ।
दुतिया चंद बढ़त ही बाढ़ै, घटत-घटत घटि जाइ।
सूरदास संपदा-आपदा, जिनि कोऊ पतिआइ ॥३१॥

वैराग्य

किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए।
पर-निंदा रसना के रस करि, केतिक जनम बिगोए।
तेल लगाइ कियौ रुचि-मर्दन, बस्तर मलि-मलि धोए।
तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै, विषयिनि के मुख जोए।
काल बली तैं सब जग काँप्यौ, ब्रह्मादिक हूँ रोए।
सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे, परि सोए ॥३२॥

नर तैं जनम पाइ कह कीनो?
उदर भरयौ कूकर सूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ।
श्री भागवत सुनी नहिं श्रवननि, गुरु गोबिंद नहिं चीनौ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया मैं दीनौ।

झूठौ सुभ] अपनौ करि जान्यो, परस प्रिया कैं भीनौ ।
अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बलहीनौ ।
लख चौरासी जोनि भरमि कै, फिरि वाहीं मन दीनौ ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु ज्यौं अंजलि-जल छीनौ ॥३३॥

इत-उत देखत जनम गयौ ।
या झूठी माया कैं कारन, दुहुँ दृग अंध भयौ ।
जनम-कष्ट तैं मातु दुखित भई, अति दुख प्रान सह्यौ ।
वै त्रिभुवनपति बिसरि गए तोहिं, सुमिरत क्यौं न रह्यौ ।
श्रीभागवत सुन्यौ नहिं कबहूँ, बीचहिं भटकि मर्‌यौ ।
सूरदास कहै, सब जग बूड़्यौ, जुग-जुग भक्त तर्‌यौ ॥३४॥

सबै दिन गए बिषय के हेत ।
तीनौं पन ऐसैं हीं खोए, केस भए सिर सेत ।
आँखिनि अंध, स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत ।
गंगा-जल तजि पियत कूप-जल, हरि तजि पूजत प्रेत ।
मन बच-क्रम जौ भजे स्याम कौं, चारि पदारथ देत ।
ऐसौ प्रभू छाँड़ि क्यौं भटकै, अजहूँ चेति अचेत ।
राम नाम बिनु क्यौं छूटौगे, चंद गहैं ज्यौं केत ।
सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत ॥३५॥

द्वै मैं एकौ तौ न भई ।
ना हरि भज्यौ, न गृह सुख पायौ, बृथा बिहाइ गई ।
ठानी हुती और कछु मन मैं, औरै आनि ठई ।
अबिगत-गति कछु समुझि परत नहिं, जो कछु करत दई ।
सुत सनेहि-तिय सकल कुटुँब मिलि, निसि-दिन होत खई ।
पद-नख-चंद चकोर बिमुख मन, खात अँगार मई ।
विषय-बिकार-दवानल उपजी, मोह-बतारि लई ।
भ्रमत-भ्रमत बहुतै दुख पायौ, अजहुँ न टेँव गई ।
होत कहा अबके पछिताएँ, बहुत बेर बितई ।
सूरदास सेये न कृपानिधि, जो सुख सकल मई ॥३६॥

अब मैं जानी, देह बुढ़ानी ।
सीस, पाउँ, कर कह्यौ न मानत, तन की दसा सिरानी ।
आन कहत, आनै कहि आवत, नैन-नाक बहै पानी ।

मिटि गइ चमक-दमक अँग-अँग की, मति अरु दृष्टि हिरानी।
नाहिँ रही कछु सुधि तन-मन की, भई जु बात बिरानी।
सूरदास अब होत बिगूचनि, भजि लै सारँगपानी ॥३७॥

मन प्रबोध

सब तजि भजिऐ नंद कुमार।
और भजे तैँ काम सरै नहिँ, मिटै न भव जंजार।
जिहिँ जिहिँ जौनि जन्म धार्‌यौ, बहु जोर्‌यौ अघ कौ भार।
तिहिँ काटन कौँ समरथ हरि कौ तीछन नाम-कुठार।
बेद, पुरान, भागवत, गीता, सब कौ यह मत सार।
भव समुद्र हरि-पद-नौका बिनु कोउ न उतारै पार।
यह जिन जानि, इहीँ छिन भजि, दिन बीते जात असार।
सूर पाइ यह समौ लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार ॥३८॥

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैँ।
या देही कौ गरब न करियै, स्यार-काग-गिध खैहैँ।
तीननि मैँ तन कृमि, कै बिष्टा, कै ह्वै खाक उड़ैहै।
कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रँग-रूप दिखैहै।
जिन लोगनि सौँ नेह करत है, तेई देखि घिनैहैँ।
घर के कहत सबारे काढ़ौ, भूत होइ धरि खैहैँ।
जिन पुत्रनिहिँ बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी-देव मनैहैँ।
तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैहैँ।
अजहूँ मूढ़ करौ सतसंगति, संतनि मैँ कछु पैहै।
नर-बपु धारि नाहिँ जन हरि कौँ, जम की मार सो खैहै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु बृथा सु जनम गँवैहै ॥३९॥

तिहारौ कृष्न कहत कह जात ?
बिछुरैँ मिलन बहुरि ह्वै है, ज्यौँ तरवर के पात।
सीत-बात-कफ कंठ बिरोधै, रसना टूटै बात।
प्रान लए जम जात, मूढ़-मति देखत जननी-तात।
छन इक माहिँ कोटि जुग बीतत, नर की केतिक बात ?
यह जग-प्रीति सुवा-सेमर ज्यौं, चाखत ही उड़ि जात।

जमकैँ फंद पर्‌यौ नहिं जब लगि, चरननि किन लपटात?
कहत सूर बिरथा यह देही, एतौ कत इतरात ॥४०॥

मन, तोसौं किती कही समुझाइ।
नंदनँदन के चरन कमल भजि तजि पाखँड-चतुराइ।
सुख-संपति, दारा-सुत, हय-गय, छूट सबै समुदाइ।
छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु, अंत नाहिँ सँग जाइ।
जनमत-मरत बहुत जुग बीते, अजहूँ लाज न आइ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जैहै जनम गँवाइ ॥४१॥

धोखैँ ही धोखै डहकायौ
समुझि न परी, विषय-रस गीध्यौ, हरि-हीरा घर माँझि गँवायौ।
ज्यौं कुरंग जल देखि अवनि कौ, प्यास न गई चहूँ दिसि धायौ।
जनम-जनम बहु करम किए हैँ, तिनमैं आपुन आपु बँधायौ।
ज्यौं सुक सेमर सेव आस लगि; निसि-बासर हठि चित्त लगायौ।
रीतौ पर्‌यौ जबै फल चाख्यौ, उड़ि गयौ तूल, ताँवरौ आयौ।
ज्यौं कपि डोरि बाँधि बाजीगर, कन-कन कौं चौहटैं नचायौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, काल-ब्याल पै आपु डसायौ ॥४२॥

भक्ति कब करिहौ, जनम सिरानौ।
बालापन खेलतहीं खोयौ, तरुनाई गरबानौ।
बहुत प्रपंच किए माया के, तऊ न अधम अघानौ।
जतन जतन करि माया जोरी, लै गयौ रंक न रानौ।
सुत-वित-बनिता-प्रीति लगाई, झूठे भरम भुलानौ।
लोभ-मोह तैँ चेत्यौ नाहीँ, सुपनैँ ज्यौँ डहकानौ।
बिरध भएँ कफ कंठ बिरोध्यौ, सिर धुनि धुनि पछितानौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जम कैँ हाथ बिकानौ ॥४३॥

तजौ मन, हरि बिमुखनि कौ संग।
जिनकैँ संग कुमति उपजति है, परत भजन मैँ भंग।
कहा होत पय-पान कराएँ, बिष नहिँ तजत भुजंग।
कागहिँ कहा कपूर चुगाएँ, स्वान न्हवाएँ गंग।
खर कौं कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन-अंग।
गज कौं कहा सरित अन्हवाएँ, बहुरि धरै वह ढंग।

पाहन पतित बान नहिँ बेधत, रीतौ करत निषंग।
सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौ रंग ॥४४॥

रे मन मूरख जनम गँवायौ।
करि अभिमान विषय-रस गीध्यौ स्याम-सरन नहिँ आयौ।
यह संसार सुवा-सेमर ज्यौँ, सुंदर देखि लुभायौ।
चाखन लाग्यौ रुई गई उड़ि हाथ कछू नहिँ आयौ।
कहा होत अब के पछिताएँ पहिलैँ पाप कमायौ।
कहत सूर भगवंत-भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायौ ॥४५॥

चित्-बुद्धि-संवाद

चकई री, चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम वियोग।
जहँ भ्रम-निसा होति नहिँ कबहूँ, सोइ सायर सुख जोग।
जहाँ सनक-सिव हंस, मीन मुनि, नख रवि-प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिँ ससि-डर, गुंजत निगम सुवास।
जिहिँ सर सुभग-मुक्ति-मुक्ताफल, सुकृत-अमृत-रस पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि विहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै ॥
लछमी-सहित होति नित क्रीड़ा, सोभित सूरजदास।
अब न सुहात विषय-रस-छीलर, वा समुद्र की आस ॥४६॥

सुवा, चलि ता बन कौ रस पीजै।
जा बन राम-नाम अम्रित-रस, स्रवन-पात्र भरि लीजै।
को तेरौ पुत्र, पिता तू काकौ, घरनी, घर कौ तेरौ?
काग-सृगाल-स्वान कौ भोजन, तू कहै मेरौ मेरौ!
बन बारानिसि मुक्ति-क्षेत्र है, चलि तोकौँ दिखराऊँ।
सूरदास साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊँ ॥४७॥

हरिविमुख-निंदा

अचंभौ इन लोगनि कौ आवै।
छाँड़ैँ स्याम-नाम-अम्रित फल, माया-विष-फल भावै।
निंदत मूढ़ मलय चंदन कौँ, राख अंग लपटावै।
मानसरोवर छाँड़ि हंस तट काग-सरोवर न्हावै।
पग तर जरत न जानै मूरख, घर तजि घूर बुझावै।
चौरासी लख जोनि स्वाँग धरि, भ्रमि-भ्रमि जमहिँ हँसावै।

मृगतृष्ना आचार-जगत जल, ता सँग मन ललचावै।
कहतु जु सूरदास संतनि मिलि हरि जस काहे न गावै ! ॥४८॥

भजन बिनु कूकर-सूकर जैसौ।
जैसैं घर बिलाव के मूसा, रहत विषय-बस वैसौ।
बग-बगुली अरु गीध-गीधिनी, आइ जनम लियौ तैसौ।
उनहूँ कैं गृह, सुत, दारा हैं, उन्हैं भेद कहु कैसौ ?
जीव मारि कै उदर भरत हैं, तिनकौ लेखौ ऐसौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मनौ ऊँट-बृष-भैंसौ ॥४९॥

सत्संग-महिमा

जा दिन संत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करैं फल जैसौ दरसन पावत।
नयौ नेह दिन-दिन प्रति उनकैं चरन-कमल चित लावत।
मन-बच कर्म और नहिँ जानत, सुमिरत औ सुमिरावत।
मिथ्याबाद-उपाधि-रहित ह्वै, विमल-बिमल जस गावत।
बंधन कर्म कठिन जे पहिले, सोऊ काटि बहावत।
संगति रहैं साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत।
सूरदास संगति करि तिनकी, जे हरि-सुरति करावत ॥५०॥

स्थितप्रज्ञ

हरि-रस तौऽव जाइ कहुँ लहियै।
गऐं सोच आऐं नहिँ आनँद, ऐसौ मारग गहियै।
कोमल बचन, दीनता सब सौं, सदा अनंदित रहियै।
बाद-बिवाद, हर्ष-आतुरता, इतौ द्वंद जिय सहियै।
ऐसी जो आवै या मन मैं, तौ सुख कहँ लौं कहियै।
अष्ट सिद्धि, नव निधि, सूरज प्रभु, पहुँचै जो कछु चहियै ॥५१॥

जौ लौं मन-कामना न छूटै।
तौ कहा जोग-जज्ञ-ब्रत कीन्हैं, बिनु कन तुस कौं कूटै।
कहा सनान कियैं तीरथ के, अंग भस्म जट जूटै ?
कहा पुरान जु पढ़ैं अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटैं।
जग सोभा की सकल बड़ाई इनतैं कछू न खूटै।
करनी और, कहै कछु औरै, मन दसहूँ दिसि टूटै।

काम, क्रोध, मद, लोभ सत्रु हैं, जो इतननि सौं छूटै ।
सूरदास तबहीं तम नासै, ज्ञान-अगिनि-झर फूटै ॥४२॥

आत्मज्ञान

आपुनपौ आपुन ही बिसरयौ ।
जैसें स्वान काँच-मंदिर मैं, भ्रमि-भ्रमि भूकि परयौ ।
ज्यौं सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम-तृन सूँघि फिरयौ ।
ज्यौं सपने मैं रंक भूप भयौ, तसकर अरि पकरयौ ।
ज्यौं केहरि प्रतिबिंब देखि कै, आपनु कूप परयौ ।
जैसैं गज लखि फटिकसिला मैं, दसननि जाइ अरयौ ।
मर्कट मूँठि छाँड़ि नहीं दीनी, घर-घर-द्वार फिरयौ ।
सूरदास नलिनी कौ सुवटा, कहि कौनैं पकरयौ ॥४३॥

आपुनपौ आपुन ही मैं पायौ ।
सब्दहि सब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ ।
ज्यौं कुरंग-नाभी कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायौ ।
फिरि चितयौ जब चेतन ह्वै करि, अपनैं ही तन छायौ ।
राज-कुमारि कंठ-मनि-भूषन भ्रम भयौ कहूँ गँवायौ ।
दियौ बताइ और सखियनि तब, तनु कौ ताप नसायौ ।
सपने माहिं नारि कौं भ्रम भयौ, बालक कहूँ हिरायौ ।
जागि लख्यौ, ज्यौं कौ त्यौं ही है, ना कहुँ गयौ न आयौ ।
सूरदास समुझे की यह गति, मनहीं मन मुसुकायौ ।
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यौं गूँगैं गुर खायौ ॥४४॥

गोकुल लीला

कृष्ण जन्म

आनंदै आनंद बढ़्यौ अति ।
देवनि दिवि दुंदभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति ।
विद्याधर-किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति ।
गावत गुन गंधर्व पुलकि तन, नाचतिँ सब सुर-नारि रसिक अति ।
बरषत सुमन सुदेस सूर सुर, जय-जयकार करत, मानत रति ।
सिव-बिरञ्चि-इन्द्रादि अमर मुनि, फूले सुख न समात मुदित मति ॥१॥

देवकी मन मन चकित भई ।
देखहु आइ पुत्र-मुख काहे न, ऐसी कहुँ देखी न दई ।
सिर पर मुकुट, पीत उपरैना, भृगु-पद उर, भुज चारि धरे ।
पूरब कथा सुनाइ कही हरि, तुम माँग्यौ इहिँ भेष करे ।
छोरे निगड़, सोआए पहरू, द्वारे कौ कपाट उघर्‌यौ ।
तुरत मोहिं गोकुल पहुँचावहु, यह कहिकै सिसु वेष धर्‌यौ ।
तब बसुदेव उठे यह सुनतहिँ, हरषवंत नँद-भवन गए ।
बालक धरि, लै सुरदेवी कौँ, आइ सूर मधुपुरी ठए ॥२॥

गोकुल प्रगट भए हरि आइ ।
अमर-उधारन, असुर-सँहारन, अंतरजामी त्रिभुवन राइ ।
माथैँ धरि बसुदेव जु ल्याए, नंद-महर-घर गए पहुँचाइ ।
जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर मैँ न समाइ ।
गदगद कंठ, बोलि नहिँ आवै, हरषवंत ह्वै नंद बुलाइ ।
आवहु कंत, देव परसन भए, पुत्र भयौ, मुख देखौ धाइ ।
दौरि नंद गए, सुत-मुख देख्यौ, सो सुख मोपै बरनि न जाइ ।
सूरदास पहिलैँ ही माँग्यौ, दूध पियावन जसुमति माइ ॥३॥

हौँ इक नई बात सुनि आई ।
महरि जसौदा ढोटा जायौ, घर-घर होति बधाई ।
द्वारैँ भीर गोप-गोपिनि की, महिमा बरनि न जाई ।
अति आनंद होत गोकुल मैँ, रतन भूमि सब छाई ।

नाचत वृद्ध, तरुन अरु बालक, गोरस-कीच मचाई ।
सूरदास स्वामी सुख-सागर, सुंदर स्याम कन्हाई ॥४॥

आजु नंद के द्वारैं भीर ।
इक आवत, इक जात बिदा ह्वै, इक ठाढ़े मंदिर कैं तीर ।
कोउ केसरि कौ तिलक बनावति, कोउ पहिरति कंचुकी सरीर ।
एकनि कौं गौ-दान समर्पत, एकनि कौं पहिरावत चीर ।
एकनि कौं भूषन पाटंबर, एकनि कौं जु देत नग हीर ।
एकनि कौं पुहुपनि की माला, एकनि कौं चंदन घसि नीर ।
एकनि माथैं दूब-रोचना, एकनि कौं बोधति दै धीर ।
सूरदास धनि स्याम सनेही, धन्य जसोदा पुन्य-सरीर ॥५॥

सोभा-सिंधु न अंत रही री ।
नंद-भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति बही री ।
देखी जाइ आजु गोकुल मैं, घर-घर बेंचति फिरति दही री ।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत बिधि, कहत न मुख सहसहुं निबही री ।
जसुमति-उदर-अगाध-उदधि तैं, उपजो ऐसी सबनि कही री ।
सूरस्याम प्रभु इंद्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाइ गही री ॥६॥

शैशव चरित

जसोदा हरि पालनैं झुलावै ।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै ।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै ।
तू काहैं नहिं बेगहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै ।
कबहुँक पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावै ।
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै ।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नँद भामिनि पावै ॥७॥

कपट करि ब्रजहिं पूतना आई ।
अति सुरूप, बिष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई ।
मुख चूमति अरु नैन निहारति, राखति कंठ लगाई ।
भाग बड़े तुम्हरे नन्दरानी, जिहिं के कुँवर कन्हाई ।
कर गहि छीर पियावति अपनौ, जानत केसवराई ।
बाहर ह्वै कै असुर पुकारी, अब बलि लेहु छुड़ाई ।

गइ मुरझाइ, परी धरनी पर, मनौ भुवंगम खाई।
सूरदास प्रभु तुम्हरी लीला, भक्तनि गाइ सुनाई ॥८॥

काग-रूप इक दनुज धर्‌यौ।
नृप-आयसु लै धरि माथे पर, हरषवंत उर गरब भर्‌यौ।
कितिक बात प्रभु तुम आयसु तैं, वह जानौ मो जात मर्‌यौ।
इतनी कहि गोकुल उड़ि आयौ, आइ नंद-घर-छाज रह्यौ।
पलना पर पौढ़े हरि देखे, तुरत आइ नैननिहिं अर्‌यौ।
कंठ चापि बहुबार फिरायौ, गहि पटक्यौ, नृप पास पर्‌यौ।
तुरत कंस पूछन तिहिं लाग्यौ, क्यौं आयौ नाहिं काज कर्‌यौ ?
बीतैं जाम बोलि तब आयौ, सुनहु कंस, तव आइ सर्‌यौ।
धरि अवतार महाबल कोऊ एकहिं कर मेरौ गर्व हर्‌यौ।
सूरदास प्रभु कंस-निकंदन, भक्त-हेत अवतार धर्‌यौ ॥९॥

कर पग गहि, अँगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालनैं अकेले, हरषि-हरषि अपनैं रङ्ग खेलत।
सिव सोचत, बिधि बुद्धि विचारत, बट बाढ़्यौ सागर-जल झेलत।
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग दंतीनि सकेलत।
मुनि मन भीत भए, भुव कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज-बासिनि बात न जानी, समुझे सूर सकट पग ठेलत ॥१०॥

महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी।
चिरजीवौ मेरौ लाड़िलौ, मैं भई सभागी।
एक पाख त्रय-मास कौ मेरौ भयौ कन्हाई।
पटकि रान उलटौ पर्‌यौ, मैं करौं बधाई।
नन्द-घरनि आनन्द भरी, बोलीं ब्रजनारी।
यह सुख सुनि आईं सबै, सूरज बलिहारी ॥११॥

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरौ लाल घुटुरुवनि रेंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै।
कब द्वै दाँत दूध के देखौं, कब तोतरैं मुख बचन झरै।
कब नंदहिं बाबा कहि बोलै, कब जननी कहि मोहिं ररै।
कब मेरौ अँचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौं झगरै।
कब धौं तनक-तनक कछु खैहै, अपने कर सौं मुखहिं भरै।

कब हँसि बात कहैगो मोसैं, जा छबि तैं दुख दूरि हरै।
स्याम अकेले आँगन छाँड़े, आपु गई कछु काज घरै।
इहिं अंतर अँधवाइ उठ्यौ इक, गरजत गगन सहित घहरै।
सूरदास ब्रज-लोग सुनत धुनि, जो जहँ-तहँ सब अतिहिं डरै ॥१२॥

सुत-मुख देखि जसोदा फूली।
हरषति देखि दूधि की दँतियाँ, प्रेममगन तन की सुधि भूली।
बाहिर तैं तब नंद बुलाए, देखौ धौं सुंदर सुखदाई।
तनक-तनक सी दूध दँतुलिया, देखौ, नैन सफल करौ आई।
आनँद सहित महर तब आए, मुख चितवत दोउ नैन अघाई।
सूर स्याम किलकत द्विज देख्यौ, मनौ कमल पर बिज्जु जमाई ॥१३॥

हरि किलकत जसुमति की कनियाँ।
मुख मैं तीनि लोक दिखराए, चकित भई नँद-रनियाँ।
घर-घर हाथ दिवावति डोलति, बाँधति गरैं बघनियाँ।
सूर स्याम की अद्‌भुत लीला नहिं जानत मुनिजनियाँ ॥१४॥

कान्ह कुँवर की करहु पासनी, कछु दिन घटि षट मास गए।
नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनप्रासन जोग भए।
बिप्र बुलाइ नाम लै बूझ्यौ, रासि सोधि इक सुदिन धरयौ।
आछौ दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि बोलि सुभ गान करयौ।
जुवति महरि कौं गारी गावति, और महर कौ नाम लिए।
ब्रज-घर-घर आनंद बढ़यौ अति प्रेम पुलक न समात हिए।
जाकौं नेति-नेति स्रुति गावत, ध्यावत सुर-मुनि ध्यान धरे।
सूरदास तिहिं कौं ब्रज-बनिता, झकझोरतिं उर अंक भरे ॥१५॥

लाल हौं वारी तेरे मुख पर।
कुटिल अलक, मोहनि-मन बिहँसनि, भृकुटी बिकट ललित नैननि पर।
दमकति दूध-दँतुलिया बिहँसत, मनु सीपज घर कियौ बारिज पर।
लघु-लघु लट सिर घूँघरवारी, लटकन लटकि रह्यौ माथैं पर।
यह उपमा कापै कहि आवै, कछुक कहौं सकुचति हौं जिय पर।
नव-तन-चंद्र-रेख-मधि राजत, सुरगुरु-सुक्र-उदोत परसपर।
लोचन लोल कपोल ललित अति, नासा कौ मुकता रदछद पर।
सूर कहा न्यौछावर करिये अपने लाल ललित लरखर पर ॥१६॥

उमँगीं ब्रजनारि सुभग, कान्ह बरष-गाँठि उमंग, चहतिं बरष बरषनि ।
गावहिं मंगल सुगान, नीके सुर नीकी तान, आनँद अति हरषनि ।
कंचन-मनि-जटित-थार रोचन, दधि, फूल-डार, मिलिबे की तरसनि ।
प्रभु बरष-गाँठि जोरति, वा छबि पर तृन तोरति, सूर अरस परसनि ॥१७॥

बालगोपाल

सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरुनि चलत रेनु तन-मंडित, मुख दधि लेप किये ।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिये ।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहिं पिए ।
कठुला-कंठ, बज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए ।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए ॥१८॥

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत ।
मनिमय कनक नंद कैं आँगन, बिंब पकरिबैं धावत ।
कबहुं निरखि हरि आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत ।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत ।
कनक-भूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इक राजति ।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा, कमल बैठकी साजति ।
बाल दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नन्द बुलावति ।
अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति ॥१९॥

सिखवति चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया ।
कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति, उर आनंद भरि लेति बलैया ।
कबहुँक कुल देवता मनावति, चिरजीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया ।
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति, इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया ।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया ॥२०॥

चलत देखि जसुमति सुख पावै ।
ठुमुकि-ठुमुकि पग धरनी रेंगत, जननी देखि दिखावै ।
देहरि लौं चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इतहीं कौं आवै ।
गिरि-गिरि परत, बनत नहिं नाँघत सुर-मुनि सोच करावै ।

कोटि ब्रह्मंड करत छिन भीतर, हरत बिलंब ना लावै।
ताकौं लिए नंद की रानी, नाना खेल खिलावै।
तब जसुमति कर टेकि स्याम कौ, क्रम-क्रम करि उतरावै।
सूरदास प्रभु देखि-देखि, सुर-नर-मुनि बुद्धि भुलावै ॥२१॥

नंद जू के बारे कान्ह, छाँड़ि दै मथनियाँ।
बार-बार कहति मातु जसुमति नँदरनियाँ।
नैंकु रहौ माखन देउँ मेरे प्रान-धनियाँ।
आरि जनि करौ, बलि बलि जाउँ हौं निधनियाँ।
जाकौ ध्यान धरैं सबै, सुर-नर-मुनि जनियाँ।
ताकौ नँदरानी मुख चूमै लिए कनियाँ।
सेष सहस आनन गुन गावत नहिं बनियाँ।
सूर स्याम देखि सबै भूलीं गोप-धनियाँ ॥२२॥

कहन लागे मोहन मैया-मैया।
नंद महर सौं बाबा-बाबा, अरु हलधर सौं भैया।
ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहति जसोदा, लै-लै नाम कन्हैया।
दूरि खेलन जनि जाहु लला रे, मारैगी काहु की गैया।
गोपी ग्वाल करत कौतूहल, घर-घर बजति बधैया।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, चरननि की बलि जैया ॥२३॥

गोपालराइ दधि माँगत अरु रोटी।
माखन सहित देहि मेरी मैया, सुपक सुमंगल मोटी।
कत हौ आरि करत मेरे मोहन तुम आँगन मैं लोटी ?
जो चाहौ सो लेहु तुरतहीं, छाँड़ौं यह मति खोटी।
करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ, मुख चुपर्‌यौ अरु चोटी।
सूरदास कौ ठाकुर ठाढ़ौ, हाथ लकुटिया छोटी ॥२४॥

बरनौं बाल-बेष मुरारि।
थकित जित-तित अमर-मुनि-गन, नंद-लाल निहारि।
केस सिर बिन बपन के चहुँ दिसा छिटके झारि।
सीस पर धरि जटा, मनु सिसु-रूप कियौ त्रिपुरारि।
तिलक ललित ललाट केसरिबिंदु सोभाकारि।
रोष-अरुन तृतीय लोचन, रह्यौ जनु रिपु जारि।

कंठ कठुला नील मनि, अंभोज-माल सँवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर इहिँ भाइ भए मदनारि।
कुटिल हरि-नख हिऐँ हरि के हरषि निरखति नारि।
ईस जनु रजनीस राख्यौ भाल तैँ जु उतारि।
सदन-रज तन स्याम सोभित, सुभग इहिँ अनुहारि।
मनहुँ अंग-बिभूति-राजित संभु सो मधुहारि।
त्रिदस-पति-पति असन कौँ अति जननि सौँ करै आरि।
सूरदास बिरंचि जाकौँ जपत निज मुख चारि ॥२५॥

मैया, कबहिँ बढ़ैगी चोटी ?
किती बार मोहिँ दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी !
तू जो कहति बल की बेनी ज्यौँ, ह्वै है लाँबी-मोटी।
काढ़त-गुहत-न्हवावत जैहै नागिन सी भुइँ लोटी।
काचौ दूध पियावति पचि-पचि, देति न माखन-रोटी।
सूरज चिरजीवौ दोउ भैया, हरि-हलधर की जोटी ॥२६॥

हरि अपनैँ आँगन कछु गावत।
तनक-तनक चरननि सौँ नाचत, मनहिँ मनहिँ रिझावत।
बाहँ उठाइ काजरी-धौरी गैयनि टेरि बुलावत।
कबहुँक बाबा नंद पुकारत, कबहुँक घर मैँ आवत।
माखन तनक आपनैँ कर लै, तनक बदन मैँ नावत।
कबहुँक चितै प्रतिबिंब खंभ मैँ, लौनी लिए खवावति।
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष अनंद बढ़ावत।
सूर स्याम के बाल-चरित, नित नितही देखत भावत ॥२७॥

जसुमति जबहि कह्यौ अन्हवावन, रोइ गए हरि लोटत री।
तेल उबटनौ लै आगैँ धरि, लालहिँ चोटत पोटत री।
मैँ बलि जाउँ न्हाउ जनि मोहन, कत रोवत बिनु काजैँ री।
पाछैँ धरि राख्यौ छपाइ कै उबटन-तेल-समाजैँ री।
महरि बहुत बिनती करि राखति, मानत नहीं कन्हैया री।
सूर स्याम अतिहीँ बिरुझाने, सुर-मुनि अंत न पैया री ॥२८॥

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैँ, हरिहिँ लिए चंदा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी, देखौँ धौँ भरि नैन जुड़ावत।

चितै रहे तब आपुन ससि-तन अपने कर लै-लै जु बतावत ।
मीठौ लगत किधौँ यह खाटौ, देखत अति सुन्दर मन भावत !
मनहीँ मन हरि बुद्धि करत हैँ माता सौँ कहि ताहिँ मँगावत।
लागी भूख, चंद मैँ खैहौँ, देहि देहि रिस करि बिरुझावत ।
जसुमति कहति कहा मैँ कीनौ, रोवत मोहन अति दुख पावत ।
सूर स्याम कौँ जसुमति बोधति, गगन चिरैया उड़त दिखावत ॥२६॥

सुनि सुत, एक कथा कहौँ प्यारी ।
कमल-नैन मन आनँद उपज्यौ, चतुर सिरोमनि देत हुँकारी ।
दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी, ताकैँ प्रगट भए सुत चारी ।
तिनमैँ मुख्य राम जो कहियत, जनक सुता ताकी बर नारी ।
तात-बचन लगि राज तज्यौ तिन, अनुज घरनि सँग गए बनचारी ।
धावत कनक-मृगा के पाछैँ, राजिव लोचन परम उदारी ।
रावन हरन सिया कौ कीन्हौ. सुनि नँद-नंदन नीँद निँवारी ।
चाप-चाप करि उठे सूर प्रभु, लछिमन देहु, जननि भ्रम भारी ॥३०॥

जागौ, जागौ हो गोपाल ।
नाहिँन इतौ सोइयत सुनि सुत, प्रात परम सुचि काल ।
फिर-फिर जात निरखि मुख छिन छिन, सब गोपनि के बाल ।
बिन बिकसे कल-कमल-कोष ते मनु मधुपनि की माल ।
जो तुम मोहिँ न पत्याहु सूर प्रभु, सुन्दर स्याम तमाल ।
तौ तुमहीँ देखौ आपुन तजि निद्रा नैन बिसाल ॥३१॥

कमल-नैन हरि करौ कलेवा ।
माखन-रोटी, सद्य जम्यौ दधि, भाँति-भाँति के मेवा ।
खारिक, दाख, चिरौँजी, किसमिस, उज्वल गरी बदाम ।
सफरी, सेव, छुहारे, पिस्ता, जे तरबूजा नाम ।
अरु मेवा बहु भाँति-भाँति हैँ षटरस के मिष्टान्न ।
सूरदास प्रभु करत कलेवा, रीझे स्याम सुजान ॥३२॥

मैया मोहिँ दाऊ बहुत खिझायौ ।
मोसौँ कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ ।
कहा करौँ इहि रिस के मारैँ खेलन हौँ नहिँ जात ।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात ।

गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसकात।
तू मोहीँ कौँ मारन सीखी, दाउहिँ कबहुँ न खीझै।
मोहन-मुख रिस की ये बातैँ, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहिँ गोधन की सौँ, हौँ माता तू पूत। ॥३३॥

खेलन दूरि जात कत कान्हा।
आजु सुन्यौ मैँ हाऊ आयौ, तुम नहिँ जानत नान्हा।
इक लरिका अबहीँ भजि आयौ, रोवत देख्यौ ताहि।
कान तोरि वह लेत सबनि के, लरिका जानत जाहि।
चलौ न, बेगि सबारै जैयै, भाजि आपनैँ धाम।
सूर स्याम यह बात सुनतही बोलि लिए बलराम ॥३४॥

खेलत मैँ को काकौ गुसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस हीँ कत करत रिसैया।
जाति-पाँति हमतैँ बड़ नाहीँ, नाहीँ बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातैँ जातैँ अधिक तुम्हारै गैयाँ।
रुहठि करै तासौँ को खेलै, रहे बैठि जहँ-तहँ सब ग्वैयाँ।
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाउँ दियौ करि नंद-दुहैयाँ ॥३५॥

हरि कौँ टेरति है नँदरानी।
बहुत अबार भई कहँ खेलत रहे मेरे सारँग पानी?
सुनतहिँ टेर, दौरि तहँ आए, कब के निकसे लाल।
जेँवत नहीँ नंद तुम्हरे बिनु, बेगि चलौ, गोपाल।
स्यामहिँ ल्याई महरि जसोदा तुरतहिँ पाइँ पखारे।
सूरदास प्रभु संग नंद कैँ बैठे हैँ दोउ बारे।।३६।।

जेँवत कान्ह नंद इकठौरे
कछुक खात लपटात दोऊ कर बालकेलि अति भोरे।
बरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरिच दसन टकटौरे।
तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर दौरे।
फूँकति बदन रोहिनी ठाढ़ी, लिए लगाइ अँकोरे।
सूर स्याम कौँ मधुर कौर दै, कीन्हे तात निहोरे ॥३७॥

मोहन काहैं न उगिलौ माटी ।
बार-बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी ।
महतारी सौं मानत नाहीं, कपट-चतुरई ठाटी ।
बदन उघारि दिखायौ अपनौ, नाटक की परिपाटी ।
बड़ी बार भई लोचन उघरे, भरम-जवनिका फाटी ।
सूर निरखि नँदरानि भ्रमित भई, कहति न मीठी-खाटी ॥३८॥

नंद करत पूजा, हरि देखत ।
घंट बजाइ देव अन्हवायौ, दल चंदन लै भेटत ।
पट अंतर दै भोग लगायौ, आरति करी बनाइ ।
कहत कान्ह, बाबा तुम अरप्यौ, देव नहीं कछु खाइ ।
चितै रहे तब नंद महरि-मुख सुनहु कान्ह की बात ।
सूर स्याम देवनि कर जोरहु, कुसल रहै जिहिं गात ॥३९॥

कहत नंद जसुमति सौं बात ।
कहा जानिऐ कह तैं देख्यौ, मेरैं कान्ह रिसात ।
पाँच बरष को मेरौ नन्हैया, अचरज तेरी बात ।
बिनहीं काज साँटि लै धावति, ता पाछैं बिललात ।
कुसल रहैं बलराम स्याम दोउ, खेलत-खात-अन्हात ।
सूर स्याम कौं कहा लगावति, बालक कोमल-बात ॥४०॥

माखन-चोरी

मैया री, मोहिं माखन भावै ।
जो मेवा पकवान कहति तू, मोहिं नहीं रुचि आवै ।
ब्रज-जुवती इक पाछैं ठाढ़ी, सुनत स्याम की बात ।
मन-मन कहति कबहु अपनैं घर, देखौं माखन खात ।
बैठैं जाइ मथनियाँ कैं ढिग, मैं तब रहौं छपानी ।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, ग्वालिनि मन की जानी ॥४१॥

गए स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर ।
देख्यौ द्वार नहीं कोउ, इत-उत चितै, चले तब भीतर ।
हरि आवत गोपी जब जान्यौ, आपुन रही छपाइ ।
सूनैं सदन मथनियाँ कैं ढिग, बैठि रहे अरगाइ ।
माखन भरी कमोरी देखत लै-लै लागे खान ।
चितै रहे मनि-खंभ-छाँह तन, तासौं करत सयान ।

प्रथम आजु मैं चोरी आयौ, भलौ बन्यौ है संग।
आपु खात प्रतिबिंब खवावत, गिरत कहत, का रंग?
जौ चाहौ सब देउँ कमोरी, अति मीठो कत डारत।
तुमहिं देति मैं अति सुख पायौ, तुम जिय कहा बिचारत?
सुनि-सुनि बात स्याम के मुख की उमँगि उठी ब्रजनारी।
सूरदास प्रभु निरखि ग्वालि-मुख तब भजि चले मुरारी ॥४२॥

प्रथम करी हरि माखन-चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज खोरी।
मन मैं यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ।
गोकुल जनम लियौ सुख कारन, सबकैं माखन खाउँ।
बाल-रूप जसुमति मोहिं जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग।
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं, ये मेरे ब्रज-लोग ॥४३॥

गोपालहिं माखन खान दै।
सुनि री सखी, मौन ह्वै रहिऐ, बदन दही लपटान दै।
गहि बहियाँ हौं लैकै जैहौं, नैननि तपति बुझान दै।
याकौ जाइ चौगुनौ लैहौं, मोहिं जसुमति लौं जान दै।
तू जानति हरि कछू न जानत, सुनत मनोहर कान दै।
सूर स्याम ग्वालिनि बस कीन्हौ, राखतिं तन-मन-प्रान दै ॥४४॥

जसुदा कहँ लौं कीजै कानि।
दिन-प्रति कैसैं सही परति है, दूध-दही की हानि।
अपने या बालक की करनी, जौ तुम देखौ आनि।
गोरस खाइ, खवावै लरिकनि, भाजत भाजन भानि।
मैं अपने मंदिर के कोनै, राख्यौ माखन छानि।
सोई जाइ तिहारैं ढोटा, लीन्हौ है पहिचानि।
बूझि ग्वालि निज गृह मैं आयौ, नैंकु न संका मानि।
सूर स्याम यह उतर बनायौ, चींटी काढ़त पानि ॥४५॥

आपु गए हरुऐं सूनैं घर।
सखा सबै बाहिर ही छाँड़े, देख्यौ दधि-माखन हरि भीतर।
तुरत मथ्यौ दधि-माखन पायौ, लै-लै खात, धरत अधरनि पर।

छिटकि रही दधि-बूँद हृदय पर, इत-उत चितवत करि मन मैं डर ।
उठत ओट लै लखत सबनि कौं, पुनि लै खात लेत ग्वालनि बर ।
अंतर भई ग्वालि यह देखति मगन भई, अति उर आनँद भरि ।
सूर स्याम मुख निरखि थकित भई, कहत न बनै, रही मन दै हरि ॥४६॥

जान जु पाए हौं हरि नीकैं ।
चोरि-चोरि दधि माखन मेरौ, निए प्रति गीधि रहे हो छीकैं ।
रोक्यौ भवन-द्वार ब्रज-सुन्दरि, नूपुर मूँदि अचानक ही कै ।
अब कैसैं जैयतु अपनैं बल, भाजन भाँजि, दूध दधि पी कै ?
सूरदास प्रभु भलैं परे फँद, देउँ न जान भावते जी कैं ।
भरि गंडूष, छिरकि दै नैननि, गिरिधर भाजि चले दै कीकै ॥४७॥

अब ये झूठहु बोलत लोग ।
पाँच बरष अरु कछुक दिननि कौ, कब भयौ चोरी जोग ।
इहिं मिस देखन आवति ग्वालिनि, मुँह फाटे जु गँवारि ।
अनदोषे कौं दोष लगावतिं, दई देइगौ टारि ।
कैसैं करि याकी भुज पहुँची, कौन बेग ह्याँ आयौ ?
ऊखल ऊपर आनि, पीठि दै, तापर सखा चढ़ायौ ।
जौ न पत्याहु चलो सँग जसुमति देखौ नैन निहारि ।
सूरदास प्रभु नैकुँ न बरजौ, मन मैं महरि बिचारि ॥४८॥

इन अँखियनि आगैं तैं मोहन, एकौ पल जनि होहु नियारे ।
हौं बलि गई, दरस देखैं बिनु तलफत है नैननि के तारे ।
औरौ सखा बुलाइ आपने इहिं आँगन खेलौ मेरे बारे ।
निरखति रहौं फनिग की मनि ज्यौं, सुन्दर बाल-बिनोद तिहारे।
मधु, मेवा, पकवान, मिठाई व्यंजन खाटे, मीठे, खारे ।
सूर स्याम जोइ-जोइ तुम चाहौ, सोइ-सोइ माँगि लेहु मेरे बारे ॥४९॥

चोरी करत कान्ह धरि पाए ।
निसि-बासर मोहिं बहुत सतायौ अब हरि हाथहिं आए ।
माखन-दधि मेरौ सब खायौ, बहुत अचगरी कीन्ही ।
अब तौ घात परे हौ लालन, तुम्हैं भलैं मैं चीन्ही ।
दोउ भुज पकरि, कह्यौ कहँ जैहौ, माखन लेउँ मँगाइ ।
तेरी सौं मैं नैकुँ न खायौ, सखा गये सब खाइ ।

मुख तन चितै, बिहँसि हरि दीन्हौ, रिस तब गई बुझाइ।
लियौ स्याम उर लाइ ग्वालिनी, सूरदास बलि जाइ ॥५०॥

कान्हहिं बरजति किन नँदरानी।
एक गाउँ कैं बसत कहाँ लौं, करैं नंद की कानी।
तुम जो कहति हौ, मेरौ कन्हैया, गंगा कैसौ पानी।
बाहिर तरुन किसोर बयस बर, बाट घाट कौ दानी।
बचन बिचित्र, कमल-दल-लोचन, कहत सरस बर बानी।
अचरज महरि तुम्हारे आगैं अबै जीभ तुतरानी।
कहँ मेरौ कान्ह, कहाँ तुम ग्वारिनि, यह बिपरीति न जानी।
आवति सूर उरहने कैं मिस, देखि कुँवर मुसुकानी ॥५१॥

मथुरा जाति हौं बेचन दहियौ।
मेरे घर कौ द्वार, सखी री, तबलौं देखति रहियौ।
दधि-माखन द्वै माट अछूते तोहिं सौंपति हौं सहियौ।
और नहीं या ब्रज मैं कोऊ, नन्द-सुवन सखि लहियौ।
ते सब बचन सुने मन-मोहन, वहै राह मन गहियौ।
सूर पौरि लौं गई न ग्वालिनि, कूद परे दै धहियौ ॥५२॥

गए स्याम ग्वालिनि घर सूनैं।
माखन खाइ, डारि सब गोरस, बासन फोरि किए सब चूनैं।
बड़ौ माट इक बहुत दिननि कौ, ताहि करयौ दस टूक।
सोवत लरिकनि छिरकि मही सौं, हँसत चले दै कूक।
आइ गई ग्वालिनि तिहिं औसर, निकसत हरि धरि पाए।
देखे घर बासन सब फूटे, दूध दही ढरकाए।
दोउ भुज धरि गाढ़ैं करि लीन्हे, गई महरि कै आगैं।
सूरदास अब बसै कौन ह्याँ, पति रहिहैं ब्रज त्यागैं ॥५३॥

करत कान्ह ब्रज-घरनि अचगरी।
खीझति महरि कान्ह सौं पुनि-पुनि, उरहन लै आवति हैं सगरी।
बड़े बाप के पूत कहावत, हम वै वास बसत इक बगरी।
नन्दहु तैं ये बड़े कहैहैं फेरि बसैहैं यह ब्रज नगरी।
जननी कैं खीझत हरि रोए, झूठहिं मोहिं लगावति धगरी।
सूर स्याम मुख पोंछि जसोदा, कहति सबै जुवती हैं लँगरी ॥५४॥

अपनौ गाउँ लेउ नँदरानी ।
बड़े बाप की बेटी, पूतहिँ भली पढ़ावति बानी ।
सखा-भीर लै पैठत घर मैँ आपु खाइ तौ सहिऐ ।
मैँ जब चली सामुहैँ पकरन, तब के गुन कहा कहिऐ ।
भाजि गए दुरि देखत कतहूँ, मैं घर पौढ़ी आइ ।
हरैँ हरैँ बेनी गहि पाछैँ, बाँधी पाटी लाइ ।
सुनु मैया, याके गुन मोसौँ, इन मोहिँ लयौ बुलाई ।
दधि मैँ पड़ी सेँत की मोपै चीटी सबै कढ़ाई ।
टहल करत मैँ याके घर की यह पति सँग मिलि सोई ।
सूर बचन सुनि हँसी जसोदा, ग्वाल रही मुख गोई ॥४५॥

महरि तैँ बड़ी कृपन है माई ।
दूध-दही बहु बिधि कौ दीनौ, सुत सौँ धरति छपाई ।
बालक बहुत नहीँ री तेरैँ एकै कुँवर कन्हाई ।
सोऊ तौ घरही घर डोलतु, माखन खात चोराई ।
वृद्ध बयस, पूरे पुन्यनि तैँ, तैँ बहुतै निधि पाई ।
ताहूँ के खैबे-पीबे कौँ, कहा करति चतुराई ।
सुनहुं न बचन चतुर नागरि के जसुमति नन्द सुनाई ।
सूर स्याम कौँ चोरी कैँ मिस, देखन है यह आई ॥४६॥

अनत सुत गोरस कौँ कत जात ?
घर सुरभी कारी धौरी कौ माखन माँगि न खात ।
दिन प्रति सबै उरहने कैँ मिस, आवति है उठि प्रात ।
अनलहते अपराध लगावति, बिकटि बनावति बात ।
निपट निसंक बिवादहिँ संमुख, सुनि-सुनि नन्द रिसात ।
मोसौँ कहतिँ कृपन तेरैँ घर ढोटाहू न अघात ।
करि मनुहारि उठाइ गोद लै, बरजति सुत कौँ मात ।
सूरि स्याम नित सुनत उरहनौ, दुख पावत तेरौ तात ॥४७॥

हरि सब भाजन फोरि पराने ।
हाँक देत पैठे दै पेला नैँकु न मनहिँ डराने ।
सीँके छोरि, मारि लरकनि कौँ, माखन-दधि सब खाई ।
भवन मच्यौ दधि काँदौ, लरिकनि रोवत पाए जाई ।

सुनहु-सुनहु सबहिनि के लरिका, तेरौ सौ कहुँ नाहिँ ।
हाटनि-बाटनि, गलिनि कहूँ कोउ चलत नहीँ डरपाहिँ ।
रितु आए कौ खेल, कन्हैया सब दिन खेलत फाग ।
रोकि रहत गहि गली साँकरी, टेढ़ी बाँधत पाग ।
बारे तैँ सुत ये ढङ्ग लाए, मनहीँ मनहिँ सिहाति ।
सुनैँ सूर ग्वालिनि की बातैँ, सकुचि महरि पछिताति ॥५८॥

कन्हैया तू नहिँ मोहिँ डरात ।
षटरस धरे छाँड़ि कत पर घर, चोरी करि करि खात ।
बकत बकत तोसौँ पचिहारी, नैँकुहुँ लाज न आई ।
ब्रज-परगन-सिकदार महर, तू ताकी करत नन्हाई ।
पूत सपूत भयौ कुल मेरैँ, अब मैं जानी बात ।
सूर स्याम अब लौँ तुहिँ बकस्यौ, तेरी जानी घात ॥५९॥

मैया मैँ नहिं माखन खायौ ।
ख्याल परैँ ये सखा सबै मिलि, मेरैँ मुख लपटायौ ।
देखि तुही सींके पर भाजन, ऊँचैँ धरि लटकायौ ।
हौँ जु कहत नान्हे कर अपनैँ मैँ कैसैँ करि पायौ ।
मुख दधि पोँछि, बुद्धि एक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ ।
डारि साँटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिँ कंठ लगायौ ।
बाल-बिनोद-मोद मन मोह्यौ, भक्ति-प्रताप दिखायौ ।
सूरदास जसुमत कौ यह सुख, सिव बिरञ्चि नहिं पायौ ॥६०॥

जसुमति तेरौ बारौ कान्ह अतिही जु अचगरौ ।
दूध-दही-माखन लै डारि देत सगरौ ।
भोरहिँ नित प्रतिही उठि, मोसौँ करत झगरौ ।
ग्वाल-बाल संग लिए घेरि रहै डगरौ ।
हम-तुम सब बैस एक, कातैँ को अगरौ ।
लियौ दियौ सोई कछु, डारि देहु झगरौ ।
सूर स्याम तेरौ अति, गुननि माहिँ अगरौ ।
चोली अरु हार तोरि छोरि लियौ सगरौ ॥६१॥

ऐसी रिस मैँ जौ धरि पाऊँ ।
कैसे हाल करौँ धरि हरि के, तुमकौँ प्रगट दिखाऊँ ।

साँटिया लिए हाथ नँदरानी, थरथरात रिस गात।
मारे बिना आजु जौ छाँड़ौं, लागै मेरैं तात।
इहिँ अंतर ग्वारिनि इक औरै, धरे बाँह हरि ल्यावति।
भली महरि सूधौ सुत जायौ, चोली-हार बतावति।
रिस मैं रिस अतिहीं उपजाई, जानि जननि अभिलाष।
सूर स्याम भुज गहे जसोदा, अब बाँधौं कहि माष ॥६२॥

बाँधौं आजु कौन तोहिँ छोरै।
बहुत लँगरई कीन्ही मोसौं, भुज गहि रजु ऊखल सौं जोरै।
जननी अति रिस जानि बँधायौ, निरखि बदन, लोचन जल ढोरै।
यह सुनि ब्रज-जुवतीं सब धाईं कहतिं कान्ह अब क्यौं नहिँ छोरै।
ऊखल सौं गहि बाँधि जसोदा, मारन कौं साँटी कर तोरै।
साँटी देखि ग्वालि पछितानी, बिकल भई जहँ-तहँ मुख मोरै।
सुनहु महरि ऐसी न बूझिऐ सुत बाँधति माखन दधि थोरैं।
सूर स्याम कौं बहुत सतायौ, चूक परी हम तैं यह भोरैं ॥६३॥

कहा भयो जौ घर कैं लरिका चोरी माखन खायौ।
अहो जसोदा कत त्रासति हौ यहै कोखि को जायौ।
बालक अजौं अजान न जानै केतिक दह्यौ लुटायौ।
तेरो कहा गयौ ? गोरस कौ गोकुल अंत न पायौ।
हा हा लकुट त्रास दिखरावति, आँगन पास बँधायौ।
रुदन करत दोउ नैन रचे हैं, मनहुँ कमल-कन छायौ।
पौढ़ि रहे धरनी पर तिरछैं बिलखि बदन मुरझायौ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, हँसि करि कंठ लगायौ ॥६४॥

हलधर सौं कहि ग्वालि सुनायौ।
प्रातहिँ तैं तुम्हरौ लघु भैया, जसुमति ऊखल बाँधि लगायौ।
काहू के लरिकहिँ हरि मार्‌यो, भोरहि आनि तिनहिँ गुहरायौ।
तबहीं तैं बाँधे हरि बैठे, सो हम तुमकौं आनि जनायौ।
हम बरजी, बरज्यौ नहिँ मानति, सुनतहिँ बल आतुर ह्वै धायौ।
सूर स्याम बैठे ऊखल लगि, माता उर तनु अतिहि त्रसायौ ॥६५॥

यह सुनि कै हलधर तहँ धाए।
देखि स्याम ऊखल सौं बाँधे, तबहीं दोउ लोचन भरि आए।

मैं बरज्यौ कै बार कन्हैया, भली करी दोउ हाथ बँधाए।
अजहूँ छाँड़ौगे लँगराई, दोउ कर जोर जननि पै आए।
स्यामहिँ छोरि मोहिँ बाँधै बरु, निकसत सगुन भले नहिँ पाए।
मेरे प्रान-जिवन-धन कान्हा, तिनके भुज मोहिँ बँधे दिखाए।
माता सौं कह करौं ढिठाई, सो सरूप कहि नाम सुनाए।
सूरदास तब कहति जसोदा दोउ भैया तुम इक मत पाए ॥६६॥

तबहिँ स्याम इक बुद्धि उपाई।
जुवती गईं घरनि सब अपनैं, गृह कारज जननी अटकाई।
आपु गए जमलार्जुन-तरु-तर, परसत पात उठे झहराई।
दिए गिराइ धरनि दोऊ तरु सुत कुवेर के प्रगटे आई।
दोउ कर जोरि करत दोउ अस्तुति, चारि भुजा तिन्ह प्रगट दिखाई।
सूर धन्य ब्रज जनम लियौ हरि, धरनी की आपदा नसाई ॥६७॥

अब घर काहू कैं जनि जाहु।
तुम्हरैं आजु कमी काहे की, कत तुम अनतहिँ खाहु।
बरै जेंवरी जिहिँ तुम बाँधे, परैं हाथ भहराह।
नंद मोहिँ अतिहीं त्रासत हैं, बाँधे कुँवर कन्हाइ।
रोग जाउ मेरे हलधर के छोरत हो तब स्याम।
सूरदास प्रभु खात फिरौ जनि माखन-दधि तुव धाम ॥६८॥

भूखौ भयौ आजु मेरौ बारौ।
भोरहिँ ग्वारि उरहनौ ल्याई, उहिँ यह कियौ पसारौ।
पहिलेहिँ रोहिनि सौं कहि राख्यौ, तुरत करहु जेवनार।
ग्वाल-बाल सब बोलि लिए, मिलि बैठे नन्द-कुमार।
भोजन बेगि ल्याउ कछु मैया, भूख लगि मोहिँ भारी।
आजु सवारैं कछु नहिँ खायौ, सुनत हँसी महतारी।
रोहिनि चितै रही जसुमति-तन, सिर धुनि-धुनि पछितानी।
परसहु बेगि, बेर कत लावति, भूखे साँरगपानी।
बहु व्यंजन बहु भाँति रसोई, षटरस के परकार।
सूर स्याम हलधर दोउ भैया, और सखा सब ग्वार ॥६६॥

मोहिँ कहतिं जुवती सब चोर।
खेलत कहूँ रहौं मैं बाहिर, चितै रहतिं सब मेरी ओर।

बोलि लेतिँ भीतर घर अपनैं, मुख चूमतिँ, भरि लेतिँ अँकोर।
माखन हेरि देतिँ अपनैँ कर कछु कहि बिधि सौँ करतिँ निहोर।
जहाँ मोहिँ देखतिँ, तहँ टेरतिँ, मैं नहिँ जात दुहाई तोर।
सूर स्याम हँसि कंठ लगायौ, वै तरुनी कहँ बालक मोर॥७०॥

जसुमति कहति कान्ह मेरे प्यारे, अपनैं हीं आँगन तुम खेलौ।
बोलि लेहु सब सखा संग के, मेरौ कह्यौ कबहुँ जिनि पेलौ।
ब्रज-बनिता सब चोर कहतिँ तोहिँ, लाजनि सकुचि जात मुख मेरौ।
आजु मोहिँ बलराम कहत हे, झूठहिँ नाम धरति हैँ तेरौ।
जब मोहिँ रिस लागति तब त्रासति, बाँधति, मारति, जैसैँ चेरौ।
सूर हँसति ग्वालिन दै तारी, चोर नाम कैसैहुँ सुत फेरौ॥७१॥

वृंदावन लीला

वृंदावन प्रस्थान

महर-महरि कैं मन यह आई।
गोकुल होत उपद्रव दिन प्रति, बसिऐ बृंदाबन मैं जाई।
सब गोपनि मिलि सकटा साजे, सबहिनि के मन मैं यह भाई।
सूर जमुन-तट डेरा दीन्हे, पाँच बरष के कुँवर कन्हाई॥१॥

गोदोहन

मैं दुहिहौं मोहिँ दुहन सिखावहु।
कैसैं गहत दोहनी घुटुवनि, कैसैं बछरा थन लै लावहु।
कैसैं लै नोई पग बाँधत, कैसैं लै गैया अटकावहु।
कैसैं धार दूध की बाजति, सोइ सोइ बिधि तुम मोहिँ बतावहु।
निपट भई अब साँझ कन्हैया, गैयनि पै कहुँ चोट लगावहु।
सूर स्याम सौं कहत ग्वाल सब, धेनु दुहन प्रातहि उठि आवहु॥२॥

गो-चारण

आजु मैं गाइ चरावन जैहौं।
बृंदाबन के भाँति-भाँति फल अपने कर मैं खैहौं।
ऐसी बात कहौ जनि बारे, देखौ अपनी भीति।
तनक तनक पग चलिहौ कैसैं, आवत ह्वै है रीति।
प्रात जात गैया लै चारन, घर आवत हैं साँझ।
तुम्हारौ कमल बदन कुम्हिलैहै, रेंगत घामहिँ माँझ।
तेरी सौं मोहिं घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक।
सूरदास प्रभु कह्यौ न मानत, पर्‌यौ आपनी टेक॥३॥

बृंदाबन देख्यौ नँद-नंदन, अतिहिँ परम सुख पायौ।
जहँ-जहँ गाइ चरतिँ, ग्वालनि सँग, तहँ-तहँ आपुन धायौ।
बलदाऊ मोकौं जनि छाँड़ौ, संग तुम्हारैं ऐहौं।
कैसेहुँ आजु जसोदा छाँड़्यौ, काल्हि न आवन पैहौं।
सोवत मोकौं टेरि लेहुगे, बाबा नंद-दुहाई।
सूर स्याम बिनती करि बल सौं, सखनि समेत सुनाई॥४॥

बिहारी लाल, आवहु, आई छाक।
भई अबार, गाइ बहुरावहु, उलटावहु दै हाँक।
अर्जुन, भोज अरु सुबल, सुदामा, मधुमंगल इक ताक।
मिलि बैठे सब जेवन लागे, बहुत बने कहि पाक।
अपनी पत्रावलि सब देखत, जहँ-तहँ फेनि पिराक।
सूरदास प्रभु खात ग्वाल सँग, ब्रह्मलोक यह धाक॥५॥

ब्रज मैं को उपज्यौ यह भैया।
संग सखा सब कहत परस्पर, इनके गुन अगमैया।
जब तैं ब्रज अवतार धर्‌यौ इन, कोउ नहिँ घात करैया।
तृनावर्त पूतना पछारी, तब अति रहे नन्हैया।
कितिक बात यह बका बिदार्‌यौ, धनि जसुमति जिन जैया।
सूरदास प्रभु की यह लीला, हम कत जिय पछितैया॥६॥

आजु जसोदा जाइ कन्हैया महा दुष्ट इक मार्‌यौ।
पन्नग-रूप गिले सिसु गो-सुत इहिँ सब साथ उबार्‌यौ।
गिरि-कंदरा समान भयानक जब अघ बदन पसार्‌यौ।
निडर गोपाल पैठि मुख भीतर, खंड-खंड करि डार्‌यौ।
याकैं बल हम बदत न काहुहिँ, सकल भूमि तृन चार्‌यौ।
जीते सबै असुर हम आगैं, हरि कबहूँ नहिँ हार्‌यौ।
हरषि गए सब कहनि महरि सौं, अबहिँ अघासुर मार्‌यौ।
सूरदास प्रभु की यह लीला ब्रज कौ काज सँवार्‌यौ॥७॥

ब्रह्मा बालक-बच्छ हरे।
आदि अंत प्रभु अंतरजामी, मनसा तैं जु करे।
सोइ रूप वै बालक गो-सुत, गोकुल जाइ भरे।
एक बरष निसि बासर रहि सँग, काहु न जानि परे।
त्रास भयौ अपराध आपु लखि, अस्तुति करत खरे।
सूरदास स्वामी मनमोहन, तामैं मन न धरे॥८॥

आजु कन्हैया बहुत बच्यौ री।
खेलत रह्यौ घोष कैं बाहर, कोउ आयौ सिसु रूप रच्यौ री।
मिलि गयौ आइ सखा की नाईं, लै चढ़ाइ हरि कंध सच्यौ री।
गगन उड़ाइ गयौ लै स्यामहिं, आनि धरनि पर आप दच्यौ री।

धर्म सहाइ होत है जहँ-तहँ, स्रम करी पूरब पुन्य पच्यौ री।
सूर स्याम अब कैं बचि आए, ब्रज-घर-घर सुख-सिंधु मच्यौ री ॥९॥

अब कैं राखि लेहु गोपाल।
दसहूँ दिसा दुसह दावागिनि, उपजी है इहिँ काल।
पटकत बाँस, काँस कुस चटकत, लटकत ताल तमाल।
उचटत अति अंगार, फुटत फर, झपटत लपट कराल।
धूम धूँधि बाढ़ी धर अंबर, चमकत बिच बिच ज्वाल।
हरिन, बराह, मोर, चातक, पिक, जरत जीव बेहाल॥
जनि जिय डरहु, नैन मूँदहु सब, हँसि बोले नँदलाल।
सूर अगिनि सब बदन समानी, अभय किए ब्रज-बाल ॥१०॥

बन तैं आवत धेनु चराए।
संध्या समय साँवरे मुख पर, गो-पद-रज लपटाए।
बरह मुकुट कैं निकट लसति लट, मधुप मनौ रुचि पाए।
बिलसत सुधा जलज-आनन पर, उड़त न जात उड़ाए।
बिधि बाहन-भच्छन की माला, राजत उर पहिराए।
एक बरन बपु नहिँ बड़ छोटे, ग्वाल बने इक धाए।
सूरदास बलि लीला प्रभु की, जीवत जन जस गाए ॥११॥

मैया बहुत बुरो बलदाऊ।
कहन लग्यौ बन बड़ो तमासौ, सब मौड़ा मिलि आऊ।
मोहूं कौं चुचकारि गयो लै, जहाँ सघन बन झाऊ।
भागि चलौ कहि, गयौ उहाँ तैं, काटि खाइ रे हाऊ।
हौं डरपौं, काँपौं अरु रोवौं, कोउ नहिँ धीर धराऊ।
थरसि गयौं नहिँ भागि सकौं, वै भागे जात अगाऊ।
मोसौं कहत मोल कौ लीनो, आपु कहावत साऊ।
सूरदास बल बड़ौ चबाई, तैसेहिँ मिले सखाऊ ॥१२॥

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं, मेरे पाइ पिराइं।
जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहिँ, अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि, गारी देति रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका कौं, आवै मन बहराइ।
सूर स्याम मेरौ अति बालक, मारत ताहि रिंगाइ ॥१३॥

धनि यह बृंदाबन की रेनु।
नंद-किसोर चरावत गैयाँ, मुखहिं बजावत बेनु।
मन-मोहन कौ ध्यान धरैं जिय, अति सुख पावत चैनु।
चलत कहाँ मन और पुरी तन, जहँ कछु लैन न दैनु।
इहाँ रहहु जहँ जूठनि पवहु, ब्रजवासिनि कैं ऐनु।
सूरदास ह्याँ की सरवरि नहिं, कल्पबृच्छ सुर-धैनु॥१४॥

सोवत नींद आइ गई स्यामहिँ।
महरि उठी पौढ़ाइ दुहुंनि कौं, आपु लगी गृह कामहिँ।
बरजति है घर के लोगनि कौं, हरुएँ लै-लै नामहिँ।
गाढ़ैं बोलि न पावत कोऊ, डर मोहन बलरामहिँ।
सिव सनकादि अंत नहि पावत, ध्यावत अह-निसि जामहिँ।
सूरदास-प्रभु ब्रह्म सनातन, सो सोवत नंद-धामहिँ॥१५॥

देखत नंद कान्ह अति सोवत।
भूखे भए आजु बन-भीतर, यह कहि कहि मुख जोवत।
कह्यौ नहीं मानत काहू कौ, आपु हठी दोउ बीर।
बार-बार तनु पोंछत कर सौं, अतिहिं प्रेम की पीर।
सेज मंगाइ लई तहँ अपनी, जहाँ स्याम-बलराम।
सूरदास प्रभु कैं ढिग सोए, संग पौढ़ी नंद-बाम॥१६॥

जागि उठे तब कुंवर कन्हाई।
मैया कहाँ गई मो ढिग तैं, संग सोवति बल भाई।
जागे नंद, जसोदा जागी, बोलि लिए हरि पास।
सोवत झझकि उठे काहे तैं, दीपक कियौ प्रकास।
सपनैं कूदि पर्यौ जमुना दह, काहूँ दियौ गिराइ।
सूर स्याम सौं कहति जसोदा, जनि हो लाल डराइ॥१७॥

मैं बरज्यौ जमुना-तट जात।
सुधि रहि गई न्हात की तेरैं, जनि डरपौ मेरे तात।
नंद उठाइ लियौ कोरा करि, अपनैं संग पौढ़ाइ।
बृंदाबन मैं फिरत जहाँ तहँ, किहिँ कारन तू जाइ।
अब जनि जैहौ गाइ चरावन, कहँ को रहित बलाइ।
सूर स्याम दंपति बिच सोए, नींद गई तब आइ॥१८॥

काली दमन

नारद ऋषि नृप सौं यौं भाषत।
वै हैं काल तुम्हारे प्रगटे, काहैं उनकौं राखत।
काली उरग रहै जमुना मैं, तहँ तैं कमल मँगावहु।
दूत पठाइ देहु ब्रज ऊपर नंदहिं अति डरपावहु।
यह सुनि कै ब्रज लोग डरैंगे, वैं सुनिहैं यह बात।
पुहुप लैन जैहैं नँद-ढोटा, उरग करै तहँ घात।
यह सुनि कंस बहुत सुख पायौ, भली कही यह मोहि।
सूरदास प्रभु कौं मुनि जानत, ध्यान धरत मन जोहि॥१६॥

कंस बुलाइ दूत इक लीन्हौ।
कालीदह के फूल मँगाए, पत्र लिखाइ ताहि कर दीन्हौ।
यह कहियौ ब्रज जाइ नंद सौं, कंस राज अति काज मँगायो।
तुरत पठाइ दिऐं ही बनिहै, भली भाँति कहि-कहि समुझायौ।
यह अंतरजामी जानी जिय, आपु रहे, बन ग्वाल पठाए।
सूर श्याम, ब्रज-जन-सुखदायक, कंस-काल, जिय हरष बढ़ाए॥२०॥

पाती बाँचत नंद डराने।
कालीदह के फूल पठावहु सुनि सबही घबराने।
जो मोकौं नहिं फूल पठावहु, तौ ब्रज देहुँ उजारि।
महर, गोप, उपनंद न राखौं, सबहिनि डारौं मारि।
पुहुप देहु तौ बनै तुम्हारी, ना तरु गए बिलाइ।
सूर स्याम बलरामु तिहारे, माँगौं उनहिं धराइ॥२१॥

पूछौ जाइ तात सैं बात।
मैं बलि जाउँ मुखारबिंद की, तुमहीं काज कंस अकुलात।
आए स्याम नंद पै धाए, जान्यौ मातु पिता बिलखात।
अबहीं दूर करौं दुख इनकौ, कंसहिं पठै देउँ जलजात।
मौसैं कहौ बात बाबा यह, बहुत करत तुम सोच बिचार।
कहा कहैं तुमसैं मैं प्यारे, कंस करत तुमसैं कछु झार।
जब तैं जनम भयौ है तुम्हरौ, केते करबर टरे कन्हाइ।
सूर स्याम कुलदेवनि तुमकौं जहाँ तहाँ करि लियौ सहाइ॥२२॥

खेलत स्याम, सखा लिए संग।
इक मारत, इक रोकत गेंदहिं, इक भागत करि नाना रंग।

मार परसपर करत आपु मैं, अति आनंद भए मन माहिं ।
खेलत ही मैं स्याम सबनि कौं, जमुना तट कौं लीन्हे जाहिं ।
मारि भजत जो जाहि, ताहि सो मारत, लेत आपनौ दाउ ।
सूर स्याम के गुन को जानै कहत और कछु और उपाउ ॥२३॥

स्याम सखा कौं गेंद चलाई ।
श्रीदामा मुरि अंग बचायौ, गेंद परी कालीदह जाई ।
धाइ गही तब फेंट स्याम की. देहु न मेरी गेंद मँगाई ।
और सखा जनि मोकौं जानौ, मोसौं तुम जनि करौ ढिठाई ।
जानि-बूझि तुम गेंद गिराई, अब दीन्हैं ही बनै कन्हाई ।
सूर सखा सब हँसत परसपर, भली करी हरि गेंद गँवाई ॥२४॥

फेंट छाँड़ि मेरी देहु श्रीदामा ।
काहे कौं तुम रारि बढ़ावत, तनक बात कैं कामा ।
मेरी गेंद लेहु ता बदलैं, बाहँ गहत हौ धाइ ।
छोटौ बड़ौ न जानत काहूँ, करत बराबरि आइ ।
हम काहे कौं तुमहिं बराबर, बड़े नंद के पूत ।
सूर स्याम दीन्हैं ही बनिहैं, बहुत कहावत धूत ॥२५॥

रिस करि लीन्ही फेंट छुड़ाइ ।
सखा सबै देखत हैं ठाढ़े, आपुन चढ़े कदम पर धाइ ।
तारी दै-दै हँसत सबै मिलि, स्याम गए तुम भाजि डराइ ।
रोवत चले श्रीदामा घर कौं, जसुमति आगैं कहिहैं जाइ ।
सखा-सखा कहि स्याम पुकारयौ, गेंद आपनौ लेहु न आइ ।
सूर स्याम पीतांबर काछे, कूदि परे दह मैं भहराइ ॥२६॥

चौंकि परी तन की सुध आई ।
आजु कहा ब्रज सोर मचायौ, तब जान्यौ दह गिरयौ कन्हाई ।
पुत्र पुत्र कहिकै उठि दौरी, ब्याकुल जमुना-तीरहिं धाई ।
ब्रज-बनिता सब संगहिं लागीं आइ गए बल, अग्रज भाई ।
जननी ब्याकुल देखि प्रबोधत धीरज करि नीकैं जदुराई ।
सूर स्याम कौं नैंकु नहीं डर, जनि तू रोवै जसुमति माई ॥२७॥

जसुमति टेरति कुँवर कन्हैया ।
आगैं देखि कहत बलरामहिं, कहाँ रह्यौ तुव भैया ।

मेरौ भैया आवत अबहीँ तोहिँ दिखाऊँ भैया।
धीरज करहु, नैँकु तुम देखहु, यह सुनि लेति बलैया।
पुनि यह कहति मोहिँ परमोधत, धरनि गिरी मुरझैया।
सूर बिना सुत भई अति व्याकुल, मेरौ बाल कन्हैया ॥२८॥

अति कोमल तनु धरयौ कन्हाई।
गए तहाँ जहँ काली सोवत, उरग-नारि देखत अकुलाई।
कह्यौ कौन कौ बालक है तू, बार बार कही, भागि न जाई।
छनकहि मैँ जरि भस्म होइगौ, जब देखे उठि जाग जम्हाई।
उरग-नारि की बानी सुनि कै, आपु हँसे मन मैँ मुसुकाई।
मोकौँ कंस पठायौ देखन, तू याकौँ अब देहि जगाई।
कहा कंस दिखरावत इनकौँ एक फूँकही मैँ जरि जाई।
पुनि-पुनि कहत सूर के प्रभु कौ, तू अब काहे न जाइ पराई ॥२९॥

झिरकि कै नारि, दै गारि गिरधारि तब, पूँछ पर लात दै अहि जगायौ।
उठ्यौ अकुलाइ, डर पाइ खग-राइ कौँ, देखि बालक गरब अति बढ़ायौ।
पूँछ लीन्ही झटकि धरनि सौँ गहि पटकि फुंकरयौ लटकि करि क्रोध फूले।
पूँछ राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि, देखि सब साँपि-अवसान भूले।
करत फन घात, विष जात उतरात अति, नीर जरि जात, नहिँ गात परसै।
सूर के स्याम प्रभु, लोक अभिराम, बिनु जान अहिराज विष ज्वाल बरसै ॥३०॥

उरग लियौ हरि कौँ लपटाइ।
गर्व-बचन कहि-कहि मुख भाषत, मोकौँ नहिँ जानत अहिराइ।
लियौ लपेटि चरन तैँ सिख लौँ, अति इहिँ मोसौँ करत ढिठाइ।
चाँपी पूँछ लुकावत अपनी, जुवतिनि कौँ नहिँ सकत दिखाइ।
प्रभु अंतरजामी सब जानत, अब डारौँ इहिँ सकुचि मिटाइ।
सूरदास प्रभु तन बिस्तारयौ, काली बिकल भयौ तब जाइ ॥३१॥

जबहिँ स्याम तन, अति बिस्तार्यौ ।
पटपटात टूटत अँग जान्यौ, सरन-सरन सु पुकार्यौ ।
यह बानी सुनतहिँ करुनामय, तुरत गए सकुचाइ ।
यहै बचन सुनि द्रुपद-सुता-मुख, दीन्हौ बसन बढ़ाइ ।
यहै बचन गजराज सुनायौ, गरुड़ छाँड़ि तहँ धाए ।
यहै बचन सुनि लाखा-गृह मैँ पांडव जरत बचाए ।
यह बानी सहि जात न प्रभु सौँ, ऐसे परम कृपाल ।
सूरदास प्रभु अंग सकोर्यौ, ब्याकुल देख्यौ ब्याल ॥३२॥

नाथत ब्याल बिलंब न कीन्हौ ।
पग सौँ चाँपि धीँच बल तोर्यौ, नाक फोरि गहि लीन्हौ ।
कूदि चढ़े ताके माथे पर, काली करत बिचार ।
स्रवननि सुनी रही यह बानी, ब्रज ह्वैहै अवतार ।
तेइ अवतरे आइ गोकुल मैँ, मैँ जानी यह बात ।
अस्तुति करन लग्यौ सहसौ मुख, धन्य-धन्य जग-तात ।
बार-बार कहि सरन पुकार्यौ, राखि-राखि गोपाल ।
सूरदास प्रभु प्रगट भए जब, देख्यौ ब्याल बिहाल ॥३३॥

आवत उरग नाथे स्याम ।
नंद, जसुदा, गोप गोपी, कहत हैँ बलराम ।
मोर-मुकुट, बिसाल लोचन, स्रवन कुंडल लोल ।
कटि पितंबर, बेष नटवर, नृतत फन प्रति डोल ।
देव दिवि दुंदुभि बजावत, सुमन गन बरषाइ ।
सूर स्याम बिलोकि ब्रज-जन, मातु, पितु सुख पाइ ॥३४॥

गोपाल राइ निरतत फन-प्रति ऐसे ।
गिरि पर आए बादर देखत, मोर अनंदित जैसे ।
डोलत मुकुट सीस पर हरि के, कुंडल-मंडित गंड ।
पीत बसन, दामिन मनु घन पर, तापर सूर-कोदंड ।
उरग-नारि आगैँ सब ठाढ़ीँ, मुख-मुख अस्तुति गावैँ ।
सूर स्याम अपराध छमहु अब, हम माँगैँ पति पावैँ ॥३५॥

गरुड़-त्रास तैँ जौ ह्याँ आयौ ।
तौ प्रभु चरन-कमल फन-फन-प्रति अपनैँ सीस धरायो ।

धनि रिषि साप दियौ खगपति कौँ, ह्याँ तब रह्यो छपाइ ।
प्रभु-बाहन-डर भाजि बच्यौ अहि, नातरु लेतौ खाइ ।
यह-सुनि कृपा करी नँद-नंदन चरन चिह्न प्रगटाए ।
सूरदास प्रभु अभय ताहि करि, उरग-द्वीप पहुँचाए ॥३६॥

सहस सकट भरि कमल चलाए ।
अपनी समसरि और गोप जे, तिनकौँ साथ पठाए ।
और बहुत काँवरि दधि-माखन, अहिरनि काँधैँ जोरि ।
नृप कैँ हाथ पत्र यह दीजौ, बिनती कीजौ मोरि ।
मेरौ नाम नृपति सौँ लीजौ, स्याम कमल लै आए ।
कोटि कमल आपुन नृप माँगे, तीनि कोटि हैँ पाए ।
नृपति हमहिँ अपनौँ करि जानौ तुम लायक हम नाहिँ ।
सूरदास कहियौ नृप आगैँ तुमहिँ छाँड़ि कहँ जाहिँ ! ॥३७॥

मुरली

जब हरि मुरली अधर धरत ।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैँ, जमुना-जल न बहत ॥
खग मोहैँ, मृग-जूथ भुलाहीँ, निरखि मदन-छबि छरत ।
पसु मोहैँ, सुरभी बिथकित, तृन दंतनि टेकि रहत ॥
सुक सनकादि सकल मुनि मोहैँ, ध्यान न तनक गहत ।
सूरजदास भाग हैँ तिनके, जे या सुखहिँ लहत ॥३८॥

(कहैँ कहा) अंगनि की सुधि बिसरि गईँ ।
स्याम-अधर मृदु सुनत मुरलिका, चकित नारि भईँ ।
जो जैसैँ सो तैसैँ रहि गईँ, सुख-दुख कह्यौ न जाइ ।
लिखी चित्र सी सूर सु ह्वै रहिँ, इकटक पल बिसराइ ॥३९॥

मुरली-धुनि स्रवन सुनत, भवन रहि न परै ।
ऐसी को चतुर नारि, धीरज मन धरै ॥
सुर नर मुनि सुनत सुधि न, सिव-समाधि टरै ।
अपनी गति तजत पवन, सरिता नहिँ ढरै ॥
मोहन-मुख-मुरली, मन मोहिनि बस करै ।
सूरदास सुनत स्रवन सुधा-सिंधु भरै ॥४०॥

बाँसुरी बजाइ आछे, रंग सौँ मुरारी ।
सुनि कै धुनि छूटि गई, संकर की तारी ॥

बेद पढ़न भूलि गए, ब्रह्मा ब्रह्मचारी ।
रसना गुन कहि न सकै, ऐसी सुधि बिसारी ।
इंद्र-सभा थकित भई, लगी जब करारी ।
रंभा कौ मान मिट्यौ, भूली नृत कारी ।।
जमुना जू थकित भईं नहीं सुधि सँभारी ।
सूरदास मुरली है तीन - लोक - प्यारी ॥४१॥

मुरली तऊ गुपालहिँ भावति ।
सुनि री सखी जदपि नँदलालहिँ, नाना भाँति नचावति ।
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति ।
कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ौ ह्वै आवति ॥
अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति ।
आपुन पौँढ़ि अधर सज्जा पर, कर पल्लव पलुटावति ।
भृकुटी कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप करावति ।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैँ सीस डुलावति ॥४२॥

अधर-रस मुरली लूटन लागी ।
जा रस कौँ षट रितु तब कीन्हौ, सौ रस पियति सभागी ॥
कहाँ रही, कहँ तैँ इह आई, कौनैँ याहि बुलाई ?
चक्रित भई कहतिं ब्रजबासिनि, यह तौ भली न आई ॥
सावधान क्यौँ होतिँ नहीँ तुम, उपजी बुरी बलाइ ।
सूरदास-प्रभु हम पर ताकौँ, कीन्हौ सौति बजाइ ॥४३॥

अबहीँ तैँ हम सबनि बिसारी ।
ऐसे बस्य भये हरि बाके, जाति न दसा बिचारी ॥
कबहूँ कर पल्लव पर राखत, कबहुँ अधर लै धारी ।
कबहुँ लगाइ लेत हिरदै सौँ, नैँकहुँ करत न न्यारी ।।
मुरली स्याम किए बस अपनैँ, जे कहियत गिरिधारी ।
सूरदास प्रभु कैँ तन-मन-धन, बाँस बँसुरिया प्यारी ॥४४॥

मुरली की सरि कौन करै ।
नंद-नँदन त्रिभुवन-पति नागर सो जो बस्य करै ॥
जबहीं जब मन आवत तब तब अधरनि पान करै ।
रहत स्याम आधीन सदाई आयसु तिनहिँ करै ।।

ऐसी भई मोहिनी माई मोहन मोह करै ।
सुनहु सूर याके गुन ऐसे ऐसी करनि करै ॥४५॥

काहैं न मुरली सौं हरि जोरै ।
काहैं न अधरनि धरैं जु पुनि-पुनि, मिली अचानक भोरैं ॥
काहैं नहीं ताहि कर धारैं, क्यौं नहिं ग्रीव नवावैं ।
काहैं न तनु त्रिभंग करि राखैं, ताके मनहिं चुरावैं ॥
काहैं न यौ आधीन रहैं ह्वै, वै अहीर वह बेनु ।
सूर स्याम कर तैं नहिं टारत, बन-बन चारत धेनु ॥४६॥

मुरलिया कपट चतुराई ठानी ।
कैसें मिलि गई नंद-नँदन कौं, उन नाहिंन पहिचानी ॥
इक वह नारि, बचन मुख मीठे, सुनत स्याम ललचाने ।
जाति-पाँति की कौन चलावै, वाकैं रंग भुलाने ॥
जाकौ मन मानत है जासौं, सो तहँई सुख मानै ।
सूर स्याम वाके गुन गावत, वह हरि के गुन गानै ॥४७॥

स्यामहिं दोष कहा कहि दीजै ।
कहा बात मुरली सौं कहियै, सब अपनेहिं सिर लीजै ॥
हमहीं कहति बजावहु मोहन, यह नाहीं तब जानी ।
हम जानी यह बाँस बँसुरिया, को जानै पटरानी ॥
बारे तैं मुँह लागत-लागत, अब ह्वै गई सयानी ।
सुनहु सूर हम भोरी-भारी, याकी अकथ कहानी ॥४८॥

मुरली कहै सु स्याम करैं री ।
वाही कैं बस भए रहत हैं, वाकैं रंग ढरैं री ॥
घर-बन, रैन-दिना सँग डोलत कर तैं करत न न्यारी ।
आई बन बलाइ यह हमकौं, कहा दीजियै गारी ॥
अब लौं रहे हमारे माई, इहिं अपने अब कीन्हे ।
सूर स्याम नागर यह नागरि, दुहुँनि भलैं कर चीन्हे ॥४९॥

मेरे दुख कौ ओर नहीं ।
षट रितु सीत उष्न बरषा मैं, ठाढ़े पाइ रही ॥
कसकी नहीं नैकुहूँ काटत, घामैं राखी डारि ।
अगिनि-सुलाक देत नहिं मुरकी, बेह बनावत जारि ॥

तुम जानति मोहिँ बाँस बँसुरिया अगिनि छाप दै आई।
सूर स्याम ऐसैँ तुम लेहु न, खिझति कहा हौ माई ॥२०॥

स्रम करिहौ जब मेरी सी।
तब तुम अधर सुधा-रस बिलसहु, मैँ ह्वै रहिहौँ चेरी सी॥
बिना कष्ट यह फल न पाइहौ, जानति हौ अवडेरी सी।
षटरितु सीत तपनि तन गारौ, बाँस बँसुरिया केरी सी॥
कहा मौन ह्वै ह्वै जु रही हौ, कहा करति अवसेरी सी।
सुनहु सूर मैँ न्यारी ह्वैहौँ, जब देखौँ तुम मेरी सी॥२१॥

मुरली स्याम बजावन दै री।
स्रवननि सुधा पियति काहै नहिँ, इहिँ तू जनि बरजै री॥
सुनति नहीँ वह कहति कहा है, राधा राधा नाम।
तू जानति हरि भूल गए मोहिँ, तुम एकै पति बाम॥
वाही कैँ मुख नाम धरावत, हमहिँ मिलावत ताहि।
सूर स्याम हमकौँ नहिँ बिसरे, तुम डरपति हौ काहि॥२२॥

मुरलिया मोकौँ लागति प्यारी।
मिलि अचानक आइ कहूँ तैँ, ऐसी रही कहाँ री॥
धनि याके पितु-मातु, धन्य यह, धन्य-धन्य मृदु बोलनि।
धन स्याम गुन गुनि कै ल्याए, नागरि चतुर अमोलनि॥
यह निरमोल मोल नहिँ याकौ, भली न यातैँ कोई।
सूरदास याके पटतर कौ, तौ दीजै जौ होई॥२३॥

कमरी

धनि धनि यह कामरी मोहन स्याम की।
यहै ओढ़ि जात बन, यहै सेज कौ बसन, यहै निवारिनि मेह-
बूँद छाँह घाम की।
याही ओट सहत सीसिर-सीत, याहीँ गहने हरत, लै धरत
ओट कोटि बाम की।
यहै जाति-पाँति, परिपाटी यह सिखवत, सूरज प्रभु के यह
सब बिसराम की॥२४॥

यह कमरी कमरी करि जानति।
जाके जितनी बुद्धि हृदय मैँ, सो तितनौ अनुमानति॥

या कमरी के एक रोम पर, वारौं चीर पटंबर ।
सो कमरी तुम निंदति गोपी, जो तिहुँ लोक अडंबर ॥
कमरी कैं बल असुर सँहारे, कमरिहिं तैं सब भोग ।
जाति-पाँति कमरी सब मेरी, सूर सबै यह जोग ॥४५॥

चीर-हरन

भवन रवन सबही बिसरायौ ।
नंद-नँदन जब तैं मन हरि लियौ, बिरथा जनम गँवायौ ॥
जप, तप, ब्रत, संजम, साधन तैं, द्रवित होत पाषान ।
जैसैं मिलै स्याम सुंदर बर, सोइ कीजै, नहिं आन ॥
यहै मंत्र दृढ़ कियौ सबनि मिलि, यातैं होइ सुहोइ ।
बृथा जनम जग मैं जिनि खोवहु, ह्याँ अपनौ नहिं कोइ ॥
तब प्रतीत सबहिनि कौं आई, कीन्हौ दृढ़ बिस्वास ।
सूर स्यामसुंदर पति पावैं, यहै हमारी आस ॥४६॥

जमुना-तट देखे नँद नंदन ।
मोर-मुकुट मकराकृत-कुंडल, पीत-बसन तन चंदन ॥
लोचन तृप्त भए दरसन तैं, उर की तपति बुझानी ।
प्रेम-मगन तब भई सुंदरी, उर गदगद, मुख-बानी ॥
कमल-नयन तट पर हैं ठाढ़े, सकुचहिं मिलि ब्रज-नारी ।
सूरदास-प्रभु अंतरजामी, ब्रत-पूरन पगधारी ॥४७॥

बनत नहीं जमुना कौ ऐबौ ।
सुंदर स्याम घाट पर ठाढ़े, कहौ कौन बिधि जैबौ ॥
कैसैं बसन उतारि धरैं हम, कैसैं जलहिं समैबौ ।
नंद-नँदन हमकौं देखैंगे, कैसैं करि जु अन्हैबौ ॥
चोली, चीर, हार लै भाजत, सो कैसैं करि पैबौ ।
अंकम भरि-भरि लेत सूर प्रभु काल्हि न इहिं पथ ऐबौ ॥४८॥

नीकैं तप कियौ तनु गारि ।
आपु देखत कदम पर चढ़ि, मानि लियौ मुरारि ॥
वर्ष भर ब्रत-नेम-संजम, स्रम कियौ मोहिं काज ।
कैसे हूँ मोहिं भजै कोऊ, मोहिं बिरद की लाज ॥
धन्य ब्रत इन कियौ पूरन, सीत तपति निवारि ।
काम-आतुर भजीं मोकौं, नव तरुनि ब्रज-नारि ॥

कृपा-नाथ कृपाल भए तब, जानि जन की पीर।
सूर-प्रभु अनुमान कीन्हौ, हरौं इनके चीर ॥५९॥

बसन हरे सब कदम चढ़ाए।
सोरह सहस गोप-कन्यनि के, अंग-अभूषन स-हित चुराए॥
नीलांबर, पाटबंर, सारी, सेत पीत चुनरी, अरुनाए।
अति बिस्तार नीप तरु तामैं, लै-लै जहाँ-तहाँ लटकाए॥
मनि-आभरन डार डारनि प्रति, देखत छबि मनहीं अँटकाए।
सूर, स्याम जु तिनि ब्रत पूरन, कौ फल डारनि कदम फराए ॥६०॥

हमारे अंबर देहु मुरारी।
लै सब चीर कदम चढ़ि बैठे, हम जल-माँझ उघारी॥
तट पर बिना बसन क्यौं आवैं, लाज लगति है भारी।
चोली हार तुमहिं कौं दीन्हैं, चीर हमहिं द्यौ डारी॥
तुम यह बात अचंभौ भाषत, नाँगी आवहु नारी।
सूर स्याम कछु छोह करौ जू, सीत गई तनु मारी ॥६१॥

लाज ओट यह दूरि करौ।
जोइ मैं कहौं करौ तुम सोई, सकुच बापुरिहिं कहा करौ॥
जल तैं तीर आइ कर जोरहु, मैं देखौं तुम बिनय करौ।
पूरन ब्रत अब भयौ तुम्हारौ, गुरुजन संका दूरि करौ॥
अब अंतर मोसौं जनि राखहु, बार-बार हठ बृथा करौ।
सूर स्याम कहैं चीर देत हैं, मो आगैं सिंगार करौ ॥६२॥

ब्रत पूरन कियौ नंद-कुमार। जुवतिनि के मेटे जंजार॥
जप तप करि तनु अब जनि गारौ। तुम घरनी मैं कंत तुम्हारौ॥
अंतर सोच दूरि करि डारौ। मेरौ कह्यौ सत्य उर धारौ॥
सरद-रास तुम आस पुराऊँ। अंकम भरि सबकौं उर लाऊँ॥
यह सुनि सब मन हरष बढ़ायौ। मन-मन कह्यौ कृष्न पति पायौ॥
जाहु सबै घर घोष-कुमारी। सरद-रास देहौं सुख भारी॥
सूर स्याम प्रगटे गिरिधारी। आनँद सहित गईं घर नारी ॥६३॥

गोवर्द्धनधारण

बाजति नंद-अवास बधाई।
बैठे खेलत द्वार आपनैं, सात बरस के कुँवर कन्हाई॥

बैठे नंद सहित बृषभानुहिँ, और गोप बैठे सब आई ।
थापैँ देत घरनि के द्वारैँ, गावतिँ मंगल नारि बधाई ।।
पूजा करत इंद्र की जानी, आए स्याम तहाँ अतुराई ।
बार बार हरि बूझत नंदहिँ, कौन देब की करत पुजाई ।।
इंद्र बड़े कुल-देव हमारे, उनतैँ सब यह होति बड़ाई ।
सूर स्याम तुम्हरे हित कारन, यह पूजा हम करत सदाई ।।६४।।

मेरौ कह्यौ सत्य करि जानौ ।
जौ चाहौ ब्रज की कुसलाई, तौ गोबर्धन मानौ ।।
दूध दही तुम कितनौ लैहौ, गोसुत बढ़ैँ अनेक ।
कहा पूजि सुरपति सैँ पायौ, छाँड़ि देहु यह टेक ।।
मुँह माँगे फल जौ तुम पावहु, तौ तुम मानहु मोहिँ ।
सूरदास प्रभु कहत ग्वाल सैाँ, सत्य बचन करि दोहि ।।६५।।

बिप्र बुलाइ लिए नँदराइ ।
प्रथमारंभ जज्ञ कौ कीन्हौ, उठे बेद-धुनि गाइ ।।
गोबर्धन सिर तिलक चढ़ायौ, मेटि इंद्र ठकुराइ ।
अन्नकूट ऐसौ रचि राख्यौ, गिरि की उपमा पाइ ।।
भाँति-भाँति ब्यंजन परसाए कापैँ बरन्यौ जाइ ।
सूर स्याम सैाँ कहत ग्वाल, गिरि जेवहिँ कहौ बुझाइ ।।६६।।

गिरिवर स्याम की अनुहारि ।
करत भोजन अधिक रुचि यह, सहस भुजा पसारि ।।
नंद कौ कर गहे ठाढ़े, यहै गिरि कौ रूप ।
सखी ललिता राधिका सैाँ कहति देखि स्वरूप ।।
यहै कुंडल, यहै माला, यहै पीत पिछौरि ।
सिखर सोभा स्याम की छबि, स्याम-छबि गिरि जोरि ।।
नारि बदरौला रही, वृषभानु-घर रखवारि ।
तहाँ तैँ उहिँ भोग अरप्यौ, लियौ भुजा पसारि ।।
राधिका-छबि देखि भूली, स्याम निरखैँ ताहि ।
सूर प्रभु-बस भई प्यारी, कोर-लोचन चाहि ।।६७।।

ब्रज बासिनि मोकौँ बिसरायौ ।
भली करी बलि मेरी जो कछु, सो सब लै परबतहिँ चढ़ायौ ।।

मोसौं गर्ब कियौ लघु प्रानी, ना जानियै कहा मन आयौ।
तैंतिस कोटि सुरनि कौ नायक, जानि-बूझि इन मोहिं भुलायौ॥
अब गोपनि भूतल नहिं राखौं, मेरी बलि मोहिं नहिं पहुँचायौ।
सुनहु सूर मेरैं मारत धौं, परबत कैसैं होत सहायौ॥६८॥

गिरि पर बरषन लागे बादर।
मेघवर्त्त, जलवर्त्त, सैन सजि, आए लै लै आदर॥
सलिल अखंड धार धर टूटत, किये इंद्र मन सादर।
मेघ परस्पर यहै कहत हैं, धोइ करहु गिरि खादर॥
देखि देखि डरपत ब्रजबासी, अतिहिं भए मन कादर।
यहै कहत ब्रज कौन उबारै, सुरपति कियैं निरादर॥
सूर स्याम देखैं गिरि अपनैं, मेवलि कीन्हौ दादर।
देव आपनौ नहीं सम्हारत, करत इंद्र सौं ठादर॥६९॥

ब्रज के लोग फिरत बितताने।
गैयनि लै बन ग्वाल गए, ते धाए आवत ब्रजहिं पराने॥
कोउ चितवत नभ-तन चकित ह्वै, कोउ गिरि परत धरनि अकुलाने।
कोउ लै रहत ओट बृच्छनि की, अंध-धुंध दिसि-बिदिसि भुलाने॥
कोउ पहुँचे जैसैं तैसैं गृह, कोउ ढूँढ़त गृह नहिं पहिचाने।
सूरदास गोबर्धन-पूजा कीन्हे कौ फल लेहु बिहाने॥७०॥

राखि लेहु अब नंदकिसोर।
तुम जो इंद्र की मेटी पूजा, बरसत है अति जोर॥
ब्रजबासी तुम तन चितवत हैं, ज्यौं करि चंद चकोर।
जनि जिय डरौ, नैन जनि मूँदौ, धरिहौं नख की कोर॥
करि अभिमान इंद्र झरि लायौ, करत घटा घन घोर।
सूर स्याम कह्यौ तुम कौं राखौं बूँद न आवै छोर॥७१॥

स्याम लियौ गिरिराज उठाइ।
धीर धरौ हरि कहत सबनि सौं, गिरि गोबर्धन करत सहाइ॥
नंद गोप ग्वालनि के आगैं, देव कह्यौ यह प्रगट सुनाइ।
काहे कौं व्याकुल भएँ डोलत, रच्छा करै देवता आइ॥
सत्य बचन गिरि-देव कहत हैं, कान्ह लेहि मोहिं कर उचकाइ।
सूरदास नारी-नर ब्रज के, कहत धन्य तुम कुँवर कन्हाइ॥७२॥

गिरि जनि गिरै स्याम के कर तैं।
करत बिचार सबै ब्रजबासी, भय उपजत अति उर तैं॥
लै-लै लकुट ग्वाल सब धाए, करत सहाय जु तुरतैं।
यह अति प्रबल, स्याम अति कोमल, रबकि-रबकि हरबर तैं॥
सप्त दिवस कर पर गिरि धार्‌यौ, बरसि थक्यौ अंबर तैं।
गोपी ग्वाल नंद-सुत राख्यौ, मेघ-धार जलधर तैं॥
जमलार्जुन दोउ सुत कुबेर के, तेउ उखारे जर तैं।
सूरदास प्रभु इंद्र-गर्ब हरि, ब्रज राख्यौ करबर तैं॥७३॥

मेघनि जाइ कही पुकारि।
दीन ह्वै सुरराज आगैं, अस्त्र दीन्हे डारि॥
सात दिन भरि बरसि ब्रज पर, गई नैकुँ न झारि।
अखँड धारा सलिल निझर्‌यौ, मिटी नाहिँ लगारि॥
धरनि नैकुँ न बूँद पहुँची, हरषे ब्रज-नर-नारि।
सूर घन सब इंद्र आगैं, करत यहै गुहारि॥७४॥

घरनि घरनि ब्रज होति बधाई।
सात बरष कौ कुँवर कन्हैया, गिरिवर धरि जीत्यौ सुरराई॥
गर्ब सहित आयौ ब्रज बोरन, वह कहि मेरी भक्ति घटाई॥
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ, तब आयौ पाइनि तर धाई॥
कहाँ कहाँ नहिँ संकट मेटत, नर-नारी सब करत बड़ाई॥
सूर स्याम अब कैं ब्रज राख्यौ, ग्वाल करत सब नंद दोहाई॥७५॥

(तेरैं) भुजनि बहुत बल होइ कन्हैया।
बार-बार भुज देखि तनक से, कहति जसोदा मैया॥
स्याम कहत नहिँ भुजा पिरानी, ग्वालनि कियौ सहैया।
लकुटिनि टेकि सबनि मिलि राख्यौ, अरु बाबा नँदरैया॥
मोसौं क्यौं रहतौ गोबरधन, अतिहिँ बड़ौ वह भारी।
सूर स्याम यह कहि परबोध्यौ चकित देखि महतारी॥७६॥

मातु पिता इनके नहिँ कोइ।
आपुहिँ करता, आपुहिँ हरता, त्रिगुन रहित हैं सोइ॥
कितिक बार अवतार लियौ ब्रज, ये हैं ऐसे ओइ।
जल-थल, कीट-ब्रह्म के व्यापक, और न इन सरि होइ॥

बसुधा-भार-उतारन-काजैं, आपु रहत तनु गोइ।
सूर स्याम माता-हित-कारन, भोजन माँगत रोइ ॥७७॥

सुरगन सहित इंद्र ब्रज आवत।
धवल बरन ऐरावत देख्यौ उतरि गगन तैं धरनि धँसावत॥
अमरा-सिव-रबि-ससि चतुरानन, हय-गय बसह हंस-मृग जावत।
धर्मराज, बनराज, अनल दिव, सारद, नारद सिव-सुत भावत॥
मेढ़ा, महिष, मगर, गुदरारौ, मोर, आखु मनवाहन, गावत।
ब्रज के लोग देखि डरपे मन, हरि आगैं कहि कहि जु सुनावत॥
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ, आवत चल्यौ ब्रजहिं अतुरावत॥
घेरौ करत जहाँ तहँ ठाढ़े, ब्रजबासिनि कौं नाहिं बचावत।
दूरहिं तैं बाहन सौं उतर्यौ, देवनि सहित चल्यौ सिर नावत।
आइ पर्यौ चरननि तर आतुर, सूरदास-प्रभु सीस उठावत॥७८॥

रास लीला

जबहिं बन मुरली स्त्रवन परी।
चकित भईं गोप-कन्या सब, काम-धाम बिसरीं॥
कुल मर्जाद बेद की आज्ञा नैंकुहुँ नहीं डरीं।
स्याम-सिंधु, सरिता-ललना-गन, जल की ढरनि ढरीं॥
अँग-मरदन करिबे कौं लागीं, उबटन तेल धरी।
जो जिहिं भाँति चली सो तैसैंहिं, निसि बन कौं जु खरी।
सुत-पति-नेह, भवन-जन-संका, लज्जा नाहिं करी।
सूरदास-प्रभु मन हरि लीन्हौ, नागर नवल हरी॥७९॥

चली बन बेनु सुनत जब धाइ।
मातु पिता-बांधव अति त्रासत, जाति कहाँ अकुलाइ॥
सकुच नहीं, संका कछु नाहीं, रैनि कहाँ तुम जाति।
जननी कहति दई की घाली, काहे कौं इतराति॥
मानति नहीं और रिस पावति, निकसी नातौ तोरि।
जैसैं जल-प्रवाह भादौं कौ, सो को सकै बहोरि॥
ज्यौं केंचुरी भुअंगम त्यागत, मात पिता यौं त्यागे।
सूर स्याम कैं हाथ बिकानी, अलि अंबुज अनुरागे॥८०॥

मातु-पिता तुम्हरे धौं नाहीं॥
बारंबार कमल-दल-लोचन, यह कहि-कहि पछिताहीं॥

उनकैं लाज नहीं, बन तुमकौं आवन दीन्ही राति ।
सब सुंदरी, सबै नवजोबन, निठुर अहिर की जाति ।।
की तुम कहि आईं, की ऐसेहिँ कीन्ही कैसी रीति ।
सूर तुमहिँ यह नहीं बूझियै, करी बड़ी बिपरीति ।।८१।।

इहिँ बिधि बेद-मारग सुनौ ।
कपट तजि पति करौ पूजा, कहा तुम जिय गुनौ ।।
कंत मानहु भव तरौगी, और नाहिँ उपाइ ।
ताहि तजि क्यौं बिपिन आईं, कहा पायौ आइ ।।
बिरध अरु बिन भागहूँ कौ, पतित जौ पति होइ ।
जऊ मूरख होइ रोगी, तजै नाहीं जोइ ।।
यहै मैं पुनि कहत तुम सौं, जगत मैं यह सार ।
सूर पति-सेवा बिना क्यौं, तरौगी संसार ।।८२।।

तुम पावत हम घोष न जाहिँ ।
कहा जाइ लै हैं हम ब्रज, यह दरसन त्रिभुवन नाहिँ ।।
तुमहूँ तैं ब्रज हितू न कोऊ, कोटि कहौ नहिँ मानैं ।
काके पिता, मातु हैं काकी, काहूँ हम नहिँ मानैं ।।
काके पति, सुत-मोह कौन कौ, घरही कहा पठावत ।
कैसौ धर्म, पाप है कैसौ, आस निरास करावत ।।
हम जानैं केवल तुमहीं कौं, और बृथा संसार ।
सूर स्याम निठुराई तजियै, तजियै बचन-विकार ।।८३।।

कहत स्याम श्रीमुख यह बानी ।
धन्य-धन्य दृढ़ नेम तुम्हारौ, बिनु दामनि मो हाथ बिकानी ।।
निरदय बचन कपट के भाखे तुम अपनैं जिय नैंकु न आनी ।।
भजीं निसंक आइ तुम मोकौं गुरुजन की संका नहिँ मानी ।।
सिंह रहै जंबुक सरनागत, देखी सुनी न अकथ कहानी ।
सूर स्याम अंकम भरि लीन्हीं, बिरह अगिन-झर तुरत बुझानी ।।८४।।

कियौ जिहिँ काज तप घोष-नारी ।
देहु फल हौं तुरत लेहु तुम अब घरी, हरष चित करहु दुख देहु डारी ।।
रास रस रचौं, मिलि संग बिलसौं, सबै बस्त्र हरि कहि जो निगम बानी ।
हँसत मुख मुख निरखि, वचन अंमृत बरषि, कृपा-रस-भरे सारंग पानी ।।

ब्रज-जुवति चहुँ पास, मध्य सुंदर स्याम, राधिका बाम, अति छबि बिराजै ।
सूर नव-जलद-तनु, सुभग स्यामल कांति, इंदु-बहु-पाँति-बिच अधिक छाजै ॥८५॥

मानौ माई घन घन अंतर दामिनि ।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर, सोभित हरि-ब्रज भामिनि ॥
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद-सुहाई-जामिनि ।
सुंदर ससि गुन रूप-राग-निधि, अंग-अंग अभिरामिनि ॥
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौँ, मुदित भईँ गुन ग्रामिनि ।
रूप-निधान स्याम सुंदर तन, आनँद मन बिस्रामिनि ॥
खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक भाइ-भेद गज-गामिनि ।
को गति गनै सूर मोहन सँग, काम बिमोह्यौ कामिनि ॥८६॥

गरब भयौ ब्रजनारि कौँ, तबहीँ हरि जाना ।
राधा प्यारी सँग लिये, भए अंतर्धाना ॥
गोपिनि हरि देख्यौ नहीँ, तब सब अकुलाई ।
चकित होइ पूछन लगीँ, कहँ गए कन्हाई ॥
कोउ मर्म जानै नहीँ, ब्याकुल सब बाला ।
सूर स्याम ढूँढ़ति फिरैँ, जित-जित ब्रज-बाला ॥८७॥

तुम कहुँ देखे स्याम बिसासी ।
तनक बजाइ बाँस की मुरली, लै गए प्रान निकासी ॥
कबहुँक आगैँ, कबहुँक पाछैँ, पग-पग भरति उसासी ।
सूर स्याम-दरसन के कारन, निकसीँ चंद-कला सी ॥८८॥

कहि धौँ री बन बेलि कहूँ तैँ देखे हैँ नँद-नंदन ।
बूझहु धौँ मालती कहूँ तैँ, पाए हैँ तन-चंदन ॥
कहिँ धौँ कुंद, कदंब बकुल, बट, चंपक, ताल, तमाल ।
कहि धौँ कमल कहाँ कमलापति, सुंदर नैन बिसाल ॥
कहि धौँ री कुमुदिनि, कदली कछु, कहि बदरी कर बीर ।
कहि तुलसी तुम सब जानति हौ, कहँ घनस्याम सरीर ॥
कहि धौँ मृगी मया करि हमसौँ, कहि धौँ मधुप मराल ।
सूरदास-प्रभु के तुम संगी, हैँ कहँ परम कृपाल ॥८९॥

स्याम सबनि कौँ देखहीँ, वै देखतिँ नाहीँ ।
जहाँ तहाँ ब्याकुल फिरैँ, धीर न तनु माहीँ ॥

कोउ बंसीबट कौं चली, कोउ बन घन जाहीं।
देखि भूमि वह रास की, जहँ-तहँ पग छाहीं॥
सदा हठीली लाड़िली, कहि-कहि पछिताहीं।
नैन सजल जल ढारहीं ब्याकुल मन माहीं॥
एक-एक ह्वै ढूँढ़हीं, तरुनी बिकलाहीं।
सूरज-प्रभु कहुँ नहिँ मिले, ढूँढ़ति द्रुम पाहीं॥६०॥

तब नागरि जिय गर्ब बढ़ायौ।
मो समान तिय और नहीं कोउ, गिरिधर मैं हीं बस करि पायौ॥
जोइ-जोइ कहति करत पिय सोइ सोई मेरैं ही हित रास उपायौ।
सुंदर, चतुर और नहिँ मोसी, देह धरे कौ भाव जनायौ॥
कबहुँक बैठि जाति हरि-कर धरि, कबहुँ कहति मैं अति स्रम पायौ।
सूर स्याम गहि कंठ रही तिय, कंध चढ़ौं यह बचन सुनायौ॥६१॥

कहै भामिनी कंत सौं, मोहिँ कंध चढ़ावहु।
नृत्य करत अति स्रम भयो, ता स्रमहिँ मिटावहु॥
धरनी धरत बनै नहीं, पग अतिहिँ पिराने।
तिया-बचन सुनि गर्ब के पिय मन मुसुकाने॥
मैं अबिगत, अज, अकल हौं, यह मरम न पायौ।
भाव बस्य सब पै रहौं, निगमनि यह गायौ॥
एक प्रान द्वै देह हैं, द्विविधा नहिँ यामैं।
गर्ब कियौ नरदेह तैं, मैं रहौं न तामैं॥
सूरज-प्रभु अंतर भए, संग तैं तजि प्यारी।
जहँ की तहँ ठाढ़ी रही, वह घोष-कुमारी॥६२॥

जौ देखैं द्रुम के तरैं, मुरझी सुकुमारी।
चकित भईं सब सुंदरी, यह तौ राधा री॥
याही कौं खोजति सबै, यह रही कहाँ री।
धाइ परीं सब सुंदरी, जो जहाँ-तहाँ री।
तन की तनकहुँ सुधि नहीं, ब्याकुल भईं बाला।
यह तौ अति बेहाल है, कहँ गए गोपाला।
बार-बार बूझतिँ सबै, नहिँ बोलति बानी॥
सूर स्याम काहैं तजी, कहि सब पछितानी॥६३॥

केहिं मारग मैं जाउँ सखी री, मारग मोहिँ बिसर्‌यौ।
ना जानौं कित ह्वै गए मोहन, जात न जानि पर्‌यौ॥
अपनौ पिय ढूँढ़ति फिरौं, मोहिँ मिलिबे कौ चाव।
काँटो लाग्यौ प्रेम कौ, पिय यह पायौ दाव॥
बन डोंगर ढूँढ़त फिरी, घर-मारग तजि गाउँ।
बूझौं द्रुम, प्रति बेलि कोउ, कहै न पिय कौ नाउँ॥
चकित भई, चितवत फिरी, ब्याकुल अतिहिँ अनाथ।
अब कैं जौ कैसहुँ मिलौं, पलक न त्यागौं साथ॥
हृदय माँझ पिय-घर करौं, नैननि बैठक देउँ।
सूरदास प्रभु सँग मिलौं, बहुरि रास-रस लेउँ॥१४॥

कृपा सिंधु हरि कृपा करौ हो।
अनजानैं मन गर्व बढ़ायौ, सो जिनि हृदय धरौ हो॥
सोरह सहस पीर तनु एकै, राधा जिव, सब देह।
ऐसी दसा देखि करुनामय, प्रगटौ हृदय-सनेह॥
गर्व-हर्‌यौ तनु, बिरह प्रकास्यौ, प्यारी ब्याकुल जानि।
सुनहु सूर अब दरसन दीजै, चूक लई इनि मानि॥१५॥

अंतर तैं हरि प्रगट भए।
रहत प्रेम के बस्य कन्हाई, जुवतिनि कौं मिलि हर्ष दए॥
वैसोइ सुख सबकौ फिरि दीन्हैं, वहै भाव सब मानि लियौ।
वै जानति हरि संग तबहिँ तैं, वहै बुद्धि सब, वहै हियौ॥
वहै रास-मंडल-रस जानतिँ, बिच गोपी, बिच स्याम धनी।
सूर स्याम स्यामा मधि नायक, वहै परस्पर प्रीति बनी॥१६॥

आजु हरि अद्‌भुत रास उपायौ।
एकहिँ सुर सब मोहित कीन्हे, मुरली नाद सुनायौ॥
अचल चले, चल थकित भए, सब मुनिजन ध्यान भुलायौ।
चंचल पवन थक्यौ नहिँ डोलत, जमुना उलटि बहायौ॥
थकित भयौ चंद्रमा सहित-मृग, सुधा-समुद्र बढ़ायौ।
सूर स्याम गोपिनि सुखदायक, लायक दरस दिखायौ॥१८॥

बनावत रास-मंडल प्यारौ।
मुकुट की लटक, झलक कुंडल की, निरतत नंद दुलारौ॥

उर बनमाला सोह सुंदर बर, गोपिनि कैं सँग गावै।
लेत उपज नागर नागरि सँग, बिच-बिच तान सुनावै॥
बंसीबट-तट रास रच्यौ है, सब गोपिनि सुखकारौ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन सौं, भक्तनि प्रान अधारौ॥९८॥

रास रस स्रमित भईं ब्रजबाल।
निसि सुख दै जमुना-तट लै गए, भोर भयौ तिहिं काल॥
मनकामना भई परिपूरन, रही न एकौ साध।
षोड़स सहस नारि सँग मोहन, कीन्हौ सुख अवगाधि॥
जमुना-जल बिहरत नँद-नंदन, संग मिलीं सुकुमारि।
सूर धन्य धरनी वृन्दाबन, रबि तनया सुखकारि॥९९॥

ललकत स्याम मन ललचात।
कहत हैं घर जाहु सुंदरि, मुख न आवति बात॥
षट सहस दस गोप कन्या, रैनि भोगीं रास।
एक छिन भईं कोउ न न्यारी, सबनि पूजी आस॥
बिहँसि सब घर-घर पठाईं ब्रज गईं ब्रज-बाल।
सूर-प्रभु नँद-धाम पहुँचे, लख्यौ काहु न ख्याल॥१००॥

ब्रजबासी सब सोवत पाए।
नंद-सुवन मति ऐसी ठानी, उनि घर लोग जगाए॥
उठे प्रात-गाथा मुख भाषत, आतुर रैनि बिहानी।
ऍंडत अंग जम्हात बदन भरि, कहत सबै यह बानी॥
जो जैसे सो तैसे लागे, अपनैं-अपनैं काज।
सूर स्याम के चरित अगोचर, राखी कुल की लाज॥१०१॥

ब्रज-जुवती रस-रास पगीं।
कियौ स्याम सब कौ मन भायौ निसि रति-रंग जगीं॥
पूरन ब्रह्म, अकल, अबिनासी, सबनि संग सुख चीन्हौ।
जितनी नारि भेष भए तितने, भेद न काहू कीन्हौ॥
वह सुख टरत न काहूँ मन तैं, पति हित-साध पुराईं।
सूर स्याम दूलह सब दुलहिनि, निसि भाँवरि दै आईं॥१०२॥

रास रस लीला गाइ सुनाऊँ।
यह जस कहै, सुनै मुख स्रवननि, तिहि चरननि सिर नाऊँ॥

कहा कहौं वक्ता स्रोता फल, इक रसना क्यौं गाऊँ ।
अष्ट सिद्धि नवनिधि सुख-संपति, लघुता कर दरसाऊँ ॥
जौ परतीति होइ हिरदै मैं, जग-माया धिक देखै ।
हरि जन दरस हरिहिं सम बूझै अंतर कपट न लेखै ॥
धनि वक्ता, तेई धनि स्रोता, स्याम निकट हैं ताकैं ।
सूर धन्य तिहि के पितु माता, भाव भगति है जाकैं ॥१०३॥

पनघट लीला

पनघट रोके रहत कन्हाई ।
जमुना-जल कोउ भरन न पावै, देखत हीं फिर जाई ॥
तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई, आपुन रहे छपाई ।
तट ठाढ़े जे सखा संग के, तिनकौं लियौ बुलाई ॥
बैठारयौ ग्वालिनि कौं द्रुम-तर, आपुन फिरि-फिरि देखत ।
बड़ी बार भई कोउ न आई, सूर स्याम मन लेखत ॥१०४॥

जुवति इक आवति देखी स्याम ।
द्रुम कैं ओट रहे हरि आपुन, जमुना तट गई वाम ॥
जल हलोरि गागरि भरि नागरि, जबहीं सीस उठायौ ।
घर कौं चली जाइ ता पाछैं, सिर तैं घट ढरकायौ ॥
चतुर ग्वालि कर गह्यौ स्याम कौ कनक लकुटिया पाई ।
औरनि सौं करि रहे अचगरी, मोसौं लगत कन्हाई ॥
गागरि लै हँसि देत ग्वारि-कर, रीतौ घट नहिं लैहौं ।
सूर स्याम ह्याँ आनि देहु भरि तबहि लकुट कर दैहौं ॥१०५॥

घट भरि दियौ स्याम उठाइ ।
नैंकु तन की सुधि न ताकौं, चली ब्रज-समुहाइ ॥
स्याम सुंदर नैन-भीतर, रहे आनि समाइ ।
जहाँ-जहँ भरि दृष्टि देखै, तहाँ-तहाँ कन्हाइ ॥
उतहिं तैं इक सखी आई, कहति कहा भुलाइ ।
सूर अबहीं हँसत आई, चली कहा गवाँइ ॥१०६॥

नीकैं देहु न मेरी गिँडुरी ।
लै जैहैं धरि जसुमति आगैं, आवहु री सब मिलि इक झुँड री ॥
काहूँ नहीं डरात कन्हाई, बाट-घाट तुम करत अचगरी ।
जमुना-दह गिँडुरी फटकारी, फोरी सब मटुकी अरु गागरी ॥

भली करी यह कुँवर कन्हाई, आजु मेटिहैं तुम्हरी लँगरी ।
चलीं सूर जसुमति के आगैं, उरहन लै ब्रज-तरुनी सगरी ॥१०७॥

सुनहु महरि तेरौ लाड़िलौ, अति करत अचगरी ।
जमुन भरन जल हम गईं, तहँ रोकत डगरी ॥
सिरतैं नीर ढराइ दै, फोरी सब गगरी ।
गेँडुरि दई फटकारि कै, हरि करत जु लँगरी ॥
नित प्रति ऐसे ढँग करै, हमसौं कहै धगरी ।
अब बस-वास बनै नहीं, इहिं तुव ब्रज-नगरी ॥
आपु गयौ चढ़ि कदम पर, चितवत रहीं सगरी ।
सूर स्याम ऐसैं हि सदा, हम सौं करै झगरी ॥१०८॥

ब्रज-घर-घर यह बात चलावत ।
जसुमति कौ सुत करत अचगरी, जमुना जल कोउ भरन न पावत ॥
स्याम वरन नटवर वपु काछे, मुरली राग मलार बजावत ॥
कुंडल-छबि रबि-किरनहुँ तैं दुति, मुकुट इंद्र-धनुहूँ तैं भावत ॥
मानत काहु न करत अचगरी, गागरि धरि जल भुइँ ढरकावत ॥
सूर स्याम कौं मात पिता दोउ, ऐसे ढँग आपुनहिं पढ़ावत ॥१०९॥

करत अचगरी नंद महर कौ ।
सखा लिये जमुना-तट बैठ्यौ, निबह न लोग डगर कौ ॥
कोउ खीझौ, कोउ किन बरजौ, जुवतिनि कैं मन ध्यान ।
मन-बच-कर्म स्याम सुंदर तजि और न जानतिं आन ॥
यह लीला सब स्याम करत हैं, ब्रज-जुवतिनि कैं हेत ।
सूर भजै जिहिं भाव कृष्न कौं, ताकौं सोइ फल देत ॥११०॥

दान लीला

ऐसौ दान माँगियै नहिं जौ, हम पैं दियौ न जाइ ।
बन मैं पाइ अकेली जुवतिनि, मारग रोकत धाइ ॥
वाट बाट औघट जमुना-तट, बातैं कहत बनाइ ।
कोऊ ऐसौ दान लेत है, कौनैं पठए सिखाइ ॥
हम जानतिं तुम यौं नहिँ रैहौ, रहिहौ गारी खाइ ।
जो रस चाहौ सो रस नाहीं, गोरस पियौ अघाइ ॥
औरनि सौं लै लीजै मोहन, तब हम देहिँ बुलाइ ।
सूर स्याम कत करत अचगरी, हम सौं कुँवर कन्हाइ ॥१११॥

ऐसैं जनि बोलहु मँद-लाला।
छाँड़ि देहु अँचरा मेरौ नीकैं, जानत और सी बाला॥
बार-बार मैं तुमहिं कहति हौं, परिहौ बहुरि जँजाला।
जोबन, रूप देखि ललचाने, अबहीं तैं ये ख्याला॥
तरुनाई तनु आवन दीजै, कत जिय होत बिहाला।
सूर स्याम उर तैं कर टारहु, टूटै मोतिनि-माला॥११२॥

तैं कत तोर्‌यौ हार नौसरि कौ।
मोती बगरि रहे सब बन मैं, गयौ कान कौ तरिकौ॥
ये अवगुन जु करत गोकुल मैं तिलक दिये केसरि कौ।
ढीठ गुवाल दही कौ मातौ, ओढ़नहार कमरि कौ॥
जाइ पुकारैं जसुमति आगैं, कहति जु मोहन लरिकौ।
सूर स्याम जानी चतुराई, जिहिं अभ्यास महुअरि कौ॥११३॥

आपुन भईं सबै अब भोरी।
तुम हरि कौ पीतांबर झटक्यौ, उन तुम्हरी मोतिनि लर तोरी॥
माँगत दान ज्वाब नहिं देतीं, ऐसी तुम जोबन की जोरी।
उर नहिं मानतिं नंद-नँदन कौ, करतिं आनि झकझोरा झोरी॥
इक तुम नारि गँवारि भली हौ, त्रिभुवन मैं इनकी सरि को री।
सूर सुनहु लैहैं छँड़ाइ सब, अबहिं फिरौगी दौरी दौरी॥११४॥

हँसत सखनि यह कहत कन्हाई।
जाइ चढ़ौ तुम सघन द्रुमनि पर, जहँ-तहँ रहौ छपाई॥
तब लौं बैठि रहौ मुख मूँदे जब जानहु सब आईं।
कूदि परौ तब द्रुमनि द्रुमनि तैं, दै दै नंद-दुहाई॥
चकित होहिं जैसैं जुवती-गन, डरनि जाहिं अकुलाई।
बेनु-बिषान-मुरलि-धुनि कीजौ संख-सब्द घहनाई॥
नित प्रति जाति हमारैं मारग, यह कहियो समुझाई।
सूर स्याम माखन-दधि दानी, यह सुधि नाहिं न पाई?॥११५॥

ग्वारिनि जब देखे नँद-नंदन।
मोर-मुकुट पितांबर काछे, खौरि किए तन चंदन॥
तब यह कह्यौ कहाँ अब जैहौ, आगैं कुँवर कन्हाई।
यह सुनि मन आनंद बढ़ायौ, मुख कहैं, बात डराई॥

कोउ-कोउ कहति चलौ री जैये, कोउ कहै घर फिर जैये ।
कोउ-कोउ कहति कहा करिहैं हरि, इनसौं कहा परैये ॥
कोउ-कोउ कहति कालिहीं हमकौं, यूटि लाई नँद लाल ।
सूर स्याम के ऐसे गुन हैं, घरहिं फिरीं ब्रज-बाल ॥११६॥

कान्ह कहत दधि-दान न दैहौ ? ।
लैहौं छीनि दूध दधि माखन, देखति ही तुम रैहौ ॥
सब दिन कौ भरि लेउँ आजु हीं, तब छाड़ौं मैं तुमकौं ।
उघटति हौ तुम मातु-पिता लौं, नहिं जानति हौ हमकौं ॥
हम जानति हैं तुमकौं मोहन, लै-लै गोद खिलाए ।
सूर स्याम अब भय जगाती, वै दिन सब बिसराए ॥११७॥

जाइ सबै कंसहि गुहरावहु ।
दधि माखन घृत लेत छुड़ाए, आजु हजूर बुलावहु ॥
ऐसे कौं कहि मोहिं बतावति, पल भीतर गहि मारौं ।
मथुरापतिहिं सुनौगी तुमहीं, जब धरि केस पछारौं ॥
बार-बार दिन हमहिं बतावति, अपनौ दिन न बिचारयौ ।
सूर इंद्र ब्रज जबहिं बहावत, तब गिरि राखि उबारयौ ॥११८॥

मोसौं बात सुनहु ब्रज-नारी ।
इक उपखान चलत त्रिभुवन मैं, तुमसौं कहौं उघारी ॥
कबहूँ बालक मुँह न दीजियै, मुँह न दीजियै नारी ।
जोइ उन करैं सोइ करि डारैं, मूँड़ चढ़त हैं भारी ॥
बात कहत अँठिलाति जाति सब, हँसति देति कर तारी ।
सूर कहा ये हमकौं जानैं, छाँछहिं बेंचनहारी ॥११९॥

यह जानति तुम नंदमहर-सुत ।
धेनु दुहत तुमकौं हम देखतिं, जबहिं जाति खरिकहिं उत ॥
चोरी करत यहौ पुनि जानति, घर-घर ढूढ़त भाँड़े ।
मारग रोकि भए अब दानी, वे ढँग कब तैं छाँड़े ॥
और सुनौ जसुमति जब बाँधे, तब हम कियौ सहाइ ।
सूरदास-प्रभु यह जानति हम, तुम ब्रज रहत कन्हाइ ॥१२०॥

को माता को पिता हमारैं ।
कब जनमत हमकौं तुम देख्यौ, हँसियत बचन तुम्हारैं ॥

कब माखन चोरि करि खायौ, कब बाँधे महतारी।
दुहत कौन की गैया चारत बात कहौ यह भारी॥
तुम जानत मोहिँ नंद-ढुटौना, नंद कहाँ तैँ आए।
मैं पूरन अबिगत, अबिनासी, माया सबनि भुलाए॥
यह सुनि ग्वालि सबै मुसुक्यानी, ऐसे गुन हौ जानत।
सूर स्याम जो निदर्‌यौ सबहीँ, मात-पिता नाहिँ मानत॥१२१॥

भक्त हेत अवतार धरौँ।
कर्म-धर्म कैँ बस मैँ नाहीं, जोग जज्ञ मन मैँ न करौँ॥
दीन-गुहारि सुनौँ स्रवननि भरि, गर्व-बचन सुनि हृदय जरौँ।
भाव- अधीन रहौँ सबही कैँ, और न काहू नैँकु डरौँ॥
ब्रह्मा कीट आदि लौँ व्यापक, सबकौँ सुख दै दुखहिँ हरौँ।
सूर स्याम तब कही प्रगटही, जहाँ भाव तहँ तैँ न टरौँ॥१२२॥

जौ तुमहीँ हौ सबके राजा।
तौ बैठो सिंहासन चढ़ि कै, चँवर, छत्र, सिर आजा॥
मोर-मुकुट, मुरली पीतांबर, छाड़ौ नटवर-साजा।
बेनु, बिषान, संख क्यौँ पूरत, बाजै नौबत बाजा॥
यह जु सुनैँ हमहूँ सुख पावैँ, संग करैँ कछु काजा।
सूर स्याम ऐसी बातैँ सुनि, हमकौँ आवति लाजा॥१२३॥

हमहिँ और सो रोकै कौन।
रोकनहारौ नंदमहर सुत, कान्ह नाम जाकौ है तौन॥
जाकैँ बल है काम-नृपति कौ, ठगत फिरति जुवतिनि कौँ जौन।
टोना डारि देत सिर ऊपर, आपु रहत ठाढ़ौ ह्वै मौन॥
सुनहु स्याम ऐसी न बूझियै, बानि परी तुमकौँ यह कौन।
सूरदास-प्रभु कृपा करहु अब, कैसँहु जाहिँ आपनै भौन॥१२४॥

राधा सौँ माखन हरि माँगत।
औरनि की मटुकी कौ खायौ, तुम्हरौ कैसौ लागत॥
लै आई बृषभानु सुता, हँसि सद लवनी है मेरौ।
लै दीन्हौँ अपनैँ कर हरि-मुख, खात अल्प हँसि हेरौ॥
सबहिनि तैँ मीठौ दधि है यह, मधुरैँ कह्यौ सुनाइ।
सूरदास-प्रभु सुख उपजायौ, ब्रज ललना मनभाइ॥१२५॥

मेरे दधि कौ हरि स्वाद न पायौ।
जानत इन गुजरिनि कौ सौ है, लयौ छिड़ाइ मिलि ग्वालनि खायौ।
धौरी धेनु दुहाइ छानि पय, मधुर आँचि मैं औटि सिरायौ।
नई दोहनी पोंछि पखारी, धरि निरधूम खिरनि पै तायौ॥
तामैं मिलि मिस्रित मिसिरी करि, दै कपूर पुट जावन नायौ।
सुभग ढकनियाँ ढाँकि बाँधि पट, जतन राखि छीकैं समुदायौ॥
हौं तुम कारन लै आई गृह, मारग मैं न कहूँ दरसायौ।
सूरदास-प्रभु रसिक-सिरोमनि, कियौ कान्ह ग्वालिनि मन भायौ॥१२६॥

गोपी कहति धन्य हम नारी।
धन्य दूध, धनि दधि, धनि माखन, हम परुसति जेंवत गिरिधारी॥
धन्य घोष, धनि दिन, धनि निसि वह, धनि गोकुल प्रगटे बनवारी।
धन्य सुकृत पाँछिलौ, धन्य धनि नंद, धन्य जसुमति महतारी॥
धनि धनि ग्वाल, धन्य वृंदावन, धन्य भूमि यह अति सुखकारी।
धन्य दान, धनि कान्ह मँगैया, धन्य सूर त्रिन-द्रुम-बन-डारी॥१२७॥

गन गंधर्व देखि सिहात
धन्य ब्रज-ललनानि कर तैं, ब्रह्म माखन खात॥
नहीं रेख, न रूप, नहिँ तनु बरन, नहिँ अनुहारि।
मातु-पितु नहिँ दोउ जाकैं, हरत-मरत न जारि।
आपु कर्त्ता आपु हर्त्ता, आपु त्रिभुवन नाथ।
आपुहीं सब घट कौ व्यापी, निगम गावत गाथ॥
अंग प्रति-प्रति रोम जाकै, कोटि-कोटि ब्रह्मंड।
कीट ब्रह्म प्रजंत जल-थल, इनहिँ तैं यह मंड॥
येइ बिस्वंभरन नायक, ग्वाल-संग-बिलास।
सोइ प्रभु-दधि दान माँगत, धन्य सूरजदास॥१२८॥

ब्रह्म जिनहिँ यह आयसु दीन्हौ।
तिन तिन संग जन्म लियौ परगट, सखी सखा करि कीन्हौ॥
गोपी ग्वाल कान्ह द्वै नाहीं, ये कहुँ नैंकु न न्यारे।
जहाँ-जहाँ अवतार धरत हरि, ये नहिँ नैंकु बिसारे॥
एकै देह बहुत करि राखे, गोपी ग्वाल मुरारी।
यह सुख देखि सूर के प्रभु कौं, थकित अमर-सँग-नारी॥१२६॥

यह महिमा येई पै जानैं
जोग-जज्ञ-तप ध्यान न आवत, सो दधि-दान लेत सुख मानैं ॥
खात परस्पर ग्वालनि मिलि कै, मीठौ कहिँ कहि आपु बखानैं।
बिस्वंभर जगदीस कहावत ते दधि दोना माँझ अघाने ॥
आपुहिँ करता, आपुहिँ हरता, आपु बनावत, आपुहिँ भानैं।
ऐसे सूरदास के स्वामी, ते गोपिनि कैँ हाथ बिकाने ॥१२०॥

सुनहु बात जुवती इक मेरी।
तुमतैं दूरि होत नहिँ कबहूँ, तुम राख्यौ मोहिँ घेरी ॥
तुम कारन बैकुंठ तजत हौं, जनम लेत ब्रज आइ।
बृंदाबन राधा-गोपी संग, यहि नहिँ बिसर्यौ जाइ ॥
तुम अंतर-अंतर कह भाषति, एक प्रान द्वै देह।
क्यौं राधा ब्रज बसैं बिसारौं, सुमिरि पुरातन नेह ॥
अब घर जाहु दान मैं पायौ, लेखा कियौ न जाइ।
सूर स्याम हँसि-हँसि जुबतिनि सौं, ऐसी कहत बनाइ ॥१२१॥

तुमहिँ बिना मन धिक अरु धिक घर।
तुमहिँ बिना धिक-धिक माता पितु, धिक कुल-कानि, लाज, डर ॥
धिक सुत पति, धिक जीवन जग कौ, धिक तुम बिनु संसार।
धिक सो दिवस, पहर, घटिका, पल जो बिनु नंद-कुमार ॥
धिक धिक स्रवन कथा बिनु हरि कै, धिक लोचन बिनु रूप।
सूरदास प्रभु तुम बिनु घर ज्यौं, बन-भीतर के कूप ॥१२२॥

रीती मटुकी सीस धरैं।
बन की घर की सुरति न काहूँ, लेहु दही यह कहति फिरैं ॥
कबहुँक जाति कुंज भीतर कौं, तहाँ स्याम की सुरति करैं।
चौंकि परतिँ, कछु तन सुधि आवति, जहाँ तहाँ सखि-सुनति ररैं ॥
तब यह कहतिँ कहौं मैं इनसौं, भ्रमि भ्रमि बन मैं बृथा मरैं।
सूर स्याम कैं रस पुनि छाकतिँ, बैसैंहीं ढँग बहुरि ढरैं ॥१२३॥

तरुनी स्याम-रस मतवारि।
प्रथम जोबन-रस चढ़ायौ, अतिहि भई खुमारि ॥
दूध नहिँ, दधि नहीँ, माखन नहीँ, रीतौ माट।
महा-रस अँग-अंग पूरन, कहाँ घर, कहँ बाट ॥

मातु-पितु गुरुजन कहाँ के, कौन पति, को नारि।
सूर प्रभु कैं प्रेम पूरन, छकि रहीं ब्रजनारि ॥१२४॥

कोउ माई लैहै री गोपालहिं।
दधि कौ नाम स्यामसुंदर-रस, बिसरि गयौ ब्रज-बालहिं ॥
मटुकी सीस, फिरति ब्रज-बीथिनि, बोलति बचन रसालहिं।
उफनत तक्र चहूँ दिसि चितवत, चित लाग्यौ नँद-लालहिं ॥
हँसति, रिसाति, बुलावति, बरजति देखहु इनकी चालहिं।
सूर स्याम बिनु और न भावै, या बिरहिनि बेहालहिं ॥१२५॥

गोपिका अनुराग

लोक-सकुच कुल-कानि तजी।
जैसैं नदी सिंधु कौं धावै, वैसैं हि स्याम भजी ॥
मातु पिता बहु त्रास दिखायौ, नैकुँ न डरी, लजी।
हारि मानि बैठे, नहिं लागति, बहुतै बुद्धि सजी ॥
मानति नहीं लोक मरजादा, हरि कैं रंग मजी।
सूर स्याम कौं मिलि, चूनौ-हरदी ज्यौं रंग रँजी ॥१२६॥

कहा कहति तू मोहिं री माई।
नंद-नँदन मन हरि लियौ मेरौ, तब तैं मोकौं कछु न सुहाई ॥
अब लौं नहिं जानति मैं को ही, कब तैं तू मेरैं ढिग आई।
कहाँ गेह, कहँ मातु पिता हैं, कहाँ सजन, गुरुजन कहँ भाई ॥
कैसी लाज, कानि है कैसी, कहा कहति ह्वै ह्वै रिसहाई?।
अब तौ सूर भजी नँद-लालहिं, की लघुता की होइ बड़ाई ॥१२७॥

मेरे कहे मैं कोउ नाहिं।
कह कहौं, कछु कहि न आवै, नैंकुहूँ न डराहिं ॥
नैन ये हरि-दरस-लोभी, स्रवन सब्द-रसाल।
प्रथमहीं मन गयौ तन तजि, तब भई बेहाल ॥
इंद्रियनि पर भूप मन है, सबनि लियौ बुलाइ।
सूर प्रभु कौं मिले सब ये, मोहिं करि गए बाइ ॥१२८॥

अब तौ प्रगट भई जग जानी।
वा मोहन सौं प्रीति निरंतर, क्यौंऽब रहैगी छानी ॥
कहा करौं सुंदर मूरति, इन नैननि माँझ समानी।
निकसति नहीं बहुत पचिहारी, रोम रोम अरुझानी ॥

अब कैसैं निरवारि जाति है, मिली दूध ज्यौं पानी ।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, उर अंतर की जानी ॥१३६॥

सखि मोहिं हरिदरस रस प्याइ ।
हौं रँगी अब स्याम-मूरति, लाख लोग रिसाइ ॥
स्यामसुंदर मदन मोहन, रंग-रूप सुभाइ ।
सूर स्वामी-प्रीति-कारन, सीस रहौ की जाइ ॥१४०॥

नंदलाल सौं मेरौ मन मान्यौ, कहा करैगौ कोउ ।
मैं तौ चरन-कमल लपटानी, जो भावै सो होउ ॥
बाप रिसाइ, माइ घर मारै, हँसैं बिराने लोग ।
अब तौ स्यामहिं सौं रति बाढ़ी, बिधना रच्यौ सँजोग ॥
जाति महति पति जाइ न मेरी, अरु परलोक नसाइ ।
गिरिधर-बर मैं नैंकु न छाँड़ौं, मिली निसान बजाइ ॥
बहुरि कबहिं यह तन धरि पैहैं, कहँ पुनि श्रीबनवारि ।
सूरदास स्वामी कैं ऊपर यह तन डारौं वारि ॥१४१॥

करन दै लोगनि कौं उपहास ।
मन क्रम बचन नंद-नंदन कौ, नैंकु न छाड़ौं पास ॥
सब या ब्रज के लोग चिकनियाँ, मेरे भाएँ घास ।
अब तौ यहै बसी री माई, नहिं मानौं गुरु त्रास ॥
कैसैं रह्यौ परै री सजनी, एक गाँव के बास ।
स्याम मिलन की प्रीति सखी री, जानत सूरजदास ॥१४२॥

एक गाउँ के बास सखी हौं, कैसैं धीर धरौं ।
लोचन-मधुप अटक नहिं मानत, जद्यपि जतन करौं ॥
वै इहिं मग नित प्रति आवत हैं, हौं दधि लै निकरौं ।
पुलकित रोम रोम, गदगद सुर, आनँद उमँग भरौं ॥
पल अंतर चलि जात, कलप बर बिरहा अनल जरौं ।
सूर सकुच कुल-कानि कहाँ लगि, आरज-पथहिं डरौं ॥१४३॥

हौं सँग साँवरे के जैहौं ।
होनी होइ होइ सो अबहीं, जस अपजस काहूँ न डरैहौं ॥
कहा रिसाइ करै कोउ मेरौ, कछु जो कहै प्रान तिहिं दैहौं ।
देहौ त्यागि राखिहौं यह ब्रत, हरि-रति-बीज बहुरि कब बैहौं ॥

का यह सूर अचिर अवनी, तनु तजि अकास पिय-भवन समैहैं।
का यह ब्रज-बापी क्रीड़ा जल, भजि नँद-नंद सबै सुख लैहैं ॥१४४॥

रूप वर्णन

देखौ माई सुंदरता कौ सागर ।
बुधि-बिबेक बल पार न पावत, मगन होत मन-नागर ॥
तनु अति स्याम अगाध अंबु-निधि, कटि पट पीत तरंग ।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजति, भँवर परति सब अंग ॥
नैन-मीन, मकराकृत कुंडल, भुज सरि सुभग भुजंग ।
मुक्ता-माल मिलीं मानौ, द्वै सुरसरि एकै संग ॥
कनक खचित मनिमय आभूषण, मुख, स्रम-कन सुख देत ।
जनु जल-निधि मथि प्रगट कियौ ससि, श्री अरु सुधा समेत ॥
देखि सरूप सकल गोपी जन, रहीं बिचारि-बिचारि ।
तदपि सूर तरि सकीं न सोभा, रहीं प्रेम पचि हारि ॥१४५॥

स्याम भुजनि की सुंदरताई ।
चंदन खौरि अनूपम राजति, सो छबि कही न जाई ॥
बड़े बिसाल जानु लौं परसत, इक उपमा मन आई ।
मनौ भुजंग गगन तैं उतरत, अधमुख रह्यौ झुलाई ॥
रत्न-जटित पहुँची कर राजति, अँगुरी सुंदर भारी ।
सूर मनौ फनि-सिर मनि सोभित, फन-फन की छबि न्यारी ॥१४६॥

स्याम-अँग जुवती निरखि भुलानीं ।
कोउ निरखति कुंडल की आभा, इतनेहिं माँझ बिकानी ॥
ललित कपोल निरखि कोउ अटकी, सिथिल भई ज्यौं पानी ।
देह-गेह की सुधि नहिं काहूँ, हरषति कोउ पछितानी ॥
कोउ निरखति रही ललित नासिका, यह काहू नहिं जानी ।
कोउ निरखति अधरनि की सोभा, फुरति नहीं मुख बानी ॥
कोउ चकित भई दसन-चमक पर, चकचौंधी अकुलानी ।
कोउ निरखति दुति चिबुक चारु की, सूर तरुनि बिततानी ॥१४७॥

मैं बलि जाउँ स्याम-मुख-छबि पर ।
बलि-बलि जाउँ कुटिल कच बिथुरे, बलि भृकुटी लिलाट पर ॥
बलि-बलि जाउँ चारु अवलोकनि, बलि बलि कुंडल-रबि की ।
बलि-बलि जाउँ नासिका सुललित, बलिहारी वा छबि की ॥

बलि-बलि जाउँ अरुन अधरनि की, बिद्रुम-बिंब लजावन ।
मैं बलि जाउँ दसन चमकनि की, बारौं तड़ितनि सावन ।।
मैं बलि जाउँ ललित ठोड़ी पर, बलि मोतिनि की माल ।
सूर निरखि तन-मन बलिहारौं, बलि बलि जसुमति-लाल ।।१४८।।

नटवर-बेष धरे ब्रज आवत ।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, कुटिल अलक मुख पर छबि पावत ।।
भ्रकुटी बिकट नैन अति चंचल इहिं छबि पर उपमा इक धावत ।
धनुष देखि खंजन बिबि डरपत, उडि न सकत उड़िबै अकुलावत ।।
अधर अनूप मुरलि-सुर पूरत, गौरी राग अलापि बजावत ।
सुरभी-बृंद गोप-बालक-संग, गावत अति आनंद बढ़ावत ।।
कनक-मेखला कटि पीतांबर, निर्तत मंद-मंद सुर गावत ।
सूर स्याम-प्रति-अंग-माधुरी, निरखत ब्रज-जन कैं मन भावत ।।१४९।।

आवत मोहन धेनु चराए ।
मोर-मुकुट सिर, उर बनमाला, हाथ लकुट, गोरज लपटाए ।।
कटि कछनी किंकिनि-धुनि बाजति, चरन चलत नुपुर रव लाए ।
ग्वाल-मंडली मध्य स्यामघन, पीत बसन दामिनिहिं लजाए ।।
गोप सखा आवत गुन गावत, मध्य स्याम हलधर छबि छाए ।
सूरदास-प्रभु असुर सँहारे, ब्रज आवत मन हरष बढ़ाए ।।१५०।।

उपमा हरि-तनु देखि लजानी ।
कोउ जल मैं, कोउ बननि रहीं दुरि, कोउ कोउ गगन समानी ।
मुख निरखत ससि गयौ अंबर कौं, तड़ित दसन-छबि हेरि ।
मीन कमल, कर चरन, नयन डर, जल मैं कियौ बसेरि ।।
भुजा देखि अहिराज लजाने, बिबरनि पैठे धाइ ।
कटि निरखत केहरि डर मान्यौ, बन-बन रहे दुराइ ।।
गारी देहिं कबिनि कैं बरनत, श्री-अँग पटतर देत ।
सूरदास हमकौं सरमावत, नाउँ हमारौ लेत ।।१५१।।

चितवनि रोकैं हूँ न रही ।
स्याम सुंदर-सिंधु-सनमुख, सरित उमँगि बही ।।
प्रेम-सलिल प्रवाह भँवरनि, मिति न कबहुँ लही ।
लोभ-लहर-कटाच्छ, घूँघट-पट-करार ढही ।।

थके पल पथ, नाव-धीरज, परति नहिँन गही।
मिली सूर सुभाव स्यामहिँ, फेरिहू न चही ॥१५२॥

स्याम सुख-रासि, रस-रासि भारी।
रूप की रासि, गुन-रासि, जोबन-रासि, थकित भईँ निरखि नव तरुन नारी ॥
सील की रासि, जस-रासि, आनँद-रासि, नील नव-जलद-छबि-बरन-कारी।
दया की रासि, बिद्या-रासि, बल-रासि, निर्दयाराति दनुकुल-प्रहारी।
चतुरई-रासि, छल-रासि, कल-रासि, हरि भजै जिहिँ हेत तिहिँ देन हारी।
सूर-प्रभु स्याम सुख-धाम पूरन काम, बसन-कटि-पीत मुख मुरली-धारी ॥१५३॥

स्याम-कमल पद-नख की सोभा।
जे नख-चंद्र इंद्र-सिर परसे, सिव बिरंचि मन लोभा ॥
जे नख-चंद्र सनक मुनि ध्यावत, नहिँ पावत भरमाहीँ।
ते नख-चंद्र प्रगट ब्रज-जुवती, निरखि-निरखि हरषाहीँ ॥
जे नख-चंद्र फनिंद-हृदय तैँ, एकौ निमिष न टारत।
जे नख-चंद्र महा मुनि नारद, पलक न कहूँ बिसारत ॥
जे नख-चंद्र-भजन खल नासत, रमा हृदय जे परसति।
सूर स्याम-नख-चंद्र बिमल-छबि, गोपी-जन मिलि दरसति ॥१५४॥

स्याम-हृदय जल-सुत की माला, अतिहिँ अनूपम छाजै (री)।
मनहुँ बलाक-पाँति नव-घन पर, यह उपमा कछु भ्राजै (री) ॥
पीत, हरित, सित, अरुन माल बन, राजति हृदय बिसाल (री)।
मानहुँ इंद्र-धनुष नभ-मंडल, प्रगट भयौ तिहिँ काल (री) ॥
भृगु पद-चिह्न उरस्थल प्रगटे, कौस्तुभ मनि ढिग दरसत (री)।
बैठे मानौ षट बिधु इक सँग, अर्द्ध निसा मिलि हरषत (री) ॥
भुजा बिसाल स्याम सुंदर की, चंदन-खौरि चढ़ाए (री)।
सूर सुभग अँग-अँग की सोभा, ब्रज-ललना ललचाए (री) ॥१५५॥

मुख पर चंद डारौँ वारि।
कुटिल कच पर भौँर वारौँ, भौँह पर धनु वारि ॥
भाल-केसरि-तिलक छबि पर, मदन-सर सत वारि।
मनु चली बहि सुधा-धारा, निरखि मन द्यौँ वारि ॥
नैन सुरसति-जमुन-गंगा, उपम डारौँ वारि।
मीन खंजन मृगज वारौँ, कमल के कुल वारि ॥

निरखि कुंडल तरनि वारौं, कूप स्रवननि वारि ।
झलक ललित कपोल-छबि पर, मुकुट सत-सत वारि ।।
नसिका पर कीर वारौं, अधर बिद्रुम वारि ।
दसन पर कन-बज्र वारौं, बीज-दाड़िम वारि ।।
चिबुक पर चित-बित्त वारौं, प्रान डारौं वारि ।
सूर हरि की अंग-सोभा, को सकै निरवारि ।।१५६।।
आजु सखी अरुनोदय मेरे, नैननि कौं धोख भयौ ।
की हरि आजु पंथ इहिं गवने, स्याम जलद की उनयौ ।।
की बग-पाँति भाँति, उर पर की मुकुत-माल बहु मोल ।
कीधौं मोर मुदित नाचत, की बरह-मुकुट की डोल ।।
की घनघोर गँभीर प्रात उठि, की ग्वालनि की टेरनि ।
की दामिनि कौंधति चहुँ दिसि, की सुभग पीत पट फेरनि ।।
की बनमाल लाल-उर राजति, की सुरपति धनु चारु ।
सूरदास-प्रभु-रस भरि उमँगी, राधा कहति बिचारु ।।१५७।।

नेत्र अनुराग

नैन न मेरे हाथ रहे ।
देखत दरस स्याम सुंदर कौ, जल की ढरनि बहे ।।
वह नीचे कौं धावत आतुर, वैसेहि नैन भए ।
वह तौ जाइ समात उदधि मैं, ये प्रति अंग रए ।।
वह अगाध कहुँ वार पार नहिं, येउ सोभा नहिं पार ।
लोचन मिले त्रिबेनी ह्वै कै, सूर समुद्र अपार ।।१५८।।
इन नैननि मोहिं बहुत सतायौ ।
अब लौं कानि करी मैं सजनी, बहुतैं मूँड़ चढ़ायौ ।।
निदरे रहन गहे रिस मोसौं, मोहीं दोष लगायौ ।
लूटत आपुन श्री-अँग-सोभा, ज्यौं निधनी धन पायौ ।।
निसिहूँ दिन ये करत अचगरी, मनहिं कहा धौं आयौ ।
सुनहु सूर इनकौं प्रतिपालत, आलस नैंकु न लायौ ।।१५९।।
नैन करैं सुख, हम दुख पावैं ।
ऐसौ को पर-बेदन जानै, जासौं कहि जु सुनावैं ।।
तातैं मौन भलौ सबही तैं, कहि कै मान गँवावैं ।
लोचन, मन, इंद्री हरि कौं भजि, तजि हमकौं सुख पावैं ।।

वै तौ गए आपने कर तैं, वृथा जीव भरमावैं।
सूर स्याम हैं चतुर सिरोमनि, तिनसौं भेद जनावैं ॥१६०॥

ऐसे आपुस्वारथी नैन।
अपनोइ पेट भरत हैं निसि-दिन, और न लैन न दैन ॥
बस्तु अपार परी ओछैं कर, ये जानत घटि जैहै।
को इनसौं समुझाइ कहै यह, दीन्हैं ही अधिकैहै ॥
सदा नहीं रैहैं अधिकारी, नाउँ राखि जौ लेते।
सूर स्याम सुख लूटैं आपुन, औरनि हूँ कौं देते ॥१६१॥

नैन भए बस मोहन तैं।
ज्यौं कुरंग बस होत नाद के, टरत नहीं ता गोहन तैं ॥
ज्यौं मधुकर बस कमल-कोस के, ज्यौं बस चंद चकोर।
तैसैंहि ये बस भए स्याम के, गुड़ी-बस्य ज्यौं डोर ॥
ज्यौं बस स्वाति-बूँद के चातक, ज्यौं बस जल के मीन।
सूरज-प्रभु के बस्य भए ये, छिनु छिनु प्रीति नवीन ॥१६२॥

तब तैं नैन रहे इकटकहीं।
जब तैं दृष्टि परे नँद-नंदन, नैंकु न अंत मटकहीं ॥
मुरली धरे अरुन अधरनि पर, कुंडल झलक कपोल।
निरखत इकटक पलक भुलाने, मनौ बिकाने मोल।
हमकौं वै काहैं न बिसारैं, अपनी सुधि उन नाहिं।
सूर स्याम-छबि-सिंधु समाने, वृथा तरुनि पछिताहिं ॥१६३॥

नैननि सौं झगरौ करिहौं री।
कहा भयौ जौ स्याम-संग हैं, बाँह पकरि सम्मुख लरिहौं री ॥
जन्महिं तैं प्रतिपालि बड़े किये, दिन-दिन कौ लेखौ करिहौं री।
रूप-लूट कीन्ही तुम काहैं, अपने बाँटे कौ धरिहौं री ॥
एक मातु-पितु भवन एक रहे, मैं काहै उनकौं डरिहौं री।
सूर अंस जो नहीं देहिगे, उनकैं रँग मैं हूँ ढरिहौं री ॥१६४॥

कपटी नैननि तैं कोउ नाहीं।
घर कौ भेद और के आगैं, क्यौं कहिबे कौं जाहीं ॥
आपु गए निधरक ह्वै हमतैं, बरजि-बरजि पचिहारी।
मनकामना भई परिपूरन, ढरि रीझे गिरिधारी ॥

इनहि बिना वे, उनहिँ बिना ये, अंतर नाहीँ भावत ।
सूरदास यह जुग की महिमा, कुटिल तुरत फल पावत ।।१६५।।

नैना घूँघट मैँ न समात ।
सुंदर बदन नंद-नंदन कौ, निरखि-निरखि न अघात ।।
अति रस-लुब्ध महा मधु लंपट, जानत एक न बात ।
कहा कहौँ दरसन सुख माते, ओट भएँ अकुलात ।।
बार बार बरजत हौँ हारी, तऊ टेव नहिँ जात ।
सूर तनक गिरिधर बिनु देखैँ, पलक कलप सम जात ।।१६६।।

ये नैना मेरे ढीठ भए री ।
घूँघट-ओट रहत नहिँ रोकैँ, हरि-मुख देखत लोभि गए री ।।
जउ मैँ कोटि जतन करि राखे, पलक-कपाटनि मूँदि लए री ।
तउ ते उमँगि चले दोउ हठ करि, करौँ कहा मैँ जान दए री।।
अतिहिँ चपल, बरज्यौ नहिँ मानत, देखि बदन तन फेरि नए री।
सूर स्यामसुंदर-रस अटके, मानहुँ लोभी उहँइ छए री ।।१६७।।

अँखियाँ हरि कैँ हाथ बिकानीँ ।
मृदु मुसुकानि मोल इनि लीन्ही, यह सुनि सुनि पछितानीँ ।।
कैसैँ रहति रहीँ मेरैँ बस, अब कछु औरै भाँति ।
अब वै लाज मरतिँ मोहिँ देखत, बैठीँ मिलि हरि पाँति ।।
सपने की सी मिलनि करति हैँ, कब आवतिँ कब जातिँ ।
सूर मिलीँ ढरि नंद-नँदन कौँ, अनत नहीँ पतियातिँ ।।१६८।।

अँखियनि तब तैँ बैर धर्‌यौ ।
जब हम हटकी हरि-दरसन कौँ, सो रिस नहिँ बिसर्‌यौ ।।
तबहीँ तैँ उनि हमहिँ भुलायौ, गईँ उतहिँ कौँ धाइ ।
अब तौ तरकि तरकि ऐँठति हैं, लेनी लेतिँ बनाइ ।।
भईँ जाइ वै स्याम-सुहागिनि, बड़भागिनि कहवावैँ ।
सूरदास वैसी प्रभुता तजि, हम पै कब वै आवैँ ।।१६९।।

राधा-कृष्ण

प्रथम मिलन

खेलत हरि निकसे ब्रज-खोरी ।
कटि कछनी पीतांबर बाँधे, हाथ लए भौंरा, चक डोरी ॥
मोर-मुकुट, कुंडल स्रवननि बर, दसन-दमक दामिनि-छबि छोरी ।
गए स्याम रबि-तनया कैं तट, अंग लसति चंदन की खोरी ॥
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी ।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी ॥
संग लरिकिनी चलि इत आवति, दिन-थोरी, अति छबि तन-गोरी ।
सूर स्याम देखत हीं रीझे नैन-नैन मिलि परी ठगोरी ॥१॥

बूझत स्याम कौन तू गोरी ।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी ॥
काहे कौं हम ब्रज-तन आवतिं, खेलति रहतिं आपनी पौरी ॥
सुनत रहतिं स्रवननि नँद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी ॥
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी ॥२॥

प्रथम सनेह दुहुँनि मन जान्यौ ।
नैन नैन कीन्ही सब बातैं, गुप्त प्रीति प्रगटान्यौ ॥
खेलन कबहुँ हमारैं आवहु, नंद-सदन, ब्रज गाउँ ।
द्वारैं आइ टेरि मोहिं लीजौ, कान्ह हमारौ नाउँ ॥
जौ कहियै घर दूरि तुम्हारौ, बोलत सुनियै टेरि ।
तुमहिं सौंह बृषभानु बबा की, प्रात-साँझ इक फेरि ॥
सधी निपट देखियत तुमकौं, तातैं करियत साथ ।
सूर स्याम नागर, उत नागरि राधा, दोउ मिलि गाथ ॥३॥

गई बृषभानु-सुता अपनैं घर ।
संग सखी सौं कहति चली यह, को जैहै इन कैं दर ॥
बड़ी बेर भई जमुना आए, खीझति ह्वैहै मैया ।
बचन कहति सुख, हृदय-प्रेम-दुख, मन हरि लियौ कन्हैया ॥

माता कहति कहाँ ही प्यारी, कहाँ अबेर लगाई।
सूरदास तब कहति राधिका, खरिक देखि हैं आई ॥४॥

नंद गए खरिकहिं हरि लीन्हे।
देखी तहाँ राधिका ठाढ़ी, बोलि लिए तिहिं चीन्हे॥
महर कह्यौ खेलौ तुम दोऊ, दूरि कहूँ जिनि जैहौ।
गनती करत ग्वाल गैयनि की, मोहि नियरैं तुम रैहौ॥
सुनि बेटी बृषभानु महर की, कान्हहिं लेइ खिलाइ।
सूर स्याम कौं देखे रहिहौ, मारै जनि कोउ गाइ ॥५॥

नंद बबा की बात सुनौ हरि।
मोहिं छाँड़ि जौ कहूँ जाहुगे, ल्याउँगी तुमकौं धरि॥
भली भई तुम्हें सौंपि गए मोहिं, जान न देहौं तुमकौं।
बाँह तुम्हारी नैंकु न छाँड़ौं, महर खीझिहैं हमकौं॥
मेरी बाँह छाँड़ि दै राधा, करत उपरफट बातैं।
सूर स्याम नागर, नागरि सौं, करत प्रेम की घातैं ॥६॥

खेलन कैं मिस कुँवरि राधिका, नंद-महरि कैं आई (हो)।
सकुच सहित मधुरे करि बोली, घर हौ कुँवर कन्हाई (हो)॥
सुनत स्याम कोकिल सम बानी, निकसे अति अतुराई (हो)।
माता सौं कछु करत कलह हे, रिस डारी बिसराई (हो)॥
मैया री तू इनकौं चीन्हति, बारंबार बताई (हो)।
जमुना-तीर कालिह मैं भूल्यौ, बाँह पकरि लै आई। (हो)॥
आवति इहाँ तोहिं सकुचति है, मैं दै सौंह बुलाई। (हो)।
सूर स्याम ऐसे गुन-आगर, नागरि बहुत रिझाई (हो) ॥७॥

नाम कहा तेरौ री प्यारी।
बेटी कौन महर की है तू, को तेरी महतारी॥
धन्य कोख जिहिं तोकौं राख्यौ, धनि घरि जिहिं अवतारी।
धन्य पिता माता तेरे, छबि निरखति हरि-महतारी॥
मैं बेटी बृषभानु महर की, मैया तुमकौं जानतिं।
जमुना-तट बहु बार मिलन भयौ, तुम नाहिंन पहिचानतिं॥
ऐसी कहि, वाकौं मैं जानति वह तौ बड़ी छिनारि।
महर बड़ौ लंगर सब दिन कौ, हँसति देति मुख गारि।

राधा बोलि उठी, बाबा कछु, तुमसौं ढीठौ कीन्हौ ।
ऐसे समरथ कब मैं देखे हँसि प्यारिहिं उर लीन्हौ ॥
महरि कुँवरि सौं यह कहि भाषति,आउ करौं तेरी चोटी ॥
सूरदास हरषित नँदरानी, कहति महरि हम जोटी ॥८॥

जसुमति राधा कुँवरि सँवारति ।
बड़े बार सीमंत सीस के, प्रेम सहित निरुवारति ॥
माँग पारि बेनी जु सँवारति, गूँथी सुंदर भाँति ।
गोरैं भाल बिंदु बंदन, मनु इंदु प्रात-रवि काँति ॥
सारी चीरि नई फरिया लै, अपने हाथ बनाइ ।
अंचल सौं मुख पोंछि अंग सब, आपुहि लै पहिराइ ॥
तिल चाँवरी, बतासे, मेवा, दियौ कुवरि की गोद ।
सूर स्याम-राधा तनु चितवत, जसुमति मन-मन मोद ॥९॥

बूझति जननि कहाँ हुती प्यारी ।
किन तेरे भाल तिलक रचि कीनौ, किहिं कच गूँदि माँग सिर पारी ॥
खेलति रही नंद कैं आँगन, जसुमति कही कुंवरि ह्याँ आ री ॥
मेरौ नाउँ बूझि बाबा कौ, तेरौ बूझि दई हँसि गारी ॥
तिल चाँवरी गोद करि दीनी फरिया दई फारि नव सारी ।
मो तन चितै, चितै ढोटा-तन, कछु सबिता सौं गोद पसारी ॥
यह सुनि कै बृषभानु मुदित चित, हँसि-हँसि बूझत बात दुलारी ।
सूर सुनत रस सिंधु बढ़यौ अति, दंपति एकै बात बिचारी ॥१०॥

गारुड़ी कृष्ण

सखियनि मिलि राधा घर लाईं ।
देखहु महरि सुता अपनी कौं, कहुँ इहिं कारैं खाई ॥
हम आगैं आवति, यह पाछैं धरनि परी भहराई ।
सिर तैं गई दोहनी ढरिकै, आपु रही मुरझाई ॥
स्याम-भुअंग डस्यौ हम देखत, ल्यावहु गुनी बुलाई ।
रोवति जननि कंठ लपटानी, सूर स्याम गुन राई ॥११॥

नंद-सुवन गारुड़ी बुलावहु ।
कह्यौ हमारौ सुनत न कोऊ, तुरत जाहु, लै आवहु ॥
ऐसौ गुनी नहीं त्रिभुवन कहुँ, हम जानतिं हैं नीकैं ।
आइ जाइ तौ तुरत जियावहि नैंकु छुवत उठै जी कै ॥

देखौ धौं यह बात हमारी, एकहि मंत्र जिवावै ।
नंद महर कौ सुत सूरज जौ, कैसेहुँ ह्यौं लौं आवै ॥१२॥

महरि, गारुड़ी कुँवर कन्हाई ।
एक बिटिनियाँ कारैं खाई, ताकौं स्याम तुरतहीं ज्याई ॥
बोलि लेहु अपने ढोटा कौं, तुम कहि कै देउ नैंकु पठाई ।
कुँवरि राधिका प्रात खरिक गई तहाँ कहूँ-धौं कारैं खाई ॥
यह सुनि महरि मनहिँ मुसुक्यानी, अबहिँ रही मेरैं गृह आई ।
सूर स्याम राधहिँ कछु कारन, जसुमति समुझि रही अरगाई ॥१३॥

तब हरि कौं टेरति नँदरानी ।
भली भई सुत भयौ गारुड़ी, आजु सुनी यह बानी ॥
जननी-टेर सुनत हरि आए, कहा कहति री मैया ? ।
कीरति महरि बुलावन आई, जाहु न कुँवर कन्हैया ॥
कहूँ राधिका कारैं खायौ जाहु न आवौ झारि ।
जंत्र-मंत्र कछु जानत हौ तुम, सूर स्याम बनवारि ॥१४॥

हरि गारुड़ी तहाँ तब आए ।
यह बानी वृषभानुसुता सुनि, मन-मन हरष बढ़ाए ॥
धन्य-धन्य आपुन कौं कीन्हौ अतिहिँ गई मुरझाइ ।
तनु पुलकित रोमांच प्रगट भए आनँद-अस्रु बहाइ ॥
बिह्वल देखि जननि भई ब्याकुल अंग विष गयौ समाइ ।
सूर स्याम-प्यारी दोउ जानत अंतरगत कौ भाइ ॥१५॥

रोवति महरि फिरति बिततानी ।
बार-बार लै कंठ लगावति, अतिहिँ सिथिल भई पानी ॥
नंद-सुवन कैं पाइ परी लै, दौरि महरि तब आइ ।
ब्याकुल भई लाड़िली मेरी, मोहन देहु जिवाइ ॥
कछु पढ़ि-पढ़ि कर, अंग परस करि, विष अपनौ लियौ झारि ।
सूरदास-प्रभु बड़े गारुड़ी, सिर पर गाड़ू डारि ॥१६॥

लोचन दए कुँवरि उघारि ।
कुँवर देख्यौ नंद कौ तब सकुची अंग सम्हारि ॥
बात बूझति जननि सौं री कहा यह आज ।
मरत तैं तू बची प्यारी करति है कह लाज ॥

तब कहति तोहिँ कारैँ खाई कछु न रहि सुधि गात।
सूर प्रभु तोहिँ ज्याइ लीन्ही कही कुँवरि सौँ मात ॥१७॥

बड़ौ मंत्र कियौ कुँवर कन्हाई।
बार-बार लै कंठ लगायौ, मुख चूम्यौ दियौ घरहिँ पठाई॥
धन्य कोषि वह महरि जसोमति, जहाँ अवतर्‍यौ यह सुत आई।
ऐसौ चरित तुरतहीँ कीन्हैाँ, कुँवरि हमारी मरी जिवाई॥
मनहीँ मन अनुमान कियौ यह, बिधिना जोरी भली बनाई।
सूरदास प्रभु बड़े गारुड़ी, ब्रज घर-घर यह घैरु चलाई ॥१८॥

संबंध रहस्य

तुम सौँ कहा कहौँ सुंदर घन।
या ब्रज मैँ उपहास चलत है, सुनि सुनि स्रवन रहति मनहीँ मन॥
जा दिन सखनि पछारि, नोइ करि, मोहि दुहि नई धेनु बंसीबन।
तुम गही बाहँ सुभाइ आपनैँ हौँ चितई हँसि नैकु बदन-तन॥
ता दिन तैँ घर मारग जित तित, करत चवाव सकल गोपीजन।
सूर-स्याम अब साँच पारिहैाँ, यह पतिब्रत तुम सौँ नँद-नंदन ॥१९॥

स्याम यह तुमसौँ क्यौँ न कहौँ।
जहाँ तहाँ घर घर कौ घैरा, कौनी भाँति सहौँ॥
पिता कोपि करवाल गहत कर, बंधु बधन कौँ धावै।
मातु कहै कन्या कुल कौ दुख, जनि कोऊ जग जावै॥
बिनती एक करौँ कर जोरे, इनि बीथिनि जनि आवहु।
जौ आवहु तौ मुरलि-मधुर-धुनि, मो जनि कान सुनावहु॥
मन क्रम बचन कहति हौँ साँची, मैँ मन तुमहिँ लगायौ।
सूरदास-प्रभु अंतरजामी, क्यों न करौ मन भायौ ॥२०॥

हँसि बोले गिरिधर रस-बानी।
गुरुजन खिझैँ कतहिँ रिस पावति, काहे कौँ पछितानी॥
देह धरे को धर्म यहै है, स्वजन कुटुंब गृह-प्रानी।
कहन देहु, कहि कहा करैँगे, अपनी सुरत हिरानी?॥
लोक लाज काहे कौँ छाँड़ति, ब्रजहीँ बसैँ भुलानी।
सूरदास घट द्वै हैँ, मन इक, भेद नहीँ कछु जानी ॥२१॥

ब्रज बसि काके बोल सहौँ।
तुम बिनु स्याम और नहिँ जानौ, सकुचि न तुमहिँ कहौँ।

कुल की कानि कहा लै करिहैं तुमकौं कहाँ लहैं ।
धिक माता, धिक पिता बिमुख तुव, भावे तहाँ बहौ ।।
कोउ कछु करै, कहै कछु कोऊ, हरष न सोक गहैं ।
सूर स्याम तुमकौं बिनु देखैं, तनु मन जीव दहैं ।।२२॥

ब्रजहिँ बसैं आपुहिँ बिसरायौ ।
प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायौ ।।
जल थल जहाँ रहौं तुम बिनु नहिँ बेद उपनिषद गायौ ।
द्वै-तन जीव-एक हम दोऊ, सुख-कारन उपजायौ ।।
ब्रह्म-रूप द्वितिया नहिँ कोऊ, तब मन तिया जनायौ ।।
सूर स्याम-मुख देखि अलप हँसि, आनँद-पुंज बढ़ायौ ।।२३।।

तब नागरि मन हरष भई ।
नेह पुरातन जानि स्याम कौ, अति आनंद-भई ।।
प्रकृति पुरुष, नारी मैं वै पति, काहैं भूलि गई ।
को माता, को पिता, बंधु को, यह तौ भेँट नई ।।
जन्म-जन्म, जुग-जुग यह लीला, प्यारी जानि लई ।
सूरदास-प्रभु की यह महिमा, यातैं बिबस भई ।।२४॥

देह धरे कौ कारन सोई ।
लोक-लाज कुल-कानि न तजियै, जातैं भलौ कहै सब कोई ।।
मातु पिता के डर कौं मानै, मानै सजन कुटुँब सब सोई ।
तात मातु मोहूँ कौं भावत, तन धरि कै माया-बस होई ।।
सुनि बृषभानु-सुता मेरी बानी, प्रीति पुरातन राखहु गोई ।
सूर स्याम नागरिहिँ सुनावत, मैं तुम एक नाहिँ हैं दोई ॥२५॥

राधा-सखी संवाद

घरहिँ जाति मन हरष बढ़ायौ ।
दुख डारयौ, सुख अंग भार भरि, चली लूट सौ पायौ ॥
भौँह सकोरति चलति मंद गति, नैंकु बदन मुसुकायौ ।
तहँ इक सखी मिली राधा कौं, कहति भयौ मन भायौ ॥
कुंज-भवन हरि-संग बिलसि रस, मन कौ सुफल करायौ ।
सूर सुगंध चुरावनहारौ, कैसें दुरत दुरायौ ॥२६॥

मोसौं कहा दुरावति राधा ।
कहाँ मिली नँद-नंदन कौं, जिनि पुरई मन की साधा ॥

ब्याकुल भई फिरति ही अबहीँ, काम-बिथा तनु बाधा।
पुलकित रोम रोम गद गद, अब अँग अँग रूप अगाधा॥
नहिँ पावत जो रस जोगी जन, जप तप करत समाधा।
सुनहुँ सूर तिहिँ रस परिपूरन, दूरि कियौ तनु दाधा॥२७॥

स्याम कौन कारे की गोरे।
कहाँ रहत काके पै ढोटा, बृद्ध, तरुन की धौँ हैं भोरे॥
रहँई रहत कि और गाउँ कहुँ, मैं देखे नाहिँ न कहुँ उनकौँ।
कहै नहीं समुझाइ बात यह, मोहिँ लगावति हौ तुम जिनकौँ॥
कहाँ रहौँ मैं, वै धौँ कहँकै, तुम मिलवति हौ काहेँ ऐसी।
सुनहु सूर मोसी भोरी कौँ, जोरि जोरि लावति हौ कैसी॥२८॥

सुनहु सखी राधा की बातैँ।
मोसौँ कहति स्याम हैँ कैसे, ऐसी मिलई घातैँ॥
की गोरे, की कारे-रँग हरि, की जोबन, की भोरे।
की इहिँ गाउँ बसत, की अनतहिँ, दिननि बहुत, की थोरे॥
की तू कहति बात हँसि मोसौँ, की बूझति सति-भाउ।
सपनैँ हूँ उनकौँ नहिँ देखे, बाके सुनहु उपाउ॥
मोसौँ कही कौन तोसी प्रिय, तोसौँ बात दुरैहौँ॥
सूर कही राधा मो आगैँ, कैसेँ मुख दरसैहौँ॥२९॥

राधे तेरौ बदन बिराजत नीकौ।
जब तू इत-उत बंक बिलोकति, होत निसा-पति फीकौ॥
भृकुटी धनुष, नैन सर साँधे, सिर केसरि कौ टीकौ।
मनु घूँघट-पट मैं दुरि बैठ्यौ, पारधि रति-पतिही कौ॥
गति मैमंत नाग ज्यौँ नागरि, करे कहति हौ लीकौ।
सूरदास-प्रभु बिबिध भाँति करि, मन रिझयौ हरि पी कौ॥३०॥

काकौ काकौ मुख माई बातनि कौँ गहियै।
पाँच की सात लगायौ, झूठी झूठी कै बनायौ, साँची जौ तनक
होइ, तौलौँ सब सहियै॥
बातनि गह्यौ अकास, सुनत न आवै साँस, बोलि तौ कछू न
आवै, तातैँ मौन गहियै॥
ऐसैँ कहैँ नर नारि, बिना भीति चित्रकारि, काहे कौँ देखे मैं
कान्ह, कहा कहौ कहियै॥

घर घर यहै बैर, बृथा मोसौं करैं बैर यह सुनि सुनि स्रौन,
हिरदय दहिए।
सूरदास बरु उपहास होइ सिर मेरैं, नँद कौ सुवन मिलै तौ पै
कहा चहियै ॥३१॥

कैसे हैं नँद-सुवन कन्हाई।
देखे नहीं नैन-भरि कबहूँ, ब्रज मैं रहत सदाई॥
सकुचति हौं इक बात कहति तोहिं, सो नहिं जाति सुनाई।
कैसेहुँ मोहिं दिखावहु उनकौं, यह मेरैं मन आई॥
अतिहीं सुंदर कहियत हैं वै, मोकौं देहु बताई।
सूरदास राधा की बानी, सुनत सखी भरमाई॥३२॥

सुनहु सखी राधा की बानी।
ब्रज बसि हरि देखे नहिं कबहूँ लोग कहत कछु अकथ कहानी।
यह अब कहति दिखावहु हरि कौं, देखहु री यह अचिरज मानी।
जो हम सुनति रही सो नाहीं, ऐसे ही यह बायु बहानी॥
ज्वाब न देत बनै काहू सौं, मन मैं यह काहू नहिं मानी।
सूर सबै तरुनी मुख चाहतिं, चतुर चतुर सौं चतुरई ठानी॥३३॥

सुनि राधे तोहिं स्याम दिखैहैं।
जहाँ तहाँ ब्रज-गलिनि फिरत हैं, जब इहिं मारग ऐहैं॥
जबहीं हम उनकौं देखैंगी, तबहीं तोहिं बुलैहैं।
उनहूँ कैं लालसा बहुत यह, तोहिं देखि सुख पैहैं॥
दरसन तैं धीरज जब रैहै, तब हम तोहिं पत्यैहैं।
तुमकौं देखि स्याम सुंदर घन, मुरली मधुर बजैहैं॥
तनु त्रिभंग करि अंग अंग सौं, नाना भाव जनैहैं॥
सूरदास-प्रभु नवल कान्ह बर, पीतांबर फहरैहैं॥३४॥

माता की सीख

काहे कौं पर-घर छिनु-छिनु जाति।
घर मैं डाँटि देति सिख जननी, नाहिंन नैंकु डराति।
राधा-कान्ह कान्ह राधा ब्रज ह्वै रह्यौ अतिहि लजाति।
अब गोकुल कौ जैबौ छाँड़ो, अपजस हू न अघाति।
तू बृषभानु बड़े की बेटी, उनकैं जाति न पाँति।
सूर सुता समुझावति जननी, सकुचति नहिं मुसुकाति॥३५॥

खेलन कौं मैं जाउँ नहीं ?
और लरिकिनी घर घर खेलहिं, मोहीं कौं पै कहत तुहीं ॥
उनकैं मातु पिता नहिं कोई, खेलत डोलतिं जहीं तहीं ।
तोसी महतारी बहि जाइ न, मैं रैहौं तुमहीं बिनुहीं ॥
कबहूँ मोकौं कछू लगावति, कबहुँ कहति जनि जाहु कहीं ।
सूरदास बातैं अनखौहीं, नाहिँन मौ पै जातिं सही ॥३६॥

मनहीं मन रीझति महतारी ।
कहा भई जौ बाढ़ि तनक गई, अबहीं तौ मेरी है बारी ।
झूठें हीं यह बात उड़ी है राधा-कान्ह कहत नर-नारी ।
रिस की बात सुता के मुख की, सुनत हँसति मनहीं मन भारी ॥
अब लौं नहीं कछू इहिं जान्यौ, खेलत देखि लगावैं गारी ।
सूरदास जननी उर लावति, मुख चूमति पोंछति रिस टारी ॥३७॥

सुता लए जननी समुझावति ।
संग बिटिनिअनि कैं मिलि खेलौ, स्याम-साथ सुनि-सुनि रिस पावति ॥
जातैं निंदा होइ आपनी, जातैं कुल कौं गारी आवति ।
सुनि लाड़ली कहति यह तोसैं, तोकौं यातैं रिस करि धावति ॥
अब समुझी मैं बात सबनि की, झूठैं ही यह बात उड़ावतिं ।
सूर दास सुनि सुनि ये बातैं, राधा मन अति हरष बढ़ावति ॥३८॥

राधा बिनय करति मनहीं मन, सुनहु स्याम अंतर के जामी ।
मातु-पिता कुल-कानिहिं मानत, तुमहिं न जानत हैं जग-स्वामी ।
तुम्हरौ नाउँ लेत सकुचत हैं, ऐसैं ठौर रही हौं आनी ।
गुरु परिजन की कानि मानियौ, बारंबार कही मुख बानी ॥
कैसे संग रहौं बिमुखनि कैं, यह कहि-कहि नागरि पछितानी ।
सूरदास-प्रभु कौं हिरदै धरि, गृह-जन देखि-देखि मुसुकानी ॥३९॥

कृष्ण दर्शन

राधा जल बिहरति सखियनि सँग ।
ग्रीव-प्रजंत नीर मैं ठाढ़ी, छिरकति जल अपनैं अपनैं रँग ॥
मुख भरि नीर परसपर डारतिं, सोभा अतिहिँ अनूप बढ़ी तब ।
मनहु चंद-गन सुधा गँडूषनि, डारति हैं आनंद भरे सब ॥

आईं निकसि जानु कटि लौं सब, अँजुरिनि तैं लै लै जल डारतिं।
मानहु सूर कनक-बल्ली जुरि, अंमृत बूँद पवन-मिस झारतिं ॥४०॥

जमुना जल बिहरति ब्रज-नारी।
तट ठाढ़े देखत नँद-नंदन, मधुर मुरलि कर धारी ॥
मोर मुकुट, स्रवननि मनि कुंडल, जलज-माल उर भ्राजत।
सुंदर सुभग स्याम तन नव घन बिच बग पाँति बिराजत ॥
उर बनमाल सुमन बहु भाँतिनि, सेत, लाल, सित, पीत।
मनहु सुरसरी तट बैठे सुक बरन बरन तजि भीत ॥
पीतांबर कटि तट छुद्रावलि, बाजति परम रसाल।
सूरदास मनु कनकभूमि ढिग, बोलत रुचिर मराल ॥४१॥

चितवनि रोकैं हूँ न रही।
स्याम सुंदर सिंधु-सनमुख, सरति उमँगि बही ॥
प्रेम-सलिल प्रवाह भँवरनि, मिति न कबहुँ लही।
लोभ-लहर-कटाच्छ, घूँघट-पट-करार ढही ॥
थके पल पथ, नाव-धीरज परति नहिँ न गही
मिली सूर सुभाव स्यामहिँ, फेरिहू न चही ॥४२॥

हमहिँ कह्यौ हो स्याम दिखावहु।
देखहु दरस नैन भरि नीकैं, पुनि-पुनि दरस न पावहु ॥
बहुत लालसा करति रही तुम, वे तुम कारन आए।
पूरी साध मिली तुम उनकौं, यातैं हमहिँ भुलाए।
नीकैं सगुन आजु ह्याँ आईं, भयौ तुम्हारौ काज।
सुनहु सूर हमकौं कछु दैहौ, तुमहिँ मिले ब्रजराज ॥४३॥

राधा चलहु भवनहिँ जाहिँ।
कबहिँ की हम जमुन आईं, कहहिँ अरु पछिताहिँ ॥
कियौं दरसन स्याम कौ तुम, चलौगी की नाहिँ।
बहुरि मिलिहौ चीन्हि राखहु, कहत, सब मुसुकाहिँ ॥
हम चलीं घर तुमहुँ आवहु, सोच भयौ मन माहिँ।
सूर राधा सहित गोपी चलीं ब्रज-समुहाहिँ ॥४४॥

कहि राधा हरि कैसे हैं।
तेरैं मन भाए की नाहीं, की सुंदर, की नैसे हैं ॥

की पुनि हमहिं दुराव करौगी, की कैहौ वै जैसे हैं ।
की हम तुमसौं कहति रहीं ज्यौं, साँच कहौ की तैसे हैं ।।
नटवर-वेष काछनी काछे, अंगनि रति पति-सै से हैं ।
सूर स्याम तुम नीकैं देखे, हम जानत हरि ऐसे हैं ।।४५।।

स्याम सखि नीकैं देखे नाहिं ।
चितवत ही लोचन भरि आए, बार-बार पछिताहिं ।।
कैसेहुँ करि इकटक मैं राखति, नैंकहिं मैं अकुलाहिं ।
निमिष मनौ छबि पर रखवारे, तातैं अतिहिं डराहिं ।।
कहा करैं इनकौ कह दूपन, इन अपनी सी कीन्ही ।
सूर स्वाम-छबि पर मन अटक्यौ, उन सब सोभा लीन्ही ।।४६।।

राधा का अनुराग

पुनि पुनि कहति हैं ब्रज नारि ।
धन्य बड़ भागिनी राधा, तेरैं बस गिरिधारि ।।
धन्य नंद-कुमार धनि तुम, धन्य तेरी प्रीति ।
धन्य दोउ तुम नवल जोरी, कोक कलानि जीति ।।
हम बिमुख, तुम कृष्न-संगिनि, प्रान इक, द्वै देह ।
एक मन, इक बुद्धि, इक चित, दुहुँनि एक सनेह ।।
एक छिनु बिनु तुमहिं देखैं, स्याम धरत न धीर ।
मुरलि मैं तुव नाम पुनि पुनि कहत हैं बलबीर ।।
स्याम मनि तैं परखि लीन्हौ, महा चतुर सुजान ।
सूर के प्रभु प्रेमहीं बस, कौन तो सरि आन ।।४७।।

राधा परम निर्मल नारि ।
कहति हौं मन कर्मना करि, हृदय-दुविधा टारि ।।
स्याम कौं इक तुहीं जान्यौ, दुराचारिनि और ।
जैसैं घट पूरन न डोलै, अध भरौ डगडौर ।।
धनी धन कबहूँ न प्रगटै, धरै ताहि छपाइ ।
तैं महानग स्याम पायौ, प्रगटि कैसैं जाइ ।।
कहति हैं यह बात तोसैं, प्रगट करिहौ नाहिं ।
सूर सखी सुजान राधा, परसपर मुसुकाहिं ।।४८।।

तैं ही स्याम भले पहिचाने ।
साँची प्रीति जानि मनमोहन, तेरेहिं हाथ बिकाने ।।

हम अपराध कियौ कहि तुमसौं, हमहीं कुलटा नारि।
तुमसौं उनसौं बीच नहीं कछु, तुम दोऊ बर-नारि॥
धन्य सुहाग भाग है तेरौ, धनि बड़भागी स्याम।
सूरदास-प्रभु से पति जाकैं, तोसी जाकै बाम॥४९॥

राधा स्याम की प्यारी।
कृष्न पति सर्बदा तेरे, तू सदा नारी॥
सुनत बानी सखी-मुख की, जिय भयौ अनुराग।
प्रेम-गदगद, रोम पुलकित, समुझि अपनौ भाग॥
प्रीति परगट कियौ चाहै, बचन बोलि न जाइ।
नंद-नंदन काम-नायक रहे नैननि छाइ॥
हृदय तैं कहुँ टरत नाहीं, कियौ निहचल बास।
सूर प्रभु-रस भरी राधा, दुरत नहीं प्रकास॥५०॥

जौ बिधना अपबस करि पाऊँ।
तौ सखि कह्यौ होइ कछु तेरौ, अपनी साध पुराऊँ॥
लोचन रोम-रोम-प्रति माँगौं, पुनि-पुनि त्रास दिखाऊँ।
इकटक रहैं पलक नहिं लागैं, पद्धति नई चलाऊँ॥
कहा करौं छबि-रासि स्यामघन, लोचन द्वै नहिं ठाऊँ।
एते पर ये निमिष सूर सुनि, यह दुख काहि सुनाऊँ॥५१॥

कहि राधिका बात अब साँची।
तुम अब प्रगट कही मो आगैं, स्याम-प्रेम-रस माँची॥
तुमकौं कहाँ मिले नँद-नंदन, जब उनकैं रँग राँची।
खरिक मिले, की गोरस बेंचत, की जब बिषहर बाँची॥
कहैं बनै छाँड़ौ चतुराई, बात नहीं यह काँची।
सूरदास राधिका सयानी, रूप-रासि-रस-खाँची॥५२॥

कब री मिले स्याम नहिं जानौं।
तेरी सौं करि कहति सखी री, अजहूँ नहिं पहिचानौं॥
खरिक मिले, की गोरस बेंचत, की अबहीं, की कालि।
नैननि अंतर होत न कबहूँ, कहति कहा री आलि॥
एकौ पल हरि होत न न्यारे, नीकैं देखे नाहिँ।
सूरदास-प्रभु टरत न टारैं, नैननि सदा बसाहिँ॥५३॥

स्याम मिले मोहिँ ऐसैं माई। मैं जल कौं जमुना तट आई।
औचक आए तहाँ कन्हाई। देखत ही मोहिनी लगाई।
तबहीं तैं तन-सुरति गँवाई। सूधैं मारग गई भुलाई।
बिनु देखैं कल परै न माई। सूर स्याम मोहिनी लगाई ॥२४॥

तबहीं तैं हरि हाथ बिकानी। देह-गेह-सुधि सबै भुलानी।
अंग सिथिल भए जैसें पानी। ज्यौं-त्यौं करि गृह पहुँची आनी।
बोले तहाँ अचानक बानी। द्वारैं देखे स्याम बिनानी।
कहा कहौं सुनि सखी सयानी। सूर स्याम ऐसी मति ठानी ॥२५॥

जा दिन तैं हरि दृष्टि परे री।
ता दिन तैं मेरे इन नैननि, दुख सुख सब बिसरे री ॥
मोहन अंग गुपाल लाल के, प्रेम-पियूष भरे री।
बसे उहाँ मुसुकनि-बाँह लै, रचि रुचि भवन करे री ॥
पठवति हौं मन तिनहिँ मनावन निसिदिन रहत अरे री।
ज्यौं ज्यौं जतन करति उलटावति त्यौं त्यौं उठत खरे री ॥
पचिहारी समुझाइ ऊँच-निच पुनि-पुनि पाइ परे री।
सो सुख सूर कहाँ लौं बरनौं इक टक तैं न टरे री ॥२६॥

जब तैं प्रीति स्याम सौं कीन्ही।
ता दिन तैं मेरैं इन नैननि, नैकुहुँ नींद न लीन्ही ॥
सदा रहै मन चाक चढ़्यौ, सो और न कछू सुहाइ।
करत उपाइ बहुत मिलिबे कौं, यहै बिचारत जाइ ॥
सूर सकल लागति ऐसीयै, सो दुख कासौं कहियै।
ज्यौं अचेत बालक की बेदन, अपनैं ही तन सहियै ॥२७॥

ना जानौं तबहीं तैं मोकौं, स्याम कहा धौं कीन्हौ री।
मेरी दृष्टि परे जा दिन तैं, ज्ञान ध्यान हरि लीन्हौ री ॥
द्वारैं आइ गए औचक हीं, आँगन ही ठाढ़ी री।
मनमोहन-मुख देखि रही तब, काम-बिथा तनु बाढ़ी री ॥
नैन-सैन दै-दै हरि मो तन, कछु इक भाव बतायौ री।
पीतांबर उपरैना कर गहि अपनैं सीस फिरायौ री ॥
लोक-लाज, गुरुजन की संका, कहत न आवै बानी री।
सूर स्याम मेरैं आँगन आए, जात बहुत पछितानी री ॥२८॥

मैं अपनौ मन हरत न जान्यौ ।
कीधौं गयौ संग हरि कैं वह, कीधौं पंथ भुलान्यौ ॥
कीधौं स्याम हटकि है राख्यौ, कीधौं आपु रतान्यौ ।
काहे तैं सुधि करी न मेरी, मोपै कहा रिसान्यौ ॥
जबहीं तैं हरि ह्याँ ह्वै निकसे, बैरु तबहिं तैं ठान्यौ ।
सूर स्याम सँग चलन कह्यौ मोहिं, कह्यौ नहीं तब मान्यौ ॥५६॥

स्याम करत हैं मन की चोरी ।
कैसैं मिलत आनि पहिलैं ही, कहि-कहि बतियाँ भोरी ॥
लोक-लाज की कानि गँवाई, फिरति गुड़ी बस डोरी ।
ऐसे ढंग स्याम अब सीख्यौ, चोर भयौ चित कौ री ॥
माखन की चोरी सहि लीन्ही, बात रही वह थोरी ।
सूर स्याम भयौ निडर तबहिं तैं, गोरस लेत अँजोरी ॥६०॥

माई कृष्न-नाम जब तैं स्रवन सुन्यौ है री, तब तैं भूली
री भौन बावरी सी भई री ।
भरि भरि आवैं नैन, चित न रहत चैन, बैन नहिं सूधौ दसा
औरहिं ह्वै गई री ॥
कौन माता, कौन पिता, कौन भैनी, कौन भ्राता, कौन ज्ञान, कौन
ध्यान, मनमथ हई री ।
सूर स्याम जब तैं परे री मेरी डीठि, बाम, काम, धाम, लोक-लाज
कुल-कानि नई री ॥६१॥

राधा तैं हरि कैं रँग राँची ।
तो तैं चतुर और नहिं कोऊ, बात कहौं मैं साँची ॥
तैं उनकौ मन नहीं चुरायौ, ऐसी है तू काँची ।
हरि तेरौ मन अबहि चुरायौ, प्रथम तुही है नाँची ॥
तुम अरु स्याम एक हौ दोऊ, बाकी नाहीं बाँची ।
सूर स्याम तेरैं बस, राधा, कहति लीक मैं खाँची ॥६२॥

तुम जानति राधा है छोटी ।
चतुराई अँग अंग भरी है, पूरन-ज्ञान, न बुधि की मोटी ॥
हमसौं सदा दुराव कियौ इहिं, बात कहै मुख चोटी-पोटी ।
कबहुँ स्याम तैं नैंकु न बिछुरति, किये रहति हमसौं हठ ओटी ॥

नंद-नँदन याही कैं बस हैं, बिबस देखि बेंदी छबि-चोटी ।
सूरदास-प्रभु वै अति खोटे, यह उनहूँ तैं अतिहीं खोटी ॥६३॥

सुनहु सखी राधा सरि को है ।
जो हरि है रतिपति मनमोहन, याकौ मुख सो जोहै ॥
जैसौ स्याम नारि यह तैसी, सुंदर जोरी सोहै ।
यह द्वादस वहऊ दस द्वै कौ, ब्रज-जुवतिनि मन मोहै ॥
मैं इनकौं घटि बढ़ि नहिं जानति, भेद करै सो को है ।
सूर स्याम नागर, यह नागरि, एक प्रान तन दो है ॥६४॥

राधा नँद-नंदन अनुरागी ।
भय चिंता हिरदै नहिं एकौ, स्याम रंग-रस पागी ॥
हृदय चून रँग, पय पानी ज्यौं दुबिधा दुहुँ की भागी ।
तन-मन-प्रान समर्पन कीन्हौ, अंग-अंग रति खागी ॥
ब्रज-बनिता अवलोकन करि-करि, प्रेम-बिबस तनु त्यागी ।
सूरदास-प्रभु सौं चित लाग्यौ सोवत तैं मनु जागी ॥६५॥

आँखिनि मैं बसै, जिय मैं बसै, हिय मैं बसत निसि दिवस प्यारौ ।
तन मैं बसै, मन मैं बसै, रसना हू मैं बसै नंदवारौ ॥
सुधि मैं बसै, बुधिहू मैं बसै, अंग-अंग बसै मुकुटवारौ ।
सूर बन बसै, घरहु मैं बसै, संग ज्यौं तरंग जल न न्यारौ ॥६६॥

उपहास

तुम कुल बधू निलज जनि ह्वैहौ ।
यह करनी उनहीं कौं छाजै, उनकैं संग न जैहौ ॥
राधा-कान्ह-कथा ब्रज-घर-घर, ऐसैं जनि कहवैहौ ।
यह करनी उन नई चलाई, तुम जनि हमहिं हँसैहौ ॥
तुम हौ बड़े महर की बेटी, कुल जनि नाउँ धरैहौ ।
सूर स्याम राधा की महिमा, यहै जानि सरमैहौ ॥६७॥

यह सुनि कै हँसि मौन रहीं री ।
ब्रज उपहास कान्ह-राधा कौ, यह महिमा जानी उनहीं री ॥
जैसी बुद्धि हृदय है इनकैं, तैसीयै मुख बात कही री ।
रबि कौ तेज उलूक न जानै, तरनि सदा पूरन नभहीं री ॥
विष कौ कीट बिषहिं रुचि मानै, कहा सुधा रसहीं री ।
सूरदास तिल-तेल-सवादी, स्वाद कहा जानै घृतहीं री ॥६८॥

सहसा भेंट

इततैं राधा जाति जमुन-तट, उततैं हरि आवत घर कौं।
कटि काछनी, वेष नटवर कौ, बीच मिली मुरलीधर कौं॥
चितै रही मुख-इंदु मनोहर, वा छबि पर वारति तन कौं।
दूरिहु तैं देखत ही जाने, प्राननाथ सुंदर घन कौं॥
रोम पुलक, गदगद बानी कही, कहाँ जात चोरे मन कौं।
सूरदास-प्रभु चोरन सीखे, माखन तैं चित बित-धन कौं॥६९॥

भुजा पकरि ठाढ़े हरि कीन्हे।
बाँह मरोरि जाहुगे कैसैं, मैं तुम नीकैं चीन्हे॥
माखन-चोरी करत रहे तुम, अब भए मन के चोर।
सुनत रही मन चोरत हैं हरि, प्रगट लियौ मन मोर॥
ऐसे ढीठ भए तुम डोलत, निदरे ब्रज की नारि।
सूर स्याम मोहूँ निदरौगे, देहुँ प्रेम की गारि॥७०॥

यह बल केतिक जादौ राइ।
तुम जु तमकि कै मो अबला सौं, चले बाहँ छुटकाइ॥
कहियत हो अति चतुर सकल अँग आवत बहुत उपाइ।
तौ जानौं जौ अब एकौ छन, सकौ हृदय तैं जाइ॥
सूरदास स्वामी श्रीपति कौं, भावत अंतर भाइ।
सहि न सके रति-बचन, उलटि हँसि लीन्ही कंठ लगाइ॥७१॥

कुल की लाज अकाज कियौ।
तुम बिनु स्याम सुहात नहीं कछु, कहा करौं अति जरत हियौ॥
आपु गुप्त करि राखी मोकौं, मैं आयसु सिर मानि लियौ।
देह-गेह-सुधि रहति बिसारे, तुम तैं हितु नहिं और बियौ॥
अब मोकौं चरननि तर राखौ, हँसि नँद नंदन अंग छियौ।
सूर स्याम श्रीमुख की बानी, तुम पैं प्यारी बसत जियौ॥७२॥

मातु पिता अति त्रास दिखावत।
भ्राता मोहिं मारन कौं धिरवै, देखैं मोहिं न भावत।
जननी कहति बड़े की बेटी, तोकौं लाज न आवति।
पिता कहै कैसी कुल उपजी, मनहीं मन रिस पावति॥
भगिनी देखि देति मोहिं गारी, काहैं कुलहिं लजावति।
सूरदास-प्रभु सौं यह कहि-कहि, अपनी बिपति जनावति॥७३॥

सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन।
विमुख जननि की संगति कौ दुख, कब धौं करिहौ मोचन॥
भवन मोहिँ भाठी सौ लागत, मरति सोचहीँ सोचन।
ऐसी गति मेरी तुम आगैँ, करत कहा जिय दोचन॥
धिक वै मातु-पिता, धिक भ्राता, देत रहत मोहिँ खोँचन।
सूर स्याम मन तुमहिँ लगान्यौ, हरद-चून-रँग-रोचन॥७४॥

कुल की कानि कहाँ लगि करिहौँ।
तुम आगैँ मैँ कहौँ जु साँची, अब काहू नहिँ डरिहौँ॥
लोग कुटुँब जग के जे कहियत, पेला सबहिँ निदरिहैँ।
अब यह दुख सहि जात न मोपैँ, बिमुख बचन सुनि मरिहैँ।
आपु सुखी तौ सब नीके हैँ, उनके सुख कह सरिहैँ।
सूरदास प्रभु चतुर-सिरोमनि अबकैँ हैँ कछु लरिहैँ॥७५॥

प्राननाथ हो मेरी सुरति किन करौ।
मैँ जु दुख पावति हैँ दीनद्याल, कृपा करौ, मेरौ कामदंद-दुख औ बिरह हरौ॥
तुम बहु रमनी रमन सो तौ जानति हैँ याही के जु धोखैँ हौ मोसैँ काहैँ लरौ।
सूरदास-स्वामी तुम हौ अंतरजामी सुनौ मनसा बाचा मैँ ध्यान तुम्हरौई धरौँ॥७६॥

हैँ या माया ही लागी तुम कत तोरत।
मेरौ तौ जिय तिहारे चरननि ही मैँ लाग्यौ, धीरज क्यौँ रहै रावरे मुख मोरत॥
कोऊ लै बनाइ बातैँ, मिलवति तुम आगैँ, सोई किन आइ मोसैँ अब है जोरत।
सूरदास-पिय, मेरे तौ तुमहिँ हौ जु जिय, तुम बिनु देखैँ मेरौ हिय ककोरत॥७७॥

बिहँसि राधा कृष्न अंक लीन्ही।
अधर सौँ अधर जुरि, नैन सौँ नैन मिलि, हृदय सौँ हृदय लगि, हरष कीन्ही॥
कंठ भुज-भुज जोरि, उछँग लीन्ही नारि, भुवन-दुख टारि, सुख दियौ भारी।

हरषि बोले स्याम, कुञ्ज-बन-घन-धाम, तहाँ हम तुम संग मिलैं
प्यारी ।
जाहु गृह परम धन, हमहुँ जैहैं सदन, आइ कहुँ पास मोहिँ सैन
दैहौ ।
सूर यह भाव दै, तुरतहीं गवन करि, कुंज-गृह-सदन तुम जाइ रैहौ ॥७८॥

व्याज मिलन

सुनि री मैया काल्हिहीं, मोतिसरी गँवाई ।
सखिनि मिलै जमुना गई, धौं उनहिँ चुराई ॥
कीधौं जलही मैं गई, यह सुधि नहिँ मेरैं ।
तब तैं मैं पछिताति हौं, कहति न डर तेरैं ॥
पलक नहीं निसि कहुँ लगी, मोहिँ सपथ तिहारी ।
इहि डर तैं मैं आजुहीं, अति उठी सवारी ।
महरि सुनत चक्रित भई, मुख ज्वाब न आवै ।
सूर राधिका गुन भरी, कोउ पार न पावै ॥७९॥

सुनि राधा अब तोहिँ न पत्यैहैं ।
और हार चौकी हमेल अब, तेरैं कंठ न नैहैं ॥
लाख टका की हानि करी तैं, सो जब तोसैं लैहैं ।
हार बिना ल्याएँ लड़बौरी घर नहिँ पैठन दैहैं ॥
जब देखौंगी वहै मोतिसरि, तबहीं तौ सचु पैहैं ।
नातरु सूर जन्म भरि तेरो, नाउँ नहीं मुख लैहैं ।८०॥

जैहै कहाँ मोतिसरि मोरी ।
अब सुधि भई लई वाही नैं, हँसति चली वृषभानु-किसोरी ॥
अबहीं मैं लीन्हे आवति हौं, मेरैं सँग आवै जनि को री ।
देखौ धौं कह करिहैं वाकौ, बड़े लोग सीखत हैं चोरी ॥
मोकौं आजु अबेर लागि है, ढूढ़ौंगी घर-घर ब्रज खोरी ।
सूर चली निधरक ह्वै सब सौं, चतुर राधिका बातनि भोरी ॥८१॥

नंद-महर-घर के पिछवारैं, राधा आइ बतानी ।
मनौ अंब-दल-मौर देखि के, कुहुकी कोकिल बानी ॥
झूठेहिँ नाम लेति ललिता कौ, काहैं जाहु परानी ।
बृन्दाबन-मग जाति अकेली, सिर लै दही-मथानी ॥

मैं बैठी परखति ह्याँ रैहौं, स्याम तबहिं तिहिं जानी।
कोक-कला-गुन-आगारि नागरि, सूर चतुरई ठानी ॥८२॥

सैन दै नागरी गई बन कौं।
तबहिं कर-कौर दियौ डारि, नहिं रहि सके, ग्वाल जेंवत तजे, मोह्यौ उनकौं ॥
चले अकुलाइ बन धाइ, ब्याई गाइ देखिहौं जाइ, मन हरष कीन्हौ।
प्रिया निरखति पंथ, मिलैं कब हरि कंत, गए इहिं अंत हँसि अंक लीन्हौ।
अतिहिं सुख पाइ अतुराइ मिले धाइ दोउ, मनौ अति रंक नव-निधिहिं पाई।
सूर प्रभु की प्रिया राधिका अति नवल, नवल नँद-लाल के मनहिं भाई ॥८३॥

दीजै कान्ह काँधे कौ कंबर।
नान्ही नान्ही बूँदनि बरषन लाग्यौ, भीजत कुसुँभी अंबर ॥
बार-बार अकुलाइ राधिका, देखि, मेघ-आडंबर।
हँसि हँसि रीझि बैठि रहे दोऊ, ओढ़ि सुभग पीतंबर ॥
सिव सनकादिक नारद-सारद, अंत न पावै तुंबर।
सूर स्याम-गति लखि न परति कछु, खात ग्वाल सँग संबर ॥८४॥

कान्ह कह्यौ बन रैनि न कीजै, सुनहु राधिका प्यारी।
अति हित सौं उर लाइ कह्यौ, अब भवन आपनैं जा री ॥
मातु-पिता जिय जानै न कोऊ, गुप्त-प्रीति रस भारी।
कर तैं कौर डारि मैं आयौ, देखत दोउ महतारी ॥
तुम जैसी मोहिं प्यारी लागति, चंद चकोर कहा री।
सूरदास-स्वामी इन बातनि, नागरि रिझई भारी ॥८५॥

मैं बलि जाउँ कन्हैया की।
करतैं कौर डारि उठि धायौ, बात सुनी बन गैया की ॥
धौरी गाइ आपनी जानी, उपजी प्रीति लवैया की।
तातैं जल समोइ पग धोवति, स्याम देखि हित मैया की ॥
जो अनुराग जसोदा कैं उर, मुख की कहनि कन्हैया की।
यह सुख सूर और कहुँ नाहीं, सौंह करत बल भैया की ॥८६॥

राधा अतिहिँ चतुर प्रबीन ।
कृष्न कौँ सुख दै चली हँसि, हंस-गति कटि छीन ॥
हार कैँ मिस इहाँ आई, स्याम मनि-कैँ काज ।
भयौ सब पूरन मनोरथ, मिले श्रीब्रजराज ॥
गाँठि-आँचर छोरि कै, मोतिसरी लीन्ही हाथ ।
सखी आवति देखि राधा, लई ताकौँ साथ ॥
जुवति बूझति कहाँ नागरि, निसि गई इक जाम ।
सूर ब्यौरो कहि सुनायौ, मैँ गई तिहिँ काम ॥८७॥

करति अवसेर वृषभानु-नारी ।
प्रात तैँ गई, बासर गयौ बीति सब, जाम निसि गई, धौँ कहाँ बारी ॥
हार कैँ त्रास मैँ कुँवरि त्रासी बहुत, तिहिँ डरनि अजहुँ नहि सदन आई ।
कहाँ मैँ जाउँ, कह धौँ रही रूसि कै, सखिनि सौँ कहति कहुँ मिली माई ।
हार बहि जाइ, अति गई अकुलाई कै, सुता कैँ नाउँ इक वहै मेरैँ ।
सूर यह बात जौ सुनैँ अबहीँ महर, कहैँ ये ढंग तेरे ॥८८॥

राधा डर डराति घर आई ।
देखत हीँ कीरति महतारी, हरषि कुँवरि उर लाई ॥
धीरज भयौ सुता-माता जिय, दूरि गयौ तनु-सोच ।
मेरी कौँ मैँ काहेँ त्रासी, कहा कियौ यह पोच ॥
लै री मैया हार मोतिसरी, जा कारन मोहिँ त्रासी ।
सूर राधिका के गुन ऐसे, मिलि आई अबिनासी ॥८९॥

परम चतुर बृषभानु-दुलारी ।
यह मति रची कृष्न मिलिबे की, परम पुनीत महा री ॥
उत सुख दियौ नंद-नंदन कौँ, इतहिँ हरष महतारी ।
हार इतौ उपकार करायौ, कबहुँ न उर तैँ टारी ॥
जे सिव सनक-सनातन दुर्लभ, ते बस किये कुमारी ।
सूरदास-प्रभु-कृपा अगोचर, निगमनि हू तैँ न्यारी ॥९०॥

प्रीति के बस्य ये हैं मुरारी।
प्रीति के बस्य नटवर सुभेषसहिँ धर्यौ, प्रीति बस करज गिरिराज
धारी।
प्रीति के बस्य ब्रज भए माखन चोर, प्रति बस्य दाँवरि बँधाई।
प्रीति के बस्य गोपी-रमन नाम प्रिय, प्रीति-बस जमल तरु
मोच्छदाई।
प्रीति-बस नंद-बंधन बरुन-गृह गए, प्रीति के बस्य बन-धाम कामी।
प्रीति के बस्य प्रभु सूर त्रिभुवन बिदित, प्रीति बस सदा राधिका
स्वामी ॥६१॥

भ्रम

आजु सखी अरुनोदय मेरे, नैननि कौं धोख भयौ।
की हरि आजु पंथ इहिँ गवने, स्याम जलद की उनयौ॥
की बग पाँति भाँति, उर पर की मुकुत-माल बहु मोल।
कीधौं मोर मुदित नाचत, की बरह-मुकुट की डोल॥
की घनघोर गँभीर प्रात उठि, की ग्वालनि की टेरनि।
की दामिनी कौ दुति चहुँ दिसि, की सुभग पीत पट फेरनि॥
की बनमाल लाल-उर राजति, की सुरपति-धनु चारु।
सूरदास-प्रभु-रस भरि उमँगी, राधा कहति बिचारु॥६२॥

राधिका हृदय तैं धोख टारौ।
नंद के लाल देखे प्रात-काल तैं, मेंघ नहिँ स्याम तनु-छबि बिचारौ।
इंद्र-धनु नहीं बन दाम बहु सुमन के, नहीँ बग पाँति बर मोति-माला।
सिखी वह नहीँ सिर मुकुट सीखंड पछ, तड़ित नहिँ पीत पट-छबि
रसाला॥
मंद गरजन नहीँ चरन नूपुर-सबद, भोरही आजु हरि गवन कीन्हौ।
सूर-प्रभु भामिनी भवन करि गवन, मन रवन दुख के दवन जानि
लीन्हौ॥६३॥

एकनिष्ठा

धन्य धन्य ब्रजभानु-कुमारी।
धनि माता, धनि पिता तिहारे तोसो जाई बारी॥
धन्य दिबस, धनि निसा तबहिँ की, धन्य घरी, धनि जाम।
धन्य कान्ह तेरैं बस जे हैँ, धनि कीन्हे बस स्याम।

धनि मति, धनि रति, धनि तेरौ हित, धन्य भक्ति, धनि भाउ ।
सूर स्याम पति धन्य नारि तू, धनि-धनि एक सुभाउ ॥९४॥

तोहिँ स्याम हम कहा दिखावैँ ।
तुमतैँ न्यारे रहत कहुं न वै, नैँकु नहीँ बिसरावैँ ॥
एक जीव देही द्वै राची, यह कहि कहि जु सुनावैँ ।
उनकी पटतर तुमकौँ दीजै, तुम पटतर वै पावैँ ॥
अमृत कहा अमृत-गुन प्रगटै, सो हम कहा बतावैँ ।
सूरदास गूँगे कौ गुर ज्यौँ, बूझति कहा बुझावैँ ॥९५॥

सुनि राधा यह कहा बिचारै ॥
वै तेरैँ तू उनकैँ रँग, अपनौ मुख क्यौँ न निहारै ॥
जौ देखै तौ छाँह आपनी, स्याम-हृदै ह्याँ छाया ।
ऐसी दसा नंद-नंदन की, तुम दोउ निर्मल काया ॥
नीलांबर स्यामल तनु की छबि, तुम छबि पीत सुबास ।
घन-भीतर दामिनी प्रकासित, दामिनि घन चहुँ पास ॥
सुनि री सखी बिलछ कहौँ तोसौँ चाहति हरि कौ रूप ।
सूर सुनहु तुम दोउ सम जोरी, एक स्वरूप अनूप ॥९६॥

पिय तेरैँ बस यौँ री माई ॥
ज्यौँ संगहिँ सँग छाँह देह-बस, प्रेम कह्यौ नहिँ जाई ॥
ज्यौँ चकोर बस सरद-चंद्र कैँ, चक्रवाक बस-भान ।
जैसैँ मधुकर कमल-कोस-बस, त्यौँ बस स्याम सुजान ॥
ज्यौँ चातक बस स्वाति बूँद कैँ, तन कैं बस ज्यौँ जीय ।
सूरदास-प्रभु अति बस तेरैँ, समुझ देखि धौँ हीय ॥९७॥

लघुमान लीला

मैँ अपनैँ जिय गर्ब कियौ ।
वै अंतरजामी सब जानत, देखत ही उन चरचि लियौ ।
कासौँ कहौँ मिलावै को अब, नैंकु न धीरज धरत जियौ ।
वै तौ निठुर भए या बुधि सौं, अहंकार फल यहै दियौ ॥
तब आपुन कौं निठुर करावति, प्रीति सुमिरि भरि लेति हियौ।
सूर स्याम प्रभु वै बहु नायक, मोसी उनकैँ कोटि तियौ ॥९८॥

महा बिरह-बन माँझ परी ।
चकित भई ज्यौँ चित्र-पूतरी, हरि-मारग बिसरी ॥

सँग बटपार-गर्ब जब देख्यौ, साथी छोड़ि पराने।
स्याम-सहर-अँग-अंग-माधुरी, तहँ वै जाइ लुकाने।
यह बन माँझ अकेली ब्याकुल, संपति गर्ब छँड़ायौ।
सूर स्याम-सुधि टरति न उर तैं, यह मनु जीव बचायौ ॥९९॥

राधा-भवन सखी मिलि आईं।
अति ब्याकुल सुधि-बुधि कछु नाहीं, देह दसा बिसराई॥
बाँह गही तिहिं बूझन लागीं, कहा भयौ री माई।
ऐसी बिबस भई तू काहैं, कहौ न हमहिं सुनाई॥
कालिहिं और बरन तोहिं देखी, आजु गई मुरझाई।
सूर स्याम देखे की बहुरौ, उनहिं ठगौरी लाई ॥१००॥

अब मैं तोसौं कहा दुराऊँ।
अपनी कथा, स्याम की करनी, तो आगैं कहि प्रगट सुनाऊँ॥
मैं बैठी ही भवन आपनैं, आपुन द्वार दियौ दरसाऊँ।
जानि लई मेरे जिय की उन, गर्ब-प्रहारन उनकौ नाऊँ॥
तबहीं तैं ब्याकुल भई डोलति, चित न रहै कितनौ समुझाऊँ।
सुनहु सूर गृह बन भयौ मोकौं, अब कैसैं हरि-दरसन पाऊँ ॥१०१॥

हमरी सुरति बिसारी बनवारी, हम सरबस दै हारी।
पै न भए अपने सनेह बस, सपनेहू गिरधारी॥
वै मोहन मधुकर समान सखि, अनगन बेली-चारी।
ब्याकुल बिरह ब्यापि दिन दिन हम, नीर जु नैननि ढारी॥
हम तन मन दै हाथ बिकानी, वै अति निठुर मुरारी।
सूर स्याम बहु रमनि रमन, हम इक व्रत, मदन-प्रजारी ॥१०२॥

मैं अपनी सी बहुत करी री।
मोसौं कहा कहति तू माई, मन कैं सँग मैं बहुत लरी री॥
राखौं हटकि उतहिं कौं धावत वाकी ऐसियै परनि परी री।
मोसौं बैर करै रति उनसौं, मोकौं राख्यौ द्वार खरी री॥
अजहूँ मान करौं, मन पाऊँ, यह कहि इत-उत चितै डरी री।
सुनहु सूर पाँचनि मत एकै, मैं ही मोही रही परी री ॥१०३॥

भूलि नहीं अब मान करौं री।
जातैं होइ अकाज आपनौ, काहैं बृथा मरौं री॥

ऐसे तन मैं गर्ब न राखौं, चिंतामनि बिसरौं री।
ऐसी बात कहै जो कोऊ, ताकैं संग लरौं री।।
आरजपंथ चलैं कह सरिहै, स्यामहिं संग फिरौं री।
सूर स्याम जउ आपु सरथी, दरसन नैन भरौं री।।१०४।।
माई मेरौ मन पिय सौं यौं लाग्यौ, ज्यौं सँग लागी छाँहि।
मेरौ मन पिय जीव बसत है, पिय जिय मो मैं नाहि।।
ज्यौं चकोर चंदा कौं निरखत, इत-उत दृष्टि न जाइ।
सूर स्याम बिनु छिन-छिन जुग सम, क्यौं करि रैन बिहाइ।।१०५।।

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज बर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरबर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग।
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृग-मद काग।
खंजन, धनुष, चंद्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग।
अंग-अंग प्रति और-और छबि, उपमा ताकौं करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियौ सुधा-रस, मानौ अधरनि के बड़ भाग।।१०६।।

भुज भरि लई हिरदय लाइ।
बिरह ब्याकुल देखि बाला, नैन दोउ भरि आइ।।
रैनि-बासर-बीचही मैं दोउ गए मुरझाइ।
मनौ बृच्छ तमाल बेली-कनक, सुधा सिंचाइ।।
हरष डहडह मुसुकि फूले, प्रेम फलनि लगाइ।
काम मुरझनि बेलि तरु की, तुरत ही बिसराइ।।
देखि ललिता मिलन वह आनंद उर न समाइ।
सूर के प्रभु स्याम स्यामा, त्रिबिध ताप नसाइ।।१०७।।

ललिता प्रेम-बिबस भई भारी।
वह चितवनि, वह मिलनि परस्पर अति सोभा वर नारी।।
इकटक अंग-अंग अवलोकति, उत बस भए बिहारी।
वह आतुर छबि लेत देत वै, इक तैं इक अधिकारी।।
ललिता संग सखिनि सौं भाषति, देखौ छबि पिय-प्यारी।
सुनहु सूर ज्यौं होम अगिनि घृत, ताहू तैं यह न्यारी।।१०८।।

राधेहिँ मिलेहुँ प्रतीति न आवति ।
जदपि नाथ-बिधु बदन बिलोकत, दरसन कौ सुख पावति ।।
भरि-भरि लोचन रूप-परम-निधि, उरमैं आनि दुरावति ।
बिरह-बिकल मति दृष्टि दुहूँ दिसि, संचि सरधा ज्यौं धावति ।।
चितवत चकित रहति चित अंतर, नैन निमेष न लावति ।
सपनौ आहि कि सत्य ईस यह, बुद्धि बितर्क बनावति ।।
कबहुँक करति बिचार कौन हौं को हरि कैं हिय भावति ।
सूर प्रेम की बात अटपटी, मन तरंग उपजावति ।।१०९।।

स्याम भए राधा बस ऐसैं ।
चातक स्वाति, चकोर चंद ज्यौं चक्रवाक रवि जैसैं ।।
नाद कुरंग, मीन जल की गति, ज्यौं तनु कैं बस छाया ।
इकटक नैन अंग-छबि मोहे, थकित भए पति जाया ।।
उठैं उठत, बैठैं बैठत हैं, चलैं चलत सुधि नाहीं ।
सूरदास बड़भागिनि राधा, समुझि मनहिँ मुसुकाहीं ।।११०।।

निरखि पिय-रूप तिय चकित भारी ।
किधौं वै पुरुष मैं नारि, की वै नारि मैं ही हौं पुरुष तन सुधि बिसारी ।।
आपु तन चितै सिर मुकुट, कुंडल स्रवन, अधर मुरली, माल-बन बिराजै ।
उतहिँ पिय-रूप सिर माँग बेनी सुभग, भाल बेंदी-बिंदु महा छाजै ।।
नागरी हठ तजौ, कृपा करि मोहिँ भजौ, परी कह चूक सो कहौ प्यारी ।
सूर नागरी प्रभु-बिरह-रस मगन भई, देखि छबि हँसत गिरिराज-धारी ।।१११।।

कृष्ण गोपिका

नंद-नँदन तिय-छबि तनु काछे ।
मनु गोरी साँवरी नारि दोउ, जाति सहज मैं आछे ।।
स्याम अंग कुसुमी नई सारी, फल-गुंजा की भाँति ।
इत नागरि नीलांबर पहिरे, जनु दामिनि घन काँति ।।

आतुर चले जात बन-धामहिँ, मन अति हरष बढ़ाए।
सूर स्याम वा छबि कौँ नागरि निरखति नैन चुराए॥११२॥

स्यामा स्याम कुंज बन आवत।
भुज भुज-कंठ परस्पर दीन्हे, यह छबि उनहीँ पावत॥
इततैँ चंद्रावली-जाति ब्रज, उततैँ ये दोउ आए।
दूरिहिं तैँ चितवति उनहीँ तन, इक टक नैन लगाए॥
एक राधिका दूसरि को है, याकौँ नहि पहिचानौँ।
ब्रज-वृषभानु-पुरा-जुवतिनि कौँ, इक-इक करि मैँ जानौँ॥
यह आई कहुँ और गाँव तैँ, छबि साँवरी सलोनी।
सूर आजु यह नई बतानी, एकौ अँग न बिलोनी॥११३॥

यह वृषभानु-सुता वह को है।
याकी सरि जुवती कोउ नाहीँ, यह त्रिभुवन-मन मोहै॥
अति आतुर देखन कौँ आवति, निकट जाइ पहिचानौँ।
ब्रज मैँ रहति किधौँ कहुँ औरै, बूझे तैँ तब जानौँ॥
यह मोहिनी कहाँ तैँ आई, परम सलोनी नारी।
सूर स्याम देखत मुसुक्यानी, करी चतुरई भारी॥११४॥

कहि राधा ये को हैँ री।
अति सुंदरि साँवरी सलोनी, त्रिभुवन जन मन मोहैँ री॥
और नारि इनकी सरि नाहीँ, कहौ न हम-तन जोहैँ री।
काकी सुता, बधू हैँ काकी, काकी जुवती धौँ हैँ री॥
जैसी तुम तैसी हैँ येऊ, भली बनी तुमसौँ हैँ री।
सुनहु सुर अति चतुर राधिका, येइ चतुरनि की गौँ हैँ री॥११५॥

मथुरा तैँ ये आई हैँ।
कछु संबंध हमरौ इनसौँ, तातैँ इनहिँ बुलाई हैँ॥
ललिता संग गई दधि बेँचन, उनहीँ इनहिँ चिन्हाई हैँ।
उहै सनेह जानि री सजनी, आजु मिलन हम आई हैँ॥
तब ही की पहिचानि हमारी, ऐसी सहज सुभाई हैँ।
सूरदास मोहिँ आवत देखी, आपु संग उठि धाई हैँ॥११६॥

इनकौँ ब्रजहीँ क्यौँ न बुलावहु।
की वृषभानु पुरा, की गोकुल, निकटहिँ आनि बसावहु॥

येऊ नवल, नवल तुमहूँ हौ, मोहन कौं दोउ भावहु।
मोकौं देखि कियौ अति घूँघट, काहे न लाज छुड़ावहु॥
यह अचरज देख्यौ नहिं कबहूँ, जुवतिहिं जुवति दुरावहु।
सूर सखी राधा सौं पुनि पुनि, कहति जु हमहिं मिलावहु॥११७॥

मथुरा मैं बस बास तुम्हारौ ?
राधा तैं उपकार भयौ यह, दुर्लभ दरसन भयौ तुम्हारौ॥
बार-बार कर गहि गहि निरखति, घूँघट-ओट करौ किन न्यारौ।
कबहुँक कर परसति कपोल छुइ, चुटकि लेति ह्याँ हमहिं निहारौ॥
कछु मैं हूँ पहिचानति तुमकौं, तुमहि मिलाऊँ नंद-दुलारौ।
काहे कौं तुम सकुचति हौ जू, कहौ काह है नाम तुम्हारौ॥
ऐसी सखी मिली तोहिं राधा, तौ हमकौं काहे न बिसारौ।
सूरदास दंपति मन जान्यौ, यातैं कैसैं होत उबारौ॥११८॥

ऐसी कुँवरि कहाँ तुम पाई।
राधा हूँ तैं नख-सिख सुंदरि, अब लौं कहाँ दुराई॥
काकी नारि, कौन की बेटी, कौन गाउँ तैं आई।
देखी सुनी न ब्रज, वृंदाबन, सुधि-बुधि हरति पराई॥
धन्य सुहाग भाग याकौ, यह जुवतिनि की मनभाई।
सूरदास-प्रभु हरषि मिले हँसि, लै उर कंठ लगाई॥११९॥

नँद-नंदन हँसे नागरी-मुख चितै, हरषि चंद्रावली कंठ लाई।
बाम भुज रवनि, दच्छिन भुजा सखी पर, चले बन-धाम सुख कहि न जाई॥
मनौ बिबि दामिनी बीच नव घन सुभग, देखि छबि काम रति-सहित लाजै।
किधौं कंचन-लता बीच सु तमाल तरु, भामिनिनि बीच गिरिधर बिराजै।
गए गृह कुंज, अलि गुंज, सुमननि पुंज, देखि आनँद भरे सूर-स्वामी।
राधिका रवन, जुवती-रवन, मन-रवन निरखि छबि होत मन-काम कामी॥१२०॥

मान लीला

मोहिँ छुवौ जनि दूर रहौ जू।
जाकौं हृदय लगाइ लयौ है, ताकी बाहँ गहौ जू॥

तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी अरु दासी।
मैं देखत हिरदय वह बैठी, हम तुमकौं भई हाँसी ॥
बाहँ गहत कछु सरम न आवति, सुख पावत मन माहीं।
सुनहु सूर मो तन यह इकटक, चितवति, डरपति नाहीं ॥१२१॥

कहा भई धनि बाबरी, कहि तुमहिं सुनाऊँ।
तुम तैं को है भावती जिहिं हृदय बसाऊँ ॥
तुमहिं स्रवन, तुम नैन हौ, तुम प्रान-अधारा।
वृथा क्रोध तिय क्यौं करौ, कहि बारंबारा ॥
भुज गहि ताहि बतावहू, जेहि हृदय बसावति।
सूरज प्रभु कहैं नागरी, तुम तैं को भावति ॥१२२॥

पियहिं निरखि प्यारी हँसि दीन्हौ।
रीझे स्याम अंग-अँग निरखत, हँसि नागरि उर लीन्हौ ॥
आलिंगन दै अधर दसन खँडि, कर गहि चिबुक उठावत।
नासा सौं नासा लै जोरत, नैन नैन परसावत ॥
इहिं अंतर प्यारी उर निरख्यौ, झझकि भई तब न्यारी।
सूर स्याम मोकौं दिखरावत, उर ल्याए धरि प्यारी ॥१२३॥

मान करौ तुम और सवाई।
कोटि करौ एकै पुनि ह्वैहौ, तुम अरु मोहन माई ॥
मोहन सो सुनि नाम स्रवनहीं, मगन भई सुकुमारी।
मान गयौ, रिस गई तुरतहीं, लज्जित भई मन भारी ॥
धाइ मिली दूतिका कंठ सौं, धन्य-धन्य कहि बानी।
सूर स्याम बन धाम जानिकै, दरसन कौं अतुरानी ॥१२४॥

चलौ किन मानिनि कुंज-कुटीर।
तुव बिनु कुँवर कोटि बनिता तजि, सहत मदन की पीर ॥
गदगद स्वर संभ्रम अति आतुर, स्रवत सुलोचन नीर।
क्वासि क्वासि वृषभानु नंदिनी, बिलपत बिपिन अधीर ॥
बंसी बिसिष, माल ब्यालावलि, पंचानन पिक कीर।
मलयज गरल, हुतासन मारुत, साखामृग रिपु चीर ॥
हिय मैं हरषि प्रेम अति आतुर, चतुर चली पिय तीर।
सुनि भयभीत बज्र के पिंजर, सूर सुरति-रनधीर ॥१२५॥

स्याम नारि कैं बिरह भरे।
कबहुँक बैठत कुंज द्रुमनि तर, कबहुँक रहत खरे॥
कबहुँक तनु की सुरति बिसारत, कबहुँक तनु सुधि आवत।
तब नागरि के गुनहिँ बिचारत, तेई गुन गनि गावत।
कहूँ मुकुट, कहुं मुरलि रही गिरि, कहुं कटि पीत पिछौरी।
सूर स्याम ऐसी गति भीतर, आई दूतिका दौरी॥१२६।

धनि बृषभानु-सुता बड़ भागिनि।
कहा निहारति अंग अंग-छबि, धन्य स्याम-अनुरागिनि॥
और त्रिया नख सिख सिँगार सजि, तेरैं सहज न पूरैं।
रति, रंभा, उरबसी, रमा सी, तोहिँ निरखि मन झूरैं॥
ये सब कंत सुहागिनि नाहीँ, तू है कंत-पियारी॥
सूर धन्य तेरी सुंदरता, तोसी और न नारी॥१२७॥

सँग राजित बृषभानु कुमारी।
कुंज-सदन कुसुमनि सेज्या पर, दंपति सोभा भारी॥
आलस भरे मगन रस दोऊ, अंग अंग-प्रति जोहत।
मनहुं गौर स्यामल ससि नव तन, बैठे सन्मुख सोहत॥
कुंज भवन राधा-मनमोहन, चहूं पास ब्रजनारी।
सूर रहीँ लोचन इकटक करि, डारतिं तन मन वारी॥१२८॥

खंडिता प्रकरण

काहे कौँ कहि गए आइहैँ, काहैँ झूठी सौँहैँ खाए।
ऐसे मैँ नहिँ जाने तुमकौँ, जे गुन करि तुम प्रगट दिखाए।
भली करी यह दरसन दीन्हे, जनम जनम के ताप नसाए।
तब चितए हरि नैँकु तिया-तन, इतनैँ हि सब अपराध छमाए॥
सूरदास सुंदरी सयानी, हँसि लीन्हे पिय अंकम लाए॥१२९॥

धीर धरहु फल पावहुगे।
अपनेहीँ सुख के पिय चाँड़े, कबहूँ तौ बस आवहुगे॥
हम सौँ कहत और की औरै इन बातनि मन भावहुगे।
कबहुँ राधिका मान करैगी, अंतर बिरह जनावहुगे॥
तब चरित्र हमहीँ देखैँगी, जैसैँ नाच नचावहुगे।
सूर स्याम अति चतुर कहावत, चतुराई बिसरावहुगे॥१३०॥

मैं हरि सौं हो मान कियौ री ।
आवत देखि आन बनिता-रत, द्वार कपाट दियौ री ॥
अपनैं हीं कर साँकर सारी, संधिहिं संधि सियौ री ।
जौ देखौं तौ सेज सुमूरति, काँप्यौ रिसनि हियौ री ॥
जब झुकि चली भवन तैं बाहिर, तब हठि लौटि लियौ री ।
कहा कहौं कछु कहत न आवे, तहँ गोबिंद बियौ री ।
बिसरि गई सब रोष, हरष मन, पुनि फिरि मदन जियौ री ।
सूरदास प्रभु अति रति नागर, छलि मुख अमृत पियौ री ॥ १३१॥

नंद-नँदन सुखदायक हैं ।
नैन सैन दै हरत नारि मन, काम काम-तनु दायक हैं ॥
कबहूँ रैनि बसत काहू कैं, कबहूँ भोर उठि आवत हैं ।
काहू कौ मन आपु चुरावत, काहू कैं मन भावत हैं ॥
काहू कैं जागत सगरी निसि, काहूँ बिरह जगावत हैं ।
सुनहु सूर जोइ जोइ मन भावै, सोइ सोइ रँग उपजावत हैं ॥१३२॥

नाना रँग उपजावत स्याम । कोउ रीझति, कोउ खीझति बाम ।
काहू कैं निसि बसत बनाइ । काहू मुख छ्वै आवत जाइ ।
बहु नायक ह्वै बिलसत आपु । जाकौ सिव पावत नहिं जापु ।
ताकौं ब्रजनारी पति जानैं । कोउ आदरैं, कोउ अपमानैं ।
काहू सौं कहि आवन साँझ । रहत और नागरि घर माँझ ।
कबहुँ रैनि सब संग बिहात । सुनहु सूर ऐसे नँद-तात ॥१३३॥

अब जुवतिनि सौं प्रगटे स्याम ।
अरस परस सबहिनि यह जानी, हरि लुबधे सबहिनि कैं धाम ॥
जा दिन जाकैं भवन न आवत, सो मन मैं यह करति बिचार ।
आजु गए औरहिं काहू कैं, रिस पावति, कहि बड़े लबार ॥
यह लीला हरि कैं मन भावत, खंडित बचन कहत सुख होत ।
साँझ बोल दै जात सूर-प्रभु, ताकैं आवत होत उदोत ॥१३४॥

राधिका गेह हरि-देह-बासी । और तिय घरनि घर तनु-प्रकासी ।।
ब्रह्म पूरन द्वितिय नहीं कोऊ । राधिका सबै, हरि सबै वोऊ ॥
दीप सौं दीप जैसैं उजारी । तैसैं ही ब्रह्म घर-घर बिहारी ॥
खंडिता बचन हित यह उपाई । कबहुँ कहुँ जात, कहुँ नहिं कन्हाई ॥

जन्म कौ सुफल हरि यहै पावैं। नारि रस-बचन स्रवननि सुनावैं ॥
सूर-प्रभु अनतहीं गमन कीन्हौ। तहाँ नहिं गए जहँ बचन दीन्हौ ॥१२५॥

मध्यम मान

स्याम तिया सन्मुख नहिं जोवत।
कबहुँ नैन की कोर निहारत, कबहुं बदन पुनि गोवत ॥
मन-मन हँसत त्रसत तनु परगट, सुनत भावती बात।
खंडित बचन सुनत प्यारी के, पुलक होत सब गात।
यह सुख सूरदास कछु जानैं, प्रभु अपने कौ भाव।
श्रीराधा रिस करति, निरखि मुख तिहिं छबि पर ललचाव ॥१२६॥

नैन चपलता कहाँ गँवाई।
मोसौं कहा दुरावत नागर, नागरि रैनि जगाई ॥
ताही कैं रँग अरुन भए हैं, धनि यह सुंदरताई।
मनौ अरुन अंबुज पर बैठे, मत्त भृंग रस पाई ॥
उड़ि न सकत ऐसे मतवारे, लागत पलक जम्हाई।
सुनहु सूर यह अंग माधुरी, आलस भरे कन्हाई ॥१२७॥

यह कहि कै तिय धाम गई।
रिसनि भरी नख-सिख लौं प्यारी, जोबन-गर्ब-मई ॥
सखी चलीं गृह देखि दसा यह, हठ करि बैठी जाइ।
बोलति नहीं मान करि हरि सौं, हरि अंतर रहे आइ ॥
इहिं अंतर जुवती सब आईं जहाँ स्याम घर-द्वारैं।
प्रिया मान करि बैठि रही है, रिस करि क्रोध तुम्हारैं ॥
तुम आवत अतिहीं झहरानी, कहा करी चतुराई।
सुनत सूर यह बात चकित पिय, अतिहिं गए मुरझाई ॥१२८॥

नैंकु निकुंज कृपा करि आइयै।
अति रिस कृस ह्वै रही किसोरी, करि मनुहारि मनाइयै ॥
कर कपोल अंतर नहिं पावत, अति उसास तन ताइयै।
छूटे चिहुर बदन कुम्हिलानौ, सुहथ सँवारि बनाइयै ॥
इतनौ कहा गाँठि कौ लागत, जौ बातनि सुख पाइयै।
रूठेहिं आदर देत सयाने, यहै सूर जस गाइयै ॥१२९॥

बैठी मानिनी गहि मौन।
मनौ सिद्ध समाधि सेवत सुरनि साधे पौन ॥

अचल आसन, पलक तारी, गुफा घूँघट-भौन।
रोषही कौ ध्यान धारै टेक टारै कौन॥
अबहिँ जाइ मनाइ लीजै, अवसि कीजै गौन।
सूर के प्रभु जाइ देखौ, चित्त चौंधी जौन॥१४०॥

स्यामा तू अति स्यामहिँ भावै।
बैठत-उठत, चलत, गौ चारत, तेरी लीला गावै॥
पीत बरन लखि पीत बसन उर, पीत धातु अँग लावै।
चंद्राननि सुनि, मोर चंद्रिका, माथैँ मुकुट बनावै॥
अति अनुराग सैन संभ्रम मिलि संग परम सुख पावै।
बिछुरत तोहिँ क्वासि राधा कहि, कुंज-कुंज प्रति धावै॥
तेरौ चित्र लिखैँ, अरु निरखैँ, बासर-बिरह नसावैँ॥
सूरदास रस-रासि रसिक सौँ, अंतर क्यौँ करि आवै॥१४१॥

राधे हरि तेरौ नाम बिचारैँ।
तुम्हरेइ गुन ग्रंथित करि माला, रसना-कर सौँ टारैँ।
लोचन मूँदि ध्यान धरि, दृढ़ करि, पलक न नैँकु उघारैँ।
अंग अंग प्रति रूप माधुरी, उर तैँ नहीँ बिसारैँ॥
ऐसौ नेम तुम्हारौ पिय कैँ, कह जिय निठुर तिहारैँ।
सूर स्याम मनकाम पुरावहु, उठि चलि कहै हमारैँ॥१४२॥

कहा तुम इतनैँहि कौँ गरबानी।
जोबन रूप दिवस दसही कौ, जल अँजुरी कौ जानी।
तृन की अगिनि, धूम कौ मंदिर, ज्यौँ तुषार-कन-पानी।
रिसहीँ जरति पतंग ज्योति ज्यौँ, जानति लाभ न हानी॥
करि कछु ज्ञानऽभिमान जान दै हैऽब कौन मति ठानी।
तब धन जानि जाम जुग छाया, भूलति कहा अयानी॥
नवसै नदी चलति मरजादा, सूधियैं सिंधु समानी।
सूर इतर ऊसर के बरषैँ, थोरैँहि जल इतरानी॥१४३॥

रहि री मानिनि कान न कीजै।
यह जोबन अँजुरी कौ जल है, ज्यौँ गुपाल माँगै त्यौँ दीजै॥
छिनु छिनु घटति, बढ़ति नहिँ रजनी, ज्यौँ ज्यौँ कला चंद्र की छीजै।
पूरब पुन्य सुकृत फल तेरौ, काहैँ न रूप नैन भरि पीजै॥

सौँह करति तेरे पाँइनि की, ऐसी जियनि दसौ दिन जीजै।
सूर सु जीवन सुफल जगत कौ, बैरी बाँधि बिबस करि लीजै ॥१४४॥

राधा सखी देखि हरषानी।
आतुर स्याम पठाई याकौं, अंतरगत की जानी ॥
वह सोभा निरखत अँग अँग की, रही निहारि निहारि।
चकित देखि नागरि मुख वाकौ, तुरत सिँगारनि सारि ॥
ताहि कह्यौ सुख दै चलि हरि कौं, मैं आवति हौं पाछैं।
वैसैहि फिरी सूर के प्रभु पै, जहाँ कुंज गृह काछैं ॥१४५॥

हरषि स्याम तिय बाहँ गही।
अपनैं कर सारी अँग साजत, यह इक साध कही ॥
सकुचति नारि बदन मुसुकानी, उतकौं चितै रही।
कोक-कला परिपूरन दोऊ त्रिभुवन और नहीं ॥
कुंज-भवन सँग मिलि दोउ बैठे, सोभा एक चही।
सूर स्याम स्यामा सिर बेनी, अपनैं करनि गुही ॥१४६॥

खंजन नैन सुरँग रस माते।
अतिसय चारु बिमल, चंचल ये, पल पिंजरा न समाते ॥
बसे कहूँ सोइ बात सखी, कहि रहे इहाँ किहिं नातैं?
सोइ संज्ञा देखति औरासी, विकल उदास कला तैं ॥
चलि-चलि जात निकट स्रवननि के सकि ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके, नतरु कबै उड़ि जाते ॥१४७॥

धन्य धन्य वृषभानु-कुमारी, गिरिवरधर बस कीन्हे (री)।
जोइ जोइ साध करी पिय रस की, सो सब उनकौं दीन्हे (री) ॥
तोसी तिया और त्रिभुवन मैं, पुरुष स्याम से नाहीं (री)।
कोक-कला पूरन तुम दोऊ, अब न कहूँ हरि जाहीं (री) ॥
ऐसे बस तुम भए परस्पर, मोसौं प्रेम दुरावै (री)।
सूर सखी आनँद न सम्हारति, नागरि कंठ लगावै (री) ॥१४८॥

बड़ी मान लीला

राधेहिं स्याम देखी आइ।
महा मान दृढ़ाइ बैठी, चितै कापैं जाइ ॥
रिसहिँ रिस भई मगन सुंदरि स्याम अति अकुलात।
चकित ह्वै जकि रहे ठाढ़े, कहि न आवै बात ॥

देखि ब्याकुल नंद-नंदन, सखी करति बिचार।
सूर दोऊ मिलैं, जैसैं करौ सोइ उपचार ॥१४६॥

यह ऋतु रूसिबे की नाहीं।
बरषत मेघ मेदिनी कैं हित, प्रीतम हरषि मिलाहीं ॥
जेती बेलि ग्रीष्म ऋतु डाहीं, ते तरवर लपटाहीं।
जे जल बिनु सरिता ते पूरन, मिलन समुद्रहिं जाहीं ॥
जोबन धन है दिवस चारि कौ, ज्यौं बदरी की छाहीं।
मैं दंपति-रस-रीति कही है, समुझि चतुर मन माहीं ॥
यह चित धरि री सखी राधिका, दै दूती कौं बाहीं।
सूरदास उठि चली री प्यारी, मेरैं सँग पिय पाहीं ॥१५०॥

तोहि किन रूठन सिखई प्यारी।
नवल बैस नव नागरि स्यामा, वे नागर गिरिधारी ॥
सिगरी रैनि मनावति बीती, हा हा करि हौं हारी।
एते पर हठ छाँड़ति नाहीं, तू वृषभानु-दुलारी ॥
सरद-समय-ससि-दरस समर सर, लागै उन तन भारी।
मेटहु त्रास दिखाइ बदन-बिधु, सूर स्याम हितकारी ॥१५१॥

हरि-मुख राधा-राधा बानी।
धरिनी परे अचेत नहीं सुधि, सखी देखि अकुलानी ॥
बासर गयौ, रैनि इक बीती, बिनु भोजन बिनु पानी।
बाहँ पकरि तब सखिनि जगायौ, धनि-धनि सारँगपानी ॥
ह्याँ तुम बिबस गए हौ ऐसे, ह्वाँ तौ वै बिबसानी।
सूर बने दोउ नारि पुरुष तुम, दुहुँ की अकथ कहानी ॥१५२॥

सुनि री सयानी तिय रूसिबे कौ नेम लियौ, पावस दिननि
कोऊ ऐसौ है करत री।
दिसि-दिसि घटा उठी मिलि री पिया सौं रूठी, निडर हियौ है
तेरौ नैंकु न डरत री ॥
चलिए री मेरी प्यारी, मोकौं मान देन हारी, प्रानहुँ तैं प्यारे पति
धीर न धरत री।
सूरदास प्रभु तोहिं दियौ चाहै हित-बित, हँसि क्यौं न मिलै तेरौ
नेम है टरत री ॥१५३॥

बेरस कीजै नाहिँ भामिनी, रस मैँ रिस की बात।
हौँ पठई तोहिँ लेन साँवरैँ, तोहिँ बिनु कछु न सुहात॥
हा हा करि तेरे पाइँ परति हौँ, छिनु छिनु निसि घटि जात।
सूर स्याम तेरौ मग जोवत, अति आतुर अकुलात॥१५४॥

माधौ, तहाँ बुलाई राधे, जमुना-निकट सुसीतल छहियाँ।
आछी नीकी कुसुँभी सारी गोरैँ तन, चलि हरि पिय पहियाँ॥
दूती एक गई मोहिनि पै, जाइ कह्यौ यह प्यारी कहियाँ।
सूरदास सुनि चतुर राधिका, स्याम रैनि बृंदावन महियाँ॥१५५॥

झूँमक सारी तन गोरैँ हो।
जगमग रह्यौ जराइ कौ टीकौ, छबि की उठति झकोरैँ हो॥
रत्न जटित के सुभग तरयौना, मनहुँ जाति रबि भोरैँ हो।
दुलरी कंठ निरखि पिय इक टक, दृग भए रहैँ चकोरै हो।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे मिलन कौँ, रीझि रीझि तृन तोरैँ हो॥१५६॥

राधिका बस्य करि स्याम पाए।
बिरह गयो दूरि, जिय हरष हरि कै भयौ, सहस मुख निगम जिहिँ नेति गायौ॥
मान तजि मानिनी मैन कौ बल हरयौ, करत तनु कंत जो त्रास भारी।
कोक-बिद्या निपुन, स्याम स्यामा बिपुल, कुंज-गृह द्वार ठाढ़े मुरारी॥
भक्त-हित-हेत अवतारि लीला करत, रह प्रभु तहाँ निजु ध्यान जाकै।
प्रगट प्रभु-सूर ब्रजनारि कैँ हित बँधे, देत मन-काम-फल संग ताकैँ॥१५७॥

वसंतोत्सव

झूलत स्याम स्यामा संग।
निरखि दंपति अंग सोभा, लजत कोटि अनंग॥
मंद त्रिविध समीर सीतल, अंग अंग सुगंध।
मचत उड़त सुबास सँग, मन रहे मधुकर बंध॥
तैसियै जमुना सुभग जहँ, रच्यौ रंग हिँडोल।
तैसियै बृज-बधू बनि, हरि चितै लोचन कोर॥

तैसोई बृंदा-बिपिन-घन-कुँज-द्वार-बिहार ।
बिपुल गोपी, बिपुल बन गृह, रवन नंदकुमार ॥
नित्य लीला, नित्य आनँद, नित्य मंगल गान ।
सूर सुर मुनि मुखनि अस्तुति, धन्य गोपी कान्ह ॥१२८॥

नित्य धाम बृंदाबन स्याम । नित्य रूप राधा ब्रज-बाम ॥
नित्य रास, जल नित्य बिहार । नित्य मान, खंडिताऽभिसार ॥
ब्रह्म-रूप येई करतार । करन हरन त्रिभुवन येइ सार ॥
नित्य कुंज-सुख नित्य हिँडोर । नित्यहिँ त्रिविध-समीर झकोर ॥
सदा बसंत रहत जहँ बास । सदा हर्ष, जहँ नहीँ उदास ॥
कोकिल कीर सदा तहँ रोर । सदा रूप मन्मथ चित-चोर ॥
बिबध सुमन बन फूले डार । उन्मत मधुकर भ्रमत अपार ॥
नव पल्लव बन सोभा एक । बिहरत हरि सँग सखी अनेक ॥
कुहू कुहू कोकिला सुनाई । सुनि सुनि नारि परम हरषाईँ ॥
बार बार सो हरिहिँ सुनावतिँ । ऋतु बसंत आयौ समुझावतिँ ॥
फागु-चरित-रस साध हमारैँ । खेलहिं सब मिलि संग तुम्हारैँ ॥
सुनि सुनि सूर स्याम मुसुकाने । ऋतु बसंत आयौ हरषाने ॥१२९॥

पिय प्यारी खेलैँ जमुन-तीर । भरि केसरि कुमकुम अरु अबीर ।
घसि मृगमद चंदन अरु गुलाल । रँग भीने अरगज बस्त्र माल ॥
कूजत कोकिल कल हँस मोर । ललितादिक स्यामा एक ओर ॥
बृंदादिक मोहन लई जोर । बाजै ताल मृदंग रबाब घोर ॥
प्रभु हँसि कै गेँदुक दई चलाइ । मुख पट दै राधा गई बचाइ ॥
ललिता पट-मोहन गह्यौ धाइ । पीतांबर मुरली लई छिँड़ाइ ॥
हौँ सपथ करौँ छाँड़ौँ न तोहि । स्यामा जू आज्ञा दई मोहिँ ॥
इक निज सहचरि आई बसीठि । सुनि री ललिता तू भई ढीठि ॥
पट छाँड़ि दियौ तब नव किसोर । छबि रीझि सूर तृन दियौ तोर ॥१३०॥

तेरैँ आवैँगे आजु सखी हरि, खेलन कौँ फागु री ।
सगुन सँदेसौ हौँ सुन्यौँ, तेरैँ आँगन बोलै काग री ॥
मदनमोहन तेरैँ बस माई, सुनि राधे बड़भाग री ।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, का सोवै, उठि जाग री ॥
चोवा चंदन लै कुमकुम अरु केसरि पैयाँ लाग री ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौँ, राधा अचल सुहाग री ॥१३१॥

हरि सँग खेलति हैं सब फाग ।
इहिं मिस करति प्रगट गोपी, उर-अंतर कौ अनुराग ॥
सारी पहिरि सुरँग, कसि कंचुकि, काजर दै-दै नैन ।
बनि-बनि निकसि-निकसि भईं ठाढ़ी, सुनि माधौ के बैन ॥
डफ, बाँसुरी रुंज अरु महुअरि, बाजत ताल मृदंग ।
अति आनंद मनोहर बानी, गावत उठति तरंग ॥
एक कोध गोबिंद ग्वाल सब, एक कोध ब्रज-नारि ।
छाँड़ि सकुच सब देतिँ परस्पर, अपनी भाई गारि ॥
मिलि दस पाँच अली चली कृष्नहिं, गहि लावतिँ अचकाइ ।
भरि अरगजा अबीर कनक-घट, देतिँ सीस तैं नाइ ॥
छिरकतिँ सखी कुमकुमा केसरि, भुरकतिँ बंदन धूरि ।
सोभित है तनु साँझ-समै-घन, आए हैं मनु पूरि ॥
दसहूँ दिसा भयौ परिपूरन, सूर सुरंग प्रमोद ।
सुर-बिमान कौतूहल भूले, निरखत स्याम-बिनोद ॥१६२॥
नंद नँदन बृषभानु-किसोरी, मोहन राधा खेलत होरी ।
श्रीबृंदाबन अतिहिं उजागर, बरन बरन नव दंपति भोरी ॥
एकनि कर है अगरु कुमकुमा, एकनि कर केसरि लै घोरी ।
एक अर्थ सौं भाव दिखावति, नाचति तरुनि बाल बृध भोरी ॥
स्यामा उतहिं सकल ब्रज-बनिता, इतहिं स्याम रस रूप लहौ री ।
कंचन की पिचकारी छूटति, छिरकत ज्यौं सचुपावैं गोरी ॥
अतिहिं ग्वाल दधि गोरस माते, गारी देत कहौ न करौ री ।
करत दुहाई नंदराइ की, लै जु गयौ कल बल छल जोरी ॥
झुंडनि जोरि रही चंद्रावलि, गोकुल मैं कछु खेल मच्यौ री ।
सूरदास-प्रभु फगुआ दीजै, चिरजीवौ राधा बर जोरी ॥१६३॥
गोकुलनाथ बिराजत डोल ।
संग लिये बृषभानु-नंदिनी, पहिरे नील निचोल ॥
कंचन खचित लाल मनि मोती, हीरा जटित अमोल ।
झुलवहिँ जूथ मिलै ब्रज-सुंदरि, हरषित करतिँ कलोल ॥
खेलतिँ, हँसतिँ, परस्पर गावतिँ, बोलतिँ मीठे बोल ।
सूरदास-स्वामी, पिय-प्यारी, झूलत हैं झकझोल ॥१६४॥

मथुरा गमन

अक्रूर ब्रज आगमन

कंस नृपति अक्रूर बुलाये।
बैठि इकंत मंत्र दृढ़ कीन्हौ, दोऊ बंधु मँगाये॥
कहूँ मल्ल, कहुँ गज दै राखे, कहूँ धनुष, कहुँ बीर।
नंद महर के बालक मेरैं करषत रहत सरीर॥
उनहिँ बुलाइ बीच ही मारौं, नगर न आवन पावैं।
सूर सुनत अक्रूर कहत, नृप मन-मन मौज बढ़ावैं॥१॥

उत नंदहिँ सपनौ भयौ, हरि कहूँ हिराने।
बल-मोहन कोउ लै गयौ, सुनि कै बिलखाने॥
ग्वाल सखा रोवत कहैं, हरि तौ कहुँ नाहीं।
संगहि सँग खेलत रहे, यह कहि पछिताहीं॥
दूत एक संग लै गयौ, बलराम कन्हाई।
कहा ठगौरी सी करी, मोहिनी लगाई॥
वाही के दोउ ह्वै गए, हम देखत ठाढ़े।
सूरज प्रभु वै निठुर ह्वै, अतिहीं गए गाढ़े॥२॥

सुफलक-सुत हरि दरसन पायौ।
रहि न सक्यौ रथ पर सुख-ब्याकुल, भयौ वहै मन भायौ॥
भू पर दौरि निकट हरि आयौ, चरननि चित्त लगायौ।
पुलक अंग, लोचन जल-धारा, श्रीपद सिर परसायौ॥
कृपासिधु करि कृपा मिले हँसि, लियौ भक्त उर लाइ।
सूरदास यह सुख सोइ जानै, कहैं कहा मैं गाइ॥३॥

चलन चलन स्याम कहत, लैन कोउ आयौ।
नंद-भवन भनक सुनी, कंस कहि पठायौ॥
ब्रज की नारि गृह बिसारि, ब्याकुल उठि धाईं।
समाचार बूझन कौं, आतुर ह्वै आईं॥
प्रीति जानि, हेत मानि, बिलखि बदन ठाढ़ीं।
मानहु वै अति विचित्र, चित्र लिखी काढ़ीं॥

ऐसी गति ठौर-ठौर, कहत न बनि आवै।
सूर स्याम बिछुरैं, दुख-बिरह काहि भावै ॥४॥

चलत जानि चितवतिँ ब्रज-जुबती, मानहु लिखीँ चितेरैँ।
जहाँ सु तहाँ एकटक रहि गईँ, फिरत न लोचन फेरैँ॥
बिसरि गई गति भाँति देह की, सुनतिँ न स्रवननि टेरैँ।
मिलि जु गईँ मानौ पै पानी, निबरतिँ नहीँ निबेरैँ॥
लागीँ संग मतंग मत्त ज्यौँ, घिरतिँ न कैसैँहु घेरैँ।
सूर प्रेम-आसा अंकुस जिय, वै नहिँ इत-उत हेरैँ ॥५॥

(मेरे) कमलनैन प्राननि तैँ प्यारे।
इन्हैँ कहा मधुपुरी पठाऊँ, राम कृष्न दोऊ जन बारे॥
जसुदा कहै सुनौ सुफलक-सुत मैँ इन बहुत दुषनि सौँ पारे।
ये कहा जानैँ राज सभा कौँ, ये गुरुजन बिप्रहुँ न जुहारे॥
मथुरा असुर समूह बसत है, कर-कृपान, जोधा हत्यारे।
सूरदास ये लरिका दोऊ, इन कब देखे मल्ल-अखारे ॥६॥

जसुमति अति हीँ भई बिहाल।
सुफलक सुत यह तुमहिँ बूझियत, हरत हमारे बाल!
ये दोउ भैया जीवन हमरे, कहति रोहिनी रोइ।
धरनी गिरति, उठति अति ब्याकुल कहि राखत नहिँ कोइ॥
निठुर भए जब तैँ यह आयौ, घरहू आवत नाहिँ।
सूर कहा नृप पास तुम्हारौ, हम तुम बिनु मरि जाहिँ ॥७॥

सुने हैँ स्याम मधुपुरी जात।
सकुचनि कहि न सकति काहू सौँ, गुप्त हृदय की बात॥
संकित बचन अनागत कोऊ, कहि जु गयौ अधरात।
नीँद न परै, घटै नहिँ रजनी, कब उठि देखौँ प्रात॥
नंद नँदन तौ ऐसै लागे, ज्यौं जल पुरइनि पात।
सूर स्याम सँग तैँ बिछुरत हैँ, कब ऐहैँ कुसलात ॥८॥

मथुरा प्रयाण

अब नँद गाइ लेहु सँभारि।
जो तुम्हारैँ आनि बिलमे, दिन चराई चारि॥
दूध दही खवाइ कीन्हे, बड़े अति प्रतिपारि।
ये तुम्हारे गुन हृदय तैँ, डारिहौँ न बिसारि॥

मातु जसुदा द्वार ठाढ़ी, चलै आँसू ढारि।
कह्यौ रहियौ सुचित सौं, यह ज्ञान गुर उर धारि॥
कौन सुत, को पिता-माता, देखि हृदै बिचारि।
सूर के प्रभु गवन कीन्हौ, कपट कागद फारि॥९॥

जबहीं रथ अक्रूर चढ़े।
तब रसना हरि नाम भाषि कै, लोचन नीर बढ़े॥
महरि पुत्र कहि सोर लगायौ, तरु ज्यौं धरनि लुटाइ।
देखतिँ नारि चित्र सी ठाढ़ी, चितये कुँवर कन्हाइ॥
इतनैँहि मैं सुख दियौ सबनि कौं, दीन्ही अवधि बताइ।
तनक हँसे, हरि मन जुवतिन कौं, निठुर ठगौरी लाइ॥
बोलतिँ नहीं रहीं सब ठाढ़ी, स्याम-ठगीं ब्रज-नारि।
सूर तुरत मधुबन पग धारे, धरनी के हितकारि॥१०॥

रहीं जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ीं।
हरि के चलत देखियत ऐसी, मनहु चित्र लिखि काढ़ी॥
सूखे बदन, स्रवनि नैननि तैं जल-धारा उर बाढ़ी।
कंधनि बाँह धरे चितवतिँ मनु, द्रुमनि बेलि दव दाढ़ी॥
नीरस करि छाँड़ी सुफलक सुत, जैसें दूध बिनु साढ़ी।
सूरदास अक्रूर कृपा तैं सही बिपति तन गाढ़ी॥११॥

बिछुरत श्री ब्रजराज आजु, इनि नैननि की परतीति गई।
उड़ि न गए हरि संग तबहिं तैं, ह्वै न गए सखि स्याममई॥
रूप रसिक लालची कहावत, सो करनी कछुवै न भई।
साँचे क्रूर कुटिल ये लोचन, वृथा मीन-छबि छीन लई॥
अब काहैं जल-मोचत, सोचत, समौ गए तैं सूल नई।
सूरदास याही तैं जड़ भए, पलकनिहूँ हठि दगा दई॥१२॥

आजु रैनि नहिं नींद परी।
जागत गिनत गगन के तारे, रसना रटत गोविंद हरी॥
वह चितवनि, वह रथ की बैठनि, जब अक्रूर की बाँहँ गही।
चितवति रही ठगीसी ठाढ़ी, कहि न सकति कछु काम दही॥
इते मान व्याकुल भइ सजनी, आरजपंथहु तैं बिडरी।
सूरदास-प्रभु जहाँ सिधारे, कितिक दूर मथुरा नगरी॥१३॥

री मोहिँ भवन भयानक लागै, माई स्याम बिना ।
काहि जाइ देखौं भरि लोचन, जसुमति कैं अँगना ।।
को संकट सहाइ करिबे कौं, मेटै बिघन घना ।
लै गयौ क्रूर अक्रूर साँवरौ, ब्रज कौ प्रानधना ।।
काहि उठाइ गोद करि लीजै, करि करि मन मगना ।
सूरदास मोहन दरसन बिनु, सुख संपति सपना ।।१४।।

कहा हौं ऐसै ही मरि जैहौं ।
इहिँ आँगन गोपाल लाल कौ, कबहुँ कि कनिया लैहौं ।।
कब वह मुख बहुरौ देखौंगी, कह वैसो सचुपैहौं ।
कब मोपै माखन माँगैंगे, कब रोटी धरि दैहौं ।।
मिलन आस तन-प्रान रहत हैं, दिन दस मारग ज्वैहौं ।
जौ न सूर अइहैं इते पर, जाइ जमुन धँसि लैहौं ।।१५।।

मथुरा प्रवेश तथा कंस वध

बूझत हैं अक्रूरहिँ स्याम ।
तरनि किरनि महलनि पर झाईं, इहै मधुपुरी नाम ।।
स्रवननि सुनत रहत हे जाकौं, सो दरसन भए नैन ।
कंचन कोट कँगूरनि की छबि, मानौ बैठे मैन ।।
उपवन बन्यौ चहूँघा पुर के, अतिहीं मोकौं भावत ।
सूर स्याम बलरामहिँ पुनि पुनि, कर पल्लवनि दिखावत ।।१६।।

मथुरा हरषित आजु भई ।
ज्यौं जुवती पति आवत सुनि कैं, पुलकित अंग मई ।।
नवसत साजि सिँगार सुंदरी, आतुर पंथ निहारति ।
उड़ति धुजा तनु सुरति बिसारे, अंचल नहीँ सँभारति ।।
उरज प्रगट महलनि पर कलसा, लसति पास बन सारी ।
ऊँचे अटनि छाज की सोभा, सीस उचाइ निहारी ।।
जालरंध्र इकटक मग जोवति, किंकिनि कंचन दुर्ग ।
बेनी लसति कहाँ छबि ऐसी, महलनि चित्रे उर्ग ।।
बाजत नगर बाजने जहँ तहँ, और बजत घरियार ।
सूर स्याम बनिता ज्यौं चंचल, पग नूपुर झनकार ।।१७।।

मथुरा पुर मैं सोर पर्‌यौ ।
गरजत कंस बंस सब साजे, मुख कौ नीर हर्‌यौ ।।

पीरौ भयौ, फेफरी अधरनि, हिरदै अतिहि डर्‌यौ ।
नंद महर के सुत दोउ सुनि कै, नारिनि हर्ष भर्‌यौ ॥
कोउ महलनि पर कोउ छज्जनि पर, कुल लज्जा न कर्‌यौ ।
कोउ धाईं पुर गलिन गलिन ह्वै, काम-धाम बिसर्‌यौ ॥
इंदु बदन नव जलद सुभग तनु, दोउ खग नयन कर्‌यो ।
सूर स्याम देखत पुर-नारी, उर-उर प्रेम भर्‌यौ ॥१८॥

ढोटा नंद कौ यह री ।
नाहिं जानति बसत ब्रज मैं, प्रगट गोकुल री ॥
धर्‌यौ गिरिवर बाम कर जिहिं, सोइ है यह री ।
दैत्य सब इनहीं सँहारे, आपु-भुज-बल री ॥
ब्रज-घरनि जो करत चोरी, खात माखन री ।
नंद-घरनी जाहिं बाँध्यौ, अजिर ऊखल री ॥
सुरभि-ठान लिये बन तैं आवत, सबहि गुन इन री ।
सूर-प्रभु ये सबहि लायक, कंस डरै जिन री ॥१९॥

भए सखि नैन सनाथ हमारे ।
मदनगोपाल देखतहिं सजनी, सब दुख सोक बिसारे ॥
पठये हे सुफलक-सुत गोकुल, लैन सो इहाँ सिधारे ।
मल्ल जुद्ध प्रति कंस कुटिल मति, छल करि इहाँ हँकारे ॥
मुष्टिक अरु चानूर सैल सम, सुनियत हैं अति भारे ।
कोमल कमल समान देखियत, ये जसुमति के बारे ॥
होवे जीति विधाता इनकी, करहु सहाइ सबारे ।
सूरदास चिर जियहु दुष्ट दलि, दोऊ नंद-दुलारे ॥२०॥

धनुषसाला चले नंदलाला ।
सखा लिए संग प्रभु रंग नाना करत, देव नर कोउ न लखि सकत ख्याला ॥
नृपति के रजक सौं भेंट मगमैं भई, कह्यौ दै बसनहम पहिरि जाहीं ।
बसन ये नृपति के जासु प्रजा तुम, ये बचन कहत मन डरत नाहीं ॥
एक ही मुष्टिका प्रान ताके गए, लए सब बसन कछु सखनि दीन्हे ।
आइ दरजी गयौ बोलि ताकौं लयौ, सुभग अँग साजि उन विनय कीन्हे ॥

पुनि सुदामा कह्यौ गेह मम अति निकट, कृपा करि तहाँ हरि चरन धारे।
धोइ पद-कमल पुनि हार आगैं धरे, भक्ति दै, तासु सब काज सारे॥
लिए चंदन बहुरि आनि कुबिजा मिली, स्याम अँग लेप कीन्हौ बनाई।
रीझि तिहिँ रूप दियौ, अंग सूधौ कियौ, बचन सुभ भाषि निज गृह पठाई॥
पुनि गए तहाँ जहँ धनुष, बोले सुभट, हँसि जनि मन करौ बन-बिहारी।
सूर प्रभु छुवत धनु टूटि धरनी परयौ, सोर सुनि कंस भयौ अमित भारी॥२१॥

सुनिहि महावत बात हमारी।
बार-बार संकर्षन भाषत, लेत नहिँ ह्याँ तैँ गज टारी॥
मेरौ कह्यौ मानि रे मूरख, गज समेत तोहिँ डारौँ मारी।
द्वारैँ खरे रहे हैँ कबके, जनि रे गर्व करहि जिय भारी॥
न्यारौ करि गयंद तू अजहूँ, जान देहि कै आपु सँभारी।
सूरदास-प्रभु दुष्ट निकंदन, धरनी भार उतारनकारी॥२२॥

तब रिस कियौ महावत भारि।
जौ नहिँ आज मारिहैँ इनकौँ, कंस डारिहैं मारि॥
आँकुस राखि कुंभ पर करष्यौ, हलधर उठे हँकारि।
धायौ पवनहुँ तैँ अति आतुर, धरनी दंत खँभारि॥
तब हरि पूँछ गह्यौ दच्छिन कर, कँबुक फेरि सिर वारि।
पटक्यौ भूमि, फेरि नहिँ मटक्यौ, लीन्हौ दंत उपारि॥
दुहुँ कर दुरद दसन इक इक छबि, सो निरखतिँ पुरनारि।
सूरदास प्रभु सुर सुखदायक, मार्‌यौ नाग पछारि॥२३॥

एक सुत नंद अहीर के।
मार्‌यौ रजक बसन सब लूटे, संग सखा बल वीर के॥
काँधे धरि दोऊ जन आए, दंत कुबलयापीर के।
पसु पति मंडल मध्य मनौ, मनि छीरधि नीरधि नीर के॥
उड़ि आए तजि हंस मात मनु, मानसरोवर तीर के।
सूरदास-प्रभु ताप निवारन, हरन संत दुख पीर के॥२४॥

सुनौ हो बीर मुष्टिक चानूर सबै, हमहिँ नृप पास नहिँ जान दैहौ।
घेरि राखे हमैँ, नहीँ बूझै तुम्हैँ, जगत मैँ कहा उपहास लैहौ॥
सबै यहै कैहै भली मति तुम पै है, नंद के कुँवर दोउ मल्ल मारे।
यहै जस लेहुगे, जान नहिँ देहुगे, खोजहीँ परे अब तुम हमारे॥

हम नहीँ कहैँ तुम मनहिँ जौ यह बसी, कहत हौ कहा तौ करौ तैसी ।
सूर हम तन निरखि देखियै आपुकौँ, बात तुम मनहिँ यह बसी नैसी ॥२५॥
गह्यौ कर-स्याम भुज मल्ल अपने धाइ, झटकि लीन्हौ तुरत पटकि धरनी ।
भटकि अति सब्द भयौ, खटक नृप कै हियैँ, अटकि प्राननि परयौ चटक करनी ॥
लटकि निरखन लग्यौ, मटक सब भूलि गइ, हटक करि देउँ इहै लागी ।
झटकि कुंडल निरखि, अटल ह्वै कै गयौ, गटकि सिल सौँ रह्यौ मीच जागी ॥
मल्ल जे जे रहे सबै मारे तुरत, असुर जोधा सबै तेउ सँहारे ।
धाइ दूतनि कह्यौ, कोउ न रह्यौ, सूर बलराम हरि सब पछारे ॥२६॥

नवल नंद-नंदन रंगभूमि राजैँ

स्याम तन, पीत पट मनौ घन मैँ तड़ित, मोर के पंख माथैँ बिराजैँ ॥
स्रवन कुंडल झलक मनौ चपला चमक, दग अरुन कमल दल से बिसाला ।
भौँहैँ सुंदर धनुष, बान सम सिर तिलक, केस कुंचित सोह भृंग माला ।
हृदय बनमाल, नूपुर चरन लाल, चलत गज चाल, अति बुधि बिराजैँ ।
हंस मानौ मानसर अरुन अंबुज सुभर निरखि आनंद करि हरषि गाजैँ ॥
कुबलया मारि चानूर मुष्टिक पटकि, बीर दोउ कंध गज-दंत धारे ।
जाइ पहुँचे तहाँ कंस बैठ्यौ जहाँ, गए अवसान प्रभु के निहारे ॥
ढाल तरवारि आगैँ धरी रहि गई, महल कौ पंथ खोजत न पावत ।
लात कैँ लगत सिर तैँ गयौ मुकुट गिरि, केस गहि लै चले हरि खसावत ॥
चारि भुज धारि तेहिँ चारु दरसन दियौ, चारि आयुध चहूँ हाथ लीन्हे ।
असुर तजि प्रान निरवान पद कौँ गयौ, बिमल मति भई प्रभु रूप चीन्हे ॥
देखि यह पुहुप वर्षा करी सुरनि मिलि, सिद्ध गंधर्व जय धुनि सुनाई ।
सूर प्रभु अगम महिमा न कछु कहि परति, सुरनि की गति तुरत
असुर पाई ॥२७॥

उग्रसेन कौँ दियौ हरि राज ।

आनँद मगन सकल पुरवासी, चँवर डुलावत श्री ब्रजराज ॥
जहाँ तहाँ तैँ जादव आए, कंस डरनि जे गए पराइ ।
मागध सूत करत सब अस्तुति, जै जै जै श्री जादवराइ ॥
जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, भए बलि के द्वारैँ प्रतिहार ।
सूरदास प्रभु अज अबिनासी, भक्तनि हेत लेत अवतार ॥२८॥

तब बसुदेव हरषित गात ।

स्याम रामहिँ कंठ लाए, हरषि देवै मात ॥

अमर दिवि दुंदुभी दीन्ही, भयौ जैजैकार ।
दुष्ट दलि सुख दियौ संतनि, ये बसुदेव कुमार ॥
दुख गयौ बहि हर्ष पूरन, नगर के नर-नारि ।
भयौ पूरब फल सँपूरन, लह्यौ सुत दैत्यारि ॥
तुरत बिप्रनि बोलि पठये, धेनु कोटि मँगाइ ।
सूर के प्रभु ब्रह्मपूरन, पाइ हरषे राइ ॥२६॥

बसुद्यौ कुल-ब्यौहार बिचारि ।
हरि हलधर कौं दियौ जनेऊ, करि षटरस ज्यौनारि ॥
जाके स्वास-उसाँस लेत मैं प्रगट भए श्रुति चार ।
तिन गायत्री सुनी गर्ग सौं प्रभु गति अगम अपार ॥
बिधि सौं धेनु दई बहु बिप्रनि, सहित सर्वऽलंकार ।
जदुकुल भयौ परम कौतूहल, जहँ तहँ गावतिं नार ॥
मातु देवकी परम मुदित ह्वै देति निछावरि वारि ।
सूरदास की यहै आसिषा, चिर जियौ नंद-कुमार ॥३०॥

कुबरी पूरब तप करि राख्यौ ।
आए स्याम भवन ताही कैं, नृपति महल सब नाख्यौ ॥
प्रथमहिं धनुष तोरि आवत हे, बीच मिली यह धाइ ।
तिहिं अनुराग बस्य भए ताकैं, सो हित कह्यौ न जाइ ॥
देव-काज करि आवन कहि गए, दीन्हौ रूप अपार ।
कृपा दृष्टि चितवतहीं श्री भइ, निगम न पावत पार ॥
हम तैं दूरि दीन के पाछैं, ऐसे दीनदयाल ।
सूर सुरनि करि काज तुरतहीं, आवत तहाँ गोपाल ॥३१॥

कियौ सुर-काज गृह चले ताकैं ।
पुरुष औ नारि कौ भेद भेदा नहीं, कुलिन अकुलिन अवतर्यौ काकैं ॥
दास दासी कौन, प्रभु निप्रभु कौन है, अखिल ब्रह्मांड इक रोम जाकैं ।
भाव साँचौ हृदय जहाँ, हरि तहाँ हैं, कृपा प्रभु की माथ भाग वाकैं ॥
दास दासी स्याम भजनहु तैं जिये, रमा सम भई सो कृष्न-दासी ।
मिली वह सूर-प्रभु प्रेम चंदन चरचि, कियौ जय कोटि, तप कोटि कासी ॥३२॥

मथुरा दिन-दिन अधिक बिराजै ।
तेज, प्रताप राइ केसौ कैं, तीनि लोक पर गाजै ॥

पग पग तीरथ कोटिक राजैं, मधिविश्रांत बिराजै।
करि अस्नान प्रात जमुना कौ, जनम मरन भय भाजै॥
बिट्ठल बिपुल बिनोद बिहारन, ब्रज कौ बसिबौ छाजै।
सूरदास सेवक उनहीं कौ, कृपा सु गिरिधर राजै॥३३॥

नंद का ब्रज प्रत्यागमन

बेगि ब्रज कौं फिरिए नँदराइ।
हमहिं तुमहिं सुत तात कौ नातौ, और परयौ है आइ॥
बहुत कियौ प्रतिपाल हमारौ, सो नहिं जी तैं जाइ।
जहाँ रहैं तहँ तहाँ तुम्हारे, डारयौ जनि बिसराइ॥
जननि जसोदा भेंटि सखा सब, मिलियौ कंठ लगाइ।
साधु समाज निगम जिनके गुन, मेरैं गनि न सिराइँ॥
माया मोह मिलन अरु बिछुरन, ऐसैं ही जग जाइ।
सूर स्याम के निठुर बचन सुनि, रहे नैन जल छाइ॥३४॥

नंद बिदा होइ घोष सिधारौ।
बिछुरन मिलन रच्यौ बिधि ऐसौ, यह संकोच निवारौ॥
कहियौ जाइ जसोदा आगैं, नैंन नीर जनि ढारौ।
सेवा करी जानि सुत अपनौ, कियौ प्रतिपाल हमारौ॥
हमैं तुम्हैं अंतर कछु नाहीं, तुम जिय ज्ञान बिचारौ।
सूरदास प्रभु यह बिनती है, उर जनि प्रीति बिसारौ॥३५॥

गोपालराइ हौं न चरन तजि जैहौं।
तुमहिं छाँड़ि मधुबन मेरे मोहन, कहा जाइ ब्रज लैहौं॥
कैहौं कहा जाइ जसुमत सौं, जब सन्मुख उठि ऐहै।
प्रात समय दधि मथत छाँड़ि कै, काहि कलेऊ देहै॥
बारह बरस दियौ हम ढीठौ, यह प्रताप बिनु जाने।
अब तुम प्रगट भए बसुद्यौ-सुत गर्ग बचन परमाने॥
रिपु हति काज सबै कत कीन्हौ, कत आपदा बिनासी।
डारि न दियौ कमल कर तैं गिरि, दबि मरते ब्रजवासी॥
बासर संग सखा सब लीन्हे, टेरि न धेनु चरैहौ।
क्यौं रहिहैं मेरे प्रान दरस बिनु, जब संध्या नहिं ऐहौ॥
ऊरध स्वाँस चरन गति थाकी, नैन नीर मरहाइ।
सूर नंद बिछुरत की बेदनि, मो पै कही न जाइ॥३६॥

(मेरे) मोहन तुमहिँ बिना नहिँ जैहौँ ।
महरि दौरि आगे जब ऐहै, कहा ताहि मैं कैहौँ ॥
माखन मथि राख्यौ ह्वैहै तुम हेत, चलौ मेरे बारे ।
निठुर भए मधुपुरी आइ कै, काहैं असुरनि मारे ॥
सुख पायौ बसुदेव देवकी, अरु सुख सुरनि दियौ ।
यहै कहत नँद गोप सखा सब, बिदरन चहत हियौ ॥
तब माया जड़ता उपजाई, निठुर भए जदुराइ ।
सूर नंद परमोधि पठाए, निठुर ठगौरी लाइ ॥३७॥

उठे कहि माधौ इतनी बात ।
जिते मान सेवा तुम कीन्ही, बदलौ दयौ न जात ॥
पुत्र हेत प्रतिपार कियौ तुम, जैसैं जननी तात ।
गोकुल बसत हँसत खेलत मोहिं, द्यौस न जान्यौ जात ॥
होहु बिदा घर जाहु गुसाईं, माने रहियौ नात ।
ठाढ़ौ थक्यौ उतर नहि आवै, लोचन जल न समात ॥
भए बल-हीन खीन तन कंपित, ज्यौं बयारि बस पात ।
धकधकात हिय बहुत सूर उठि, चले नंद पछितात ॥३८॥

बार-बार मग जोवति माता । ब्याकुल बिनु मोहन बल-भ्राता ॥
आवत देखि गोप नँद साथा । बिवि बालक बिनु भई अनाथा ॥
धाई धेनु बच्छ ज्यौं ऐसैं । माखन बिना रहे धौं कैसैं ॥
ब्रज-नारी हरषित सब धाईं । महरि जहाँ-तहँ आतुर आईं ॥
हरषित मातु रोहिनी आई । उर भरि हलधर लेउँ कन्हाई ॥
देखे नंद गोप सब देखे । बल मोहन कौं तहाँ न पेखे ॥
आतुर मिलन-काज ब्रज-नारी । सूर मधुपुरी रहे मुरारी ॥३९॥

उलटि पग कैसैं दीन्हौ नंद ।
छाँड़े कहाँ उभै सुत मोहन, धिक जीवन मतिमंद ॥
कै तुम धन-जोबन-मद माते, कै तुम छूटे बंद ।
सुफलक-सुत बैरी भयौ हमकौं, लै गयौ आनँदकंद ॥
राम कृष्न बिनु कैसैं जीजै, कठिन प्रीति कैं फंद ।
सूरदास मैं भई अभागिन, तुम बिनु गोकुलचंद ॥४०॥

दोउ ढोटा गोकुल-नायक मेरे ।
काहैं नंद छाँड़ि तुम आए, प्रान-जिवन सब केरे ॥

तिनकैं जात बहुत दुख पायौ, रोर परी इहिं खेरे ।
गोसुत गाइ फिरत हैं दहुँ दिसि, वै न चरैं तृन घेरे ॥
प्रीति न करी राम दसरथ की, प्रान तजे बिनु हेरैं ।
सूर नंद सौं कहति जसोदा, प्रबल पाप सब मेरैं ॥४१॥

नंद कहौ हो कहँ छाँड़े हरि ।
लै जु गए जैसैं तुम ह्याँतैं, ल्याए किन वैसहिं आगैं धरि ॥
पालि पोषि मैं किए सयाने, जिन मारे गज मल्ल कंस अरि ।
अब भए तात देवकी बसुद्यौ, बाँह पकरि ल्याये न न्याव करि ॥
देखौ दूध दही घृत माखन, मैं राखे सब वैसैं ही धरि ।
अब को खाइ नंदनंदन बिनु, गोकुल मनि मथुरा जु गए हरि ॥
श्रीमुख देखन कौं ब्रजवासी, रहे ते घर आँगन मेरैं भरि ।
सूरदास प्रभु के जु सँदेसे, कहे महर आँसू गदगद करि ॥४२॥

जसुदा कान्ह कान्ह कै बूझै ।
फूटि न गईं तुम्हारी चारौ, कैसैं मारग सूझै ॥
इक तौ जरी जात बिनु देखैं, अब तुम दीन्हौ फूँकि ।
यह छतिया मेरे कान्ह कुँवर बिनु, फटि न भई द्वै टूक ॥
धिक तुम धिक ये चरन अहो पति, अध बोलत उठि धाए ।
सूर स्याम बिछुरन की हम पै, दैन बधाई आए ॥४३॥

नंद हरि तुमसौं कहा कह्यौ ।
सुनि सुनि निठुर बचन मोहन के, कैसैं हृदय रह्यौ ॥
छाँड़ि सनेह चले मंदिर कत, दौरि न चरन गह्यौ ।
दरकि न गई बज्र की छाती, कत यह सूल सह्यौ ॥
सुरति करत मोहन की बातैं, नैननि नीर बह्यौ ।
सुधि न रही अति गलित गात भयौ, मनु डसि गयौ अह्यौ ॥
उन्हैं छाँड़ि गोकुल कत आए, चाखन दूध दह्यौ ।
तजे न प्रान सूर दसरथ लौं, हुतौ जन्म निबह्यौ ॥४४॥

कहाँ रह्यौ मेरौ मन-मोहन ।
वह मूरति जिय तैं नहिं बिसरति, अंग अंग सब सोहन ॥
कान्ह बिना गौवैं सब ब्याकुल, को ल्यावै भरि दोहन ।
माखन खात खवावत ग्वालनि, सखा लिए सब गोहन ॥

जब वै लीला सुरति करति हैं, चित चाहत उठि जोहन ।
सूरदास-प्रभु के बिछुरे तैं, मरियत है अति छोहन ॥४५॥

गोपी बचन तथा ब्रजदशा

ग्वारनि कही ऐसी जाइ ।
भए हरि मधुपुरी राजा, बड़े बंस कहाइ ॥
सूत मागध बदत बिरदनि, बरनि बसुद्यौ सात ।
राज-भूषन अंग भ्राजत, अहिर कहत लजात ॥
मातु पितु बसुदेव दैवै, नंद जसुमति नाहिँ ।
यह सुनत जल नैन ढारत, मींजि कर पछिताहिँ ॥
मिली कुबिजा मलै लै कै, सो भई अरधंग ।
सूर-प्रभु बस भए ताकैं करत नाना रंग ॥४६॥

कैसैं री यह हरि करिहैं ।
राधा कौं तजिहैं मनमोहन, कहा कंस-दासी धरिहैं ॥
कहा कहति वह भइ पटरानी, वै राजा भए जाइ उहाँ ।
मथुरा बसत लखत नहिँ कोऊ, को आयौ, को रहत कहाँ ॥
लाज बेँचि कूबरी बिसाही, संग न छाँड़त एक घरी ।
सूर जाहि परतीति न काहू, मन सिहात यह करनि करी ॥४७॥

कुबिजा नहिँ तुम देखी है ।
दधि बेचन जब जाति मधुपुरी, मैं नीकैं करि पेषी है ।
महल निकट माली की बेटी, देखत जिहिँ नर-नारि हसैं ॥
कोटि बार पीतरि जौ दाहौ, कोटि बार जो कहा कसैं ।
सुनियत ताहि सुंदरी कीन्ही, आपु भए ताकौं राजी ।
सूर मिलै मन जाहि जाहि सौं, ताकौ कहा करै काजी ॥४८॥

कोटि करौ तनु प्रकृति न जाइ ।
ए अहीर वह दासी पुर की, बिधिना जोरी भली मिलाइ ॥
ऐसेन कौं मुख नाउँ न लीजै, कहा करौं कहि आवत मोहिँ ।
स्यामहिँ दोष किधौं कुबिजा कौं, यहै कहौ मैं बूझति तोहिँ ॥
स्यामहिँ दोष कहा कुबिजा कौ, चेरी चपल नगर उपहास ।
टेढ़ी टेकि चलति पग धरनी, यह जानै दुख सूरजदास ॥४९॥

कंस बध्यौ कुबिजा कैं काज ।
और नारि हरि कौं न मिली कहुँ, कहा गँवाई लाज ॥

जैसैं काग हंस की संगति, लहसुन संग कपूर।
जैसैं कंचन काँच बराबरि, गेरू काम सिंदूर ।।
भोजन साथ सूद्र बाम्हन के, तैसौ उनकौ साथ।
सुनहु सूर हरि गाइ चरैया, अब भए कुबिजा-नाथ ।।५०।।

वे कह जानैं पीर पराई ।
सुंदर स्याम कमल-दल लोचन, हरि हलधर के भाई ।।
मुख मुरली सिर मोर पखौवा, बन बन धेनु चराई ।
जे जमुना जल रंग रँगे हैं, अजहुँ न तजत कराई ।।
वहई देखि कूबरी भूले, हम सब गईं बिसराई ।
सूरज चातक बूँद भई है, हेरत रहे हिराई ।।५१।।

तब तैं मिटे सब आनंद ।
या ब्रज के सब भाग संपदा, लै जु गए नँदनंद ।।
बिह्वल भई जसोदा डोलति, दुखित नंद उपनंद ।
धेनु नहीं पय स्रवतिं रुचिर मुख, चरतिं नहीं तृण कंद ।।
बिषम बियोग दहत उर सजनी, बाढ़ि रहे दुख दंद ।
सीतल कौन करै री माई, नाहिँ इहाँ ब्रज-चंद ।।
रथ चढ़ि चले गहे नहिँ काहू, चाहि रहीं मति-मंद ।
सूरदास अब कौन छुड़ावै, परे बिरह कैं फंद ।।५२।।

इक दिन नंद चलाई बात ।
कहत-सुनत गुन राम कृष्न कै ह्वै आयौ परभात ।।
वैसैंहि भोर भयौ जसुमति कौ, लोचन जल न समात ।
सुमिरि सनेह बिहरि उर अंतर, ढरि आवत ढरि जात ।।
जद्यपि वै बसुदेव देवकी, हैं निज जननी तात ।
बार एक मिलि जाहु सूर-प्रभु धाई हू कैं नात ।।५३।।

चूक परी हरि की सेवकाई ।
यह अपराध कहाँ लौं बरनौं, कहि कहि नंद-महर पछिताई ।।
कोमल चरन-कमल कंटक कुस, हम उन पै बन गाइ चराई ।
रंचक दधि के काज जसोदा, बाँधे कान्ह उलूखल लाई ।।
इंद्र-प्रकोप जानि ब्रज राखे, बरुन फँास तैं मोहिँ मुकराई ।
अपने तन-धन-लोभ, कंस-डर, आगैं कै दीन्हे दोउ भाई ।।

निकट बसत कबहुँ न मिलि आयौ, इते मान मेरी निठुराई ।
सूर अजहुँ नातौ मानत हैँ, प्रेम सहित करैँ नंद-दुहाई ॥५४॥

लै आवहु गोकुल गोपालहिँ ।
पाइँनि परि क्यौँ हूँ बिनती करि, छल बल बाहु बिसालहिँ ॥
अब की बार नैँकु दिखरावहु, नंद आपने लालहिँ ।
गाइनि गनत ग्वार गोसुत सँग, सिखवत बैन रसालहिँ ॥
जद्यपि महाराज सुख संपति, कौन गनै मनि लालहिँ ।
तदपि सूर वै छिन न तजत हैँ, वा घुँघुची की मालहिँ ॥५५॥

हौँ तौ माई मथुरा ही पै जैहौँ ।
दासी ह्वै बसुदेव राइ की, दरसन देखत रैहौँ ॥
राखि राखि एते दिवसनि मोहिँ, कहा कियौ तुम नीकौ ।
सोऊ तौ अक्रूर गए लै, तनक खिलौना जी कौ ॥
मोहिँ देखि कै लोग हसैँगे, अरु किन कान्ह हँसै ।
सूर असीस जाइ दैहौँ, जनि न्हातहु बार खसै ॥५६॥

पंथी इतनी कहियौ बात ।
तुम बिनु इहाँ कुँवर वर मेरे, होत जिते उतपात ॥
बकी अघासुर टरत न टारे, बालक बनहिँ न जात ।
ब्रज पिँजरी रुधि मानौ राखे, निकसन कौँ अकुलात ॥
गोपी गाइ सकल लघु दीरघ, पीत बरन कृस गात ।
परम अनाथ देखियत तुम बिनु, केहिँ अवलंबैँ तात ॥
कान्ह कान्ह कै टेरत तब धौँ, अब कैसैँ जिय मानत ।
यह ब्यवहार आजु लौँ है ब्रज, कपट नाट छल ठानत ॥
दसहूँ दिसि तैँ उदित होत हैँ, दावानल के कोट ।
आँखिनि मूँदि रहत सनमुख ह्वै, नाम-कवच दै ओट ॥
ए सब दुष्ट हते हरि जेते, भए एकहीँ पेट ।
सत्वर सूर सहाइ करौ अब, समुझि पुरातन हेट ॥५७॥

सँदेसौ देवकी सौँ कहियौ ।
हौँ तौ धाइ तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ ॥
जदपि टेव तुम जानतिँ उनकी, तऊ मोहिँ कहि आवै ।
प्रात होत मेरे लाल लड़ैतैँ, माखन रोटी भावै ॥

तेल उबटनौ अरु तातौ जल ताहि देखि भजि जाते।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि कै न्हाते।।
सूर पथिक सुनि मोहिं रैनि दिन, बढ़्यौ रहत उर सोच।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन, ह्वैहै करत सँकोच।।५८।।

मेरे कुँवर कान्ह बिनु सब कुछ वैसहिं धर्यौ रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेति गहै।।
सूने भवन जसोदा सुत के, गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घर घेरत ही ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै।।
जो ब्रज मैं आनंद हुतौ, मुनि मनसा हू न गहै।
सूरदास स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हू न लहै।।५६।।

गोपी विरह

चलत गुपाल के सब चले।
यह प्रीतम सौं प्रीति निरंतर, रहे न अर्ध पले।।
धीरज पहिल करी चलिबैं की, जैसी करत भले।
धीर चलत मेरे नैननि देखे, तिहिं छिन आँसु हले।।
आँसु चलत मेरी बलयनि देखे, भए अंग सिथिले।
मन चलि रह्यौ हुतौ पहिलैं ही, चले सबै बिमले।
एक न चलै प्रान सूरज-प्रभु, असलेहु साल सले।।६०।।

करि गए थोरे दिन की प्रीति।
कहँ वह प्रीति कहाँ यह बिछुरनि, कहँ मधुबन की रीति।।
अब की बेर मिलौ मनमोहन, बहुत भई बिपरीति।
कैसैं प्रान रहत दरसन बिनु, मनहु गए जुग बीति।।
कृपा करहु गिरिधर हम ऊपर, प्रेम रह्यौ तन जीति।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु, भईं भुस पर की भीति।।६१।।

प्रीति करि दीन्ही गरैं छुरी।
जैसैं बधिक चुगाइ कपट-कन, पाछैं करत बुरी।।
मुरली मधुर चेप काँपा करि, मोर चंद्र फँदवारि।
बंक बिलोकनि लगी, लोभ बस, सकी न पंख पसारि।।
तरफत छाँड़ि गए मधुबन कौं, बहुरि न कीन्ही सार।
सूरदास-प्रभु संग कल्पतरु, उलटि न बैठी डार।।६२।।

नाथ अनाथनि की सुधि लीजै ।
गोपी, ग्वाल, गाइ, गोसुत सब, दीन मलीन दिनहिँ दिन छीजैँ ॥
नैननि जलधारा बाढ़ी अति, बूड़त ब्रज किन कर गहि लीजै ।
इतनी बिनती सुनहु हमारी, बारक हूँ पतियाँ लिखि दीजै ॥
चरन कमल दरसन नव नवका, करुनासिंधु जगत जस लीजै ।
सूरदास-प्रभु आस मिलन की, एक बार आवन ब्रज कीजै ॥६३॥

देखियति कालिंदी अति कारी ।
अहो पथिक कहियौ उन हरि सौँ, भई बिरह जुर जारी ॥
गिरि-प्रजंक तैँ गिरति धरनि धँसि, तरँग तरफ तन भारी ।
तट बारू उपचार चूर, जल पूर प्रस्वेद पनारी ॥
बिगलित कच कुस काँस कूल पर, पंक जु काजल सारी ।
भौँरे भ्रमत अति फिरति भ्रमित गति, दिसि दिसि दीन दुखारी ॥
निसि दिन चकई पिय जु रटति है, भई मनौ अनुहारी ।
सूरदास-प्रभु जो जमुना गति, सो गति भई हमारी ॥६४॥

परेखौ कौन बोल कौ कीजै ।
ना हरि जाति न पाँति हमारी, कहा मानि दुख लीजै ॥
नाहिँन मोर-चंद्रिका माथैँ, नाहिँन उर बनमाल ।
नहिँ सोभित पुहुपनि के भूषन, सुंदर स्याम तमाल ॥
नंन-नँदन गोपी-जन-बल्लभ, अब नहिँ कान्ह कहावत ।
बासुदेव, जादवकुल-दीपक, बंदी जन बरनावत ॥
बिसर्यौ सुख नातौ गोकुल को, और हमारे अंग ।
सूर स्याम वह गई सगाई, वा मुरली कैँ संग ॥६५॥

अब वै बातैँ उलटि गईँ ।
जिन बातनि लागत सुख आली, तेऊ दुसह भईँ ॥
रजनी स्याम स्याम सुंदर सँग, अरु पावस की गरजनि ।
सुखसमूह की अवधि माधुरी, पिय रस बस की तरजनि ॥
मोर पुकार गुहार कोकिला, अलि गुंजार सुहाई ।
अब लागति पुकार दादुर सम, बिनही कुँवर कन्हाई ॥
चंदन चंद समीर अगिनि सम, तनहिँ देत दव लाई ।
कालिंदी अरु कमल कुसुम सब दरसन ही दुखदाई ॥

सरद बसंत सिसिर अरु ग्रीषम, हिम-रितु की अधिकाई ।
पावस जरैं सूर के प्रभु बिनु, तरफत रैनि बिहाई ॥६६॥

मिलि बिछुरन की बेदन न्यारी ।
जाहि लगै सोई पै जानै, बिरह-पीर अति भारी ॥
जब यह रचना रची बिधाता, तबहीं क्यौं न सँभारी ।
सूरदास-प्रभु काहैं जिवाई, जनमत ही किन मारी ॥६७॥

मधुबन तुम क्यौं रहत हरे ।
बिरह बियोग स्याम सुंदर के ठाढ़े क्यौं न जरे ॥
मोहन बेनु बजावत तुम तर, साखा टेकि खरे ।
मोहे थावर अरु जड़ जंगम, मुनि जन ध्यान टरे ॥
वह चितवनि तू मन न धरत है, फिरि फिरि पुहुप धरे ।
सूरदास प्रभु बिरह दवानल, नख सिख लौं न जरे ॥६८॥

बहुरौ देखिबौ इहिं भाँति ।
असन बाँटत खात बैठे, बालकन की पाँति ॥
एक दिन नवनीत चोरत, हौं रही दुरि जाइ ।
निरखि मम छाया भजे, मैं दौरि पकरे धाइ ॥
पोंछि कर मुख लई कनियाँ, तब गई रिस भागि ।
वह सुरति जिय जाति नाहीं, रहे छाती लागि ॥
जिन घरनि वह सुख बिलोक्यौ, ते लगत अब खान ।
सूर बिनु ब्रजनाथ देखे, रहत पापी प्रान ॥६९॥

कब देखौं इहिं भाँति कन्हाई ।
मोरनि के चँदवा माथे पर, काँध कामरी लकुट सुहाई ॥
बासर के बीतैं सुरभिन सँग, आवत एक महाछबि पाई ।
कान अँगुरिया घालि निकट पुर, मोहन राग अहीरी गाई ॥
क्यौंहुँ न रहत प्रान दरसन बिनु, अब कित जतन करै री माई ।
सूरदास स्वामी नहिं आए, बदि जु गए अवध्यौऽब भराई ॥७०॥

गोपालहिं पावौं धौं किहिं देस ।
सिंगी मुद्रा कर खप्पर लै, करिहौं जोगिनि भेस ॥
कंथा पहिरि विभूति लगाऊँ, जटा बँधाऊँ केस ।
हरि कारन गोरखहिं जगाऊँ, जैसैं स्वाँग महेस ॥

तन मन जारौं भस्म चढ़ाऊँ, बिरहा के उपदेस।
सूर स्याम बिनु हम हैं ऐसी, जैसैं मनि बिनु सेस।।७१।।

फिरि ब्रज बसौ गोकुलनाथ।
अब न तुमहिँ जगाइ पठवैं, गोधननि के साथ।।
बरजैं न माखन खात कबहूँ, दह्यौ देत लुटाइ।
अब न देहिँ उराहनौ, नँद-घरनि आगैं जाइ।।
दौरि दावरि देहि नहिँ, लकुटी जसोदा पानि।
चोरी न देहिँ उघारि कै, औगुन न कहिहैं आनि।।
कहिहैं न चरननि देन जावक, गुहन बेनी फूल।
कहिहैं न करन सिँगार कबहूँ, बसन जमुना कूल।।
करिहैं न कबहूँ मान हम, हठिहैं न माँगत दान।
कहिहैं न मृदु मुरली बजावन, करन तुमसौं गान।।
देहु दरसन नंद-नंदन, मिलन की जिय आस।
सूर हरि के रूप कारन, मरत लोचन प्यास।।७२।।

काहैं पीठि दई हरि मोसौं।
तुमही पीठि भावते दीन्हौ, और कहा कहि कोसौं।।
मिलि बिछुरे की पीर सखी री, राम सिया पहिचाने।
मिलि बिछुरे की पीर सखी री, पय पानी उर आने।।
मिलि बिछुरे की पीर कठिन है, कहैं न कोऊ मानै।
मिलि बिछुरे की पीर सखी री, बिछुरयौ होइ सो जानै।।
बिछुरे रामचंद्र औ दसरथ, प्रान तजे छिन माहीँ।
बिछुरयौ पात गिरयौ तरुवरतैं, फिरि न लगे उहि डाहीँ।।
बिछुरयौ हंस काय घटहू तैं, फिरि न आव घट माहीँ।
मैं अपराधिनि जीवत बिछुरी, बिछुरयौ जीवत नाहीँ।।
नाद कुरंग मीन जल बिछुरे, होइ कीट जरि खेहा।
स्याम बियोगिनि अतिहिँ सखी री, भई साँवरी देहा।।
गरजि गरजि बादर उनये हैं, बूँदनि बरषत मेहा।
सूरदास कहु कैसैं निबहै, एक ओर कौ नेहा।।७३।।

बारक जाइयौ मिलि माधौ।
को जानै तन छूटि जाइगौ, सूल रहै जिय साधौ।।

पहुनैँ हु नंद बबा के आवहु, देखि लेउँ पल आधौ ।
मिलैँही मैँ बिपरीत करी बिधि, होत दरस कौ बाधौ ॥
सो सुख सिव सनकादि न पावत, जो सुख गोपिनि लाधौ ।
सूरदास राधा बिलपति है, हरि कौ रूप अगाधौ ॥७४॥

सखी इन नैननि तैँ घन हारे ।
बिनहीँ रितु बरषत निसि बासर, सदा मलिन दोउ तारे ॥
ऊरध स्वास समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे ।
बदन सदन करि बसे बचन खग, दुख पावस के मारे ॥
दुरि दुरि बूँद परत कंचुकि पर, मिलि अंजन सौँ कारे ।
मानौ परनकुटी सिव कीन्ही, बिबि मूरति धरि न्यारे ॥
घुमरि घुमरि बरषत जल छाँड़त, डर लागत अँधियारे ।
बूड़त ब्रजहिँ सूर को राखै, बिनु गिरिवरधर प्यारे ॥७५॥

निसि दिन बरषत नैन हमारे ।
सदा रहति बरषा रितु हम पर, जब तैँ स्याम सिधारे ॥
दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे ।
कंचुकि-पट सूखत नहिँ कबहूँ, उर बिच बहत पनारे ॥
आँसू सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे ।
सूरदास-प्रभु यहै परेखौ, गोकुल काहैँ बिसारे ॥७६॥

हरि दरसन कौ तरसतिँ अँखियाँ ।
झाँकतिँ झखतिँ झरोखा बैठी, कर मीड़तिँ ज्यौँ मखियाँ ॥
बिछुरीँ बदन-सुधानिधि-रस तैँ, लगतिँ नहीँ पल पँखियाँ ।
इकटक चितवतिँ उड़ि न सकतिँ जनु, थकित भईँ लखि सखियाँ ॥
बार-बार सिर धुनतिँ बिसूरतिँ, बिरह-ग्राह जनु भखियाँ ।
सूर सुरूप मिले तैँ जीवहिँ, काट किनारे नखियाँ ॥७७॥

(मेरे) नैना बिरह की बेलि बई ।
सीँचत नैन-नीर के सजनी, मूल पताल गई ॥
बिगसित लता सुभाई आपनैँ, छाया सघन भई ।
अब कैसैँ निरवारौँ सजनी, सब तन पसरि छई ॥
को जानै काहू के जिय की, छिन छिन होत नई ।
सूरदास स्वामी के बिछुरेँ, लागी प्रेम जई ॥७८॥

ब्रज बसि काके बोल सहौं।
इन लोभी नैननि के काजैं, परबस भइ जो रहौं॥
बिसरि लाज गइ सुधि नहिं तन की, अब धौं कहा कहौं।
मेरे जिय मैं ऐसी आवति, जमुना जाइ बहौं॥
इक बन ढूँढ़ि सकल बन ढूँढ़ौं, कहूँ न स्याम लहौं।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, इहिं दुख अधिक दहौं॥७९॥

हो, ता दिन कजरा मैं दैहौं।
जा दिन नंदनँदन के नैननि, अपने नैन मिलैहौं॥
सुनि री सखी यहै जिय मेरैं, भूलि न और चितैहौं।
अब हठ सूर यहै ब्रत मेरौ, कौंकिर खै मरि जैहौं॥८०॥

देखि सखी उत है वह गाउँ।
जहाँ बसत नँदलाल हमारे, मोहन मथुरा नाउँ॥
कालिंदी कैं कूल रहत हैं, परम मनोहर ठाउँ।
जौ तन पंख होइँ सुनि सजनी, अबहिं उहाँ उड़ि जाउँ॥
होनी होइ होइ सो अबहीं, इहिं ब्रज अन्न न खाउँ।
सूर नंदनंदन सौं हित करि लोगनि कहा डराउँ॥८१॥

लिखि नहिं पठवत हैं द्वै बोल।
द्वै कौड़ी के कागद मसि कौ, लागत है बहु मोल?
हम इहि पार, स्याम पैले तट, बीच बिरह कौ जोर।
सूरदास प्रभु हमरे मिलन कौं, हिरदै कियौ कठोर॥८२॥

सुपनैं हरि आए हौं किलकी।
नींद जु सौति भई रिपु हमकौं, सहि न सकी रति तिल की॥
जौ जागौं तौ कोऊ नाहीं, रोके रहति न हिलकी।
तन फिरि जरनि भई नख सिख तैं, दिया बाति जनु मिलकी॥
पहिली दसा पलटि लीन्ही है, त्वचा तचकि तनु पिलकी।
अब कैसैं सहि जाति हमारी, भई सूर गति सिल की॥८३॥

पिय बिनु नागिनि कारी रात।
जौ कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी ह्वै जात॥
जंत्र न फुरत मन्त्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जात।
सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी, मुरि-मुरि लहरैं खात॥८४॥

मोकौं माई जमुना जम ह्वै रही।
कैसैं मिलौं स्यामसुंदर कौं, बैरिनि बीच बही।।
कितिक बीच मथुरा अरु गोकुल, आवत हरि जु नहीं।
हम अबला कछु मरम न जान्यौ, चलत न फेंट गही।।
अब पछिताति प्रान दुख पावत, जाति न बात कही।
सूरदास प्रभु सुमिरि-सुमिरि गुन, दिन-दिन सूल सही।।८५।।

नैन सलोने स्याम, बहुरि कब आवहिंगे।
वै जौ देखत राते राते, फूलनि फूली डार।
हरि बिनु फूलझरी सी लागत, झरि झरि परत अँगार।।
फूल बिनन नहिं जाउँ सखी री, हरि बिनु कैसे फूल।
सुनि री सखि मोहिं राम दुहाई, लागत फूल त्रिसूल।।
जब मैं पनघट जाउँ सखी री, वा जमुना कैं तीर।
भरि भरि जमुना उमड़ि चलति है, इन नैननि कैं नीर।।
इन नैननि कैं नीर सखी री, सेज भई घरनाउ।
चाहति हौं ताही पै चढ़ि कै, हरिजू कैं ढिग जाउँ।।
लाल पियारे प्रान हमारे, रहे अधर पर आइ।
सूरदास-प्रभु कुंज-बिहारी, मिलत नहीं क्यौं धाइ।।८६।।

प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ।
प्रीति पतंग करी पावक सौं, आपै प्रान दह्यौ।।
अलि-सुत प्रीति करी जल सुत सौं, संपुट माँझ गह्यौ।
सारंग प्रीति करी जु नाद सौं, सन्मुख बान सह्यौ।।
हम जौ प्रीति करी माधव सौं, चलत न कछू कह्यौ।
सूरदास प्रभु बिनु दुख पावत, नैननि नीर बह्यौ।।८७।।

प्रीति तौ मरिबौऊ न बिचारै।
निरखि पतंग ज्योति-पावक ज्यौं, जरत न आपु सँभारै।।
प्रीति कुरंग नाद मन मोहित, बधिक निकट ह्वै मारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन तैं, गिरत न आपु सँभारै।।
सावन मास पपीहा बोलत, पिय पिय करि जु पुकारै।
सूरदास-प्रभु दरसन कारन, ऐसी भाँति बिचारै।।८८।।

जनि कोउ काहू कैं बस होहि।
ज्यौं चकई दिनकर बस डोलत, मोहिं फिरावत मोहि।।

हम तौ रीझि लटू भईं लालन, महा प्रेम तिय जानि ।
बंधन अवधि अमति निसि-बासर, को सुरझावत आनि ॥
उरझे संग अंग अंगनि प्रति बिरह, बेलि की नाईं ।
मुकुलित कुसुम नैन निद्रा तजि, रूप सुधा सियराई ॥
अति आधीन हीन-मति ब्याकुल, कहँ लौं कहौं बनाई ।
ऐसी प्रीति-रीति रचना पर, सूरदास बलि जाई ॥८९॥

हरि परदेस बहुत दिन लाए ।
कारी घटा देखि बादर की, नैन नीर भरि आए ॥
बीर बटाऊ पंथी हौ तुम, कौन देस तैं आए ।
यह पाती हमरी लै दीजौ, जहाँ साँवरे छाए ॥
दादुर मोर पपीहा बोलत, सोवत मदन जगाए ।
सूर स्याम गोकुल तैं बिछुरे, आपुन भए पराए ॥९०॥

ये दिन रूसिबे के नाहीं ।
कारी घटा पौन झकझोरै, लता तरुन लपटाहीं ॥
दादुर मोर चकोर मधुप पिक, बोलत अंमृत बानी ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, बैरिन रितु नियरानी ॥९१॥

अब बरषा कौ आगम आयौ ।
ऐसे निठुर भए नँदनंदन, संदेसौ न पठायौ ॥
बादर घोरि उठे चहुँ दिसि तैं, जलधर गरजि सुनायौ ।
एकै सूल रही मेरैं जिय, बहुरि नहीं ब्रज छायौ ॥
दादुर मोर पपीहा बोलत, कोकिल सब्द सुनायौ ।
सूरदास के प्रभु सौं कहियौ, नैननि है झर लायौ ॥९२॥

सँदेसनि मधुबन कूप भरे ।
अपने तौ पठवत नहिं मोहन, हमरे फिरि न फिरे ॥
जिते पथिक पठए मधुबन कौं, बहुरि न सोध करे ।
कै वै स्याम सिखाइ प्रमोधे, कै कहुँ बीच मरे ॥
कागद गरे मेघ, मसि खूटी, सर दव लागि जरे ।
सेवक सूर लिखन कौ आँधौ, पलक कपाट अरे ॥९३॥

ब्रज पर बदरा आए गाजन ।
मधुबन कोप ठए सुनि सजनी, फौज मदन लग्यौ साजन ॥

ग्रीवा रंध्र नैन चातक जल, पिक मुख बाजे बाजन।
चहुँ दिसि तैं तन बिरहा घेर्‌यौ, कैसैं पावति भाजन॥
कहियत हुते स्याम पर पीरक, आए संकट काजन।
सूरदास श्रीपति की महिमा, मथुरा लागे राजन॥९४॥

बहुरि हरि आवहिँगे किहि काम।
रितु बसंत अरु ग्रीषम बीते, बादर आए स्याम॥
छिन मंदिर छिन द्वारैं ठाढ़ी, यौं सूखति हैं घाम।
तारे गनत गगन के सजनी, बीतैं चारौ जाम॥
औरौ कथा सबै बिसराई, लेत तुम्हारौ नाम।
सूर स्याम ता दिन तैं बिछुरे, अस्थि रहे कै चाम॥९५॥

किधौं घन गरजत नहिँ उन देसनि।
किधौं हरि हरषि इंद्र हठि बरजे, दादुर खाए सेषनि॥
किधौं उहिँ देस बगनि मग छाँड़े, धरनि न बूँद प्रवेसनि।
चातक मोर कोकिला उहिँ बन, बधिकनि बधे बिसेषनि॥
किधौं उहिँ देस बाल नहिँ झूलतिँ गावतिँ सखि न सुदेसनि।
सूरदास-प्रभु पथिक न चलहीँ, कासौं कहौं सँदेसनि॥९६॥

आजु घन स्याम की अनुहारि।
आए उनइ साँवरे सजनी, देखि रूप की आरि॥
इंद्र धनुष मनु पीत बसन छबि, दामिनि दसन बिचारि।
जनु बगपाँति माल मोतिनि की, चितवत चित्त निहारि॥
गरजत गगन गिरा गोबिंद मनु, सुनत नयन भरे वारि।
सूरदास गुन सुमिरि स्याम के, बिकल भईं ब्रजनारि॥९७

हमारे माई मोरवा बैर परे।
घन गरजत बरज्यौ नहिँ मानत, त्यौं त्यौं रटत खरे॥
करि करि प्रगट पंख हरि इनके, लै लै सीस धरे।
याही तैं न बदत बिरहिनि कौं, मोहन ढीठ करे॥
को जानै काहे तैं सजनी, हमसौं रहत अरे।
सूरदास परदेस बसे हरि, ये बन तैं न टरे॥९८॥

बहुरि पपीहा बोल्यौ माई।
नींद गई चिंता चित बाढ़ी, सुरति स्याम की आई॥

सावन मास मेघ की बरषा, हौं उठि आँगन आई।
चहुँ दिसि गगन दामिनी कौंधति, तिहिँ जिय अधिक डराई॥
काहूँ राग मलार अलाप्यौ, मुरलि मधुर सुर गाई।
सूरदास बिरहिनि भइ ब्याकुल, धरनि परी मुरझाई॥९९॥

सखी री चातक मोहिँ जियावत।
जैसैँहि रैनि रटति हौं पिय पिय, तैसैँहि वह पुनि गावत॥
अतिहिँ सुकंठ, दाह प्रीतम कैँ, तारू जीभ न लावत।
आपुन पियत सुधा-रस अंमृत, बोलि बिरहिनी प्यावत॥
यह पंछी जु सहाइ न होतौ, प्रान महा दुख पावत।
जीवन सुफल सूर ताही कौ, काज पराए आवत॥१००॥

कोकिल हरि कौ बोल सुनाउ।
मधुबन तैँ उपहारि स्याम कौँ, इहिँ ब्रज कौँ लै आउ॥
जा जस कारन देत सयाने, तन मन धन सब साज।
सुजस बिकात बचन के बदलैँ, क्यौँ न बिसाहतु आज॥
कीजै कछु उपकार परायौ, इहै सयानौ काज॥
सूरदास पुनि कहँ यह अवसर, बिनु बसंत रितुराज॥१०१॥

अब यह बरषौ बीति गई।
जनि सोचहि, सुख मानि सयानी, भली रितु सरद भई॥
फुल्ल सरोज सरोवर सुंदर, नव बिधि नलिनि नई।
उदित चारु चंद्रिका किरन, उर अंतर अमृत-मई॥
घटी घटा अभिमान मोह मद, तमिता तेज हई।
सरिता संजम स्वच्छ सलिल सब, फाटी काम कई॥
यहै सरद संदेस सूर सुनि, करुना कहि पठई।
यह सुनि सखी सयानी आईँ, हरि-रति अवधि हई॥१०२॥

सरद समै हू स्याम न आए।
को जानै काहे तैँ सजनी, किहिँ बैरिनि बिरमाए॥
अमल अकास कास कुसुमित छिति, लच्छन स्वच्छ जनाए।
सर सरिता सागर जल-उज्ज्वल, अति कुल कमल सुहाए॥
अहि मयंक, मकरंद कंज अलि, दाहक गरल जिवाए।
प्रीतम रंग संग मिलि सुंदरि, रचि सचि सीँचि सिराए॥

सूनी सेज तुषार जमत चिर, बिरह सिंधु उपजाए ।
अब गई आस सूर मिलिबे की, भए ब्रजनाथ पराए ॥१०३॥

दूरि करहि बीना कर धरिबौ ।
रथ थाक्यौ, मानौ मृग मोहे, नाहिँ न होत चंद्र कौ ढरिबौ ॥
बीतै जाहि सोइ पै जानै, कठिन सु प्रेम पास कौ परिबौ ।
प्राननाथ संगहिँ तैँ बिछुरे, रहत न नैन नीर कौ झरिबौ ॥
सीतल चंद अगिनि सम लागत, कहिए धीर कौन बिधि धरिबौ ।
सूर सु कमलनयन के बिछुरैँ, झूठौ सब जतननि कौ करिबौ ॥१०४॥

कोउ माई बरजै री या चंदहिँ ।
अति हीँ क्रोध करत है हम पर, कुमुदिनि कुल आनंदहि ॥
कहाँ कहौ बरषा रबि तमचुर, कमल बलाहक कारे ।
चलत न चपल रहत थिर कै रथ, बिरहिनि के तन जारे ॥
निंदति सैल उदधि पन्नग कौँ, श्रीपति कमठ कठोरहिँ ।
देतिँ असीस जरा देवी कौ, राहु केतु किन जोरहिँ ॥
ज्यौँ जल-हीन मीन तन तलफतिँ, ऐसी गति ब्रजबालहिँ ।
सूरदास अब आनि मिलावहु, मोहन मदन गुपालहिँ ॥१०५॥

माई मोकौँ चंद लग्यौ दुख दैन ।
कहँ वै स्याम कहाँ वै बतियाँ, कहँ वै सुख की रैन ॥
तारे गनत गनत हौँ हारी, टपकत लागे नैन ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, बिरहिनि कौँ नहिँ चैन ॥१०६॥

अब या तनहिँ राखि कह कीजै ।
सुनि री सखी स्याम सुंदर बिनु, बाँटि बिषम बिष पीजै ॥
कै गिरिऐ गिरि चढ़ि सुनि सजनी, सीस संकरहि दीजै ।
कै दहिऐ दारुन दावानल, जाइ जमुन धँसि लीजै ॥
दुसह बियोग बिरह माधौ के, को दिन ही दिन छीजै ।
सूर स्याम प्रीतम बिनु राधे, सोचि सोचि कर मीँजै ॥१०७॥

काहे कौँ पिय पियहिँ रटति हौ, पिय कौ प्रेम तेरौ प्रान हरैगौ ।
काहे कौँ लेति नयन जल भरि भरि, नैन भरै कैसैँ सूल टरैगौ ॥
काहे कौँ स्वास उसास लेति हौ, बैरी बिरह कौ दवा बरैगौ ।
छार सुगंध सेज पुहुपावलि, हार छुवैँ, हिय हार जरैगो ॥

बदन दुराइ बैठि मंदिर मैं, बहुरि निसापति उदय करैगौ।
सूर सखी अपने इन नैननि, चंद चितै जनि चंद जरैगौ ॥१०८॥

बिछुरे री मेरे बाल-सँघाती।
निकसि न जात प्रान ये पापी, फाटति नाहिँ न छाती ॥
हौ अपराधिनि दही मथति ही, भरी जोबन मदमाती।
जो हौँ जानति हरि कौ चलिबौ, लाज छाँड़ि सँग जाती ॥
ढरकत नीर नैन भरि सुंदरि, कछु न सोह दिन-राती।
सूरदास-प्रभु दरसन कारन, सखियनि मिलि लिखी पाती ॥१०९

एक द्यौस कुंजनि मैं माई।
नाना कुसुम लेइ अपनैं कर, दिए मोहिँ सो सुरति न जाई ॥
इतने मैं घन गरजि वृष्टि करी, तनु भीज्यौ मो भई जुड़ाई।
कंपत देखि उढ़ाइ पीत पट, लै करुनामय कंठ लगाई ॥
कहँ वह प्रीति रीति मोहन की, कहँ अब धौँ एती निठुराई।
अब बलवीर सूर-प्रभु सखि री, मधुबन बसि सब रति बिसराई ॥११०

मेरे मन इतनी सूल रही।
वे बतियाँ छतियाँ लिखि राखीँ, जे नँदलाल कही ॥
एक द्यौस मेरैं गृह आए, हौँ ही महत दही।
रति माँगत मैं मान कियौ सखि, सो हरि गुसा गही ॥
सोचति अति पछिताति राधिका, मुरछित धरनि ढही।
सूरदास प्रभु के बिछुरे तैं, बिथा न जाति सही ॥१११॥

हरि कौ मारग दिन प्रति जोवति।
चितवत रहत चकोर चंद ज्यौँ, सुमिरि-सुमिरि गुन रोवति ॥
पतियाँ पठवति मसि नहिँ खूँटति, लिखि लिखि मानहु धोवति।
भूख न दिन निसि नीँद हिरानी, एकौ पल नहिँ सोवति ॥
जे जे बसन स्याम सँग पहिरे, ते अजहूँ नहिँ धोवति।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, वृथा जनम सुख खोवति ॥११२॥

इहिँ दुख तन तरफत मरि जैहैँ।
कबहुँ न सखी स्याम-सुंदर घन, मिलिहैँ आइ अंक भरि लैहैँ ?
कबहुँ न बहुरि सखा सँग ललना, ललित त्रिभंगी छबिहिँ दिखैहैँ ?
कबहुँ न बेनु अधर धरि मोहन, यह मति लै लै नाम बुलैहैँ ?

कबहुँ न कुंज भवन सँग जैहैं, कबहुँ न दूती लैन पठैहैं ?
कबहुँ न पकरि भुजा रस बस ह्वै, कबहुँ न पग परि मान मिटैहैं ?
याही तैं घट प्रान रहत हैं कबहुँक फिरि दरसन हरि दैहैं ?
सूरदास परिहरत न यातैं, प्रान तजैं नहिं पिय ब्रज ऐहैं ॥११३॥

सबैं सुख लै जु गए ब्रजनाथ ।
बिलखि बदन चितवतिं मधुबन तन, हम न गईं उठि साथ ॥
वह मूरति चित तैं बिसरति नहिं, देखि साँवरे गात ।
मदन गोपाल ठगौरी मेली, कहत न आवै बात ॥
नंद-नँदन जु बिदेस गवन कियौ, बैसी मीँजतिँ हाथ ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरैं बिछुरे, हम सब भईं अनाथ ॥११४॥

करिहौ मोहन कहूँ सँभारि, गोकुल-जन-सुखहारे ।
खग, मृग, तृन, बेली वृंदावन, गैया ग्वाल बिसारे ॥
नंद जसोदा मारग जोवैं, निसि दिन दीन दुखारे ।
छिन छिन सुरति करत चरननि की, बाल बिनोद तुम्हारे ॥
दीन दुखी ब्रज रह्यौ न परि है, सुंदर स्याम लनारे ।
दीनानाथ कृपा के सागर, सूरदास-प्रभु प्यारे ॥११५॥

उनकौं ब्रज बसिबौ नहिँ भावै ।
ह्वाँ वै भूप भए त्रिभुवन के, ह्याँ कत ग्वाल कहावैं ॥
ह्वाँ वै छत्र सिंहासन राजत, को बछरनि सँग धावै ।
ह्वाँ तौ बिबिध बस्त्र पाटंबर, को कमरी सचु पावै ॥
नंद जसोदा हूँ कौ बिसरयौ, हमरी कौन चलावै ।
सूरदास प्रभु निठुर भए री, पातिहु लिखि न पठावै ॥११६॥

उद्धव संदेश

उद्धव को ब्रज भेजना

अंतरजामी कुँवर कन्हाई।
गुरु गृह पढ़त हुते जहँ बिद्या, तहँ ब्रज-बासिन की सुधि आई।
गुरु सौं कह्यौ जोरि कर दोऊ, दछिना कहौ सो देउँ मँगाई॥
गुरु-पतनी कह्यौ पुत्र हमारे, मृतक भये सो देहु जिवाई॥
आनि दिए गुरु-सुत जमपुर तैं, तब गुरुदेव असीस सुनाई।
सूरदास-प्रभु आइ मधुपुरी, ऊधौ कौं ब्रज दियौ पठाई॥१॥

जदुपति जानि उद्धव रीति।
जिहिँ प्रगट निज सखा कहियत, करत भाव अनीति॥
बिरह दुख जहँ नाहिँ नैकहुँ, तहँ न उपजै प्रेम।
रेख, रूप न बरन जाकैँ, इहिँ धर्यौ वह नेम॥
त्रिगुन तन करि लखत हमकौं, ब्रह्म मानत और।
बिना गुन क्यौँ पुहुमि उधरै, यह करत मन डौर॥
बिरस रस किहिँ मंत्र कहिए, क्यौँ चलै संसार।
कछु कहत यह एक प्रगटत, अति भर्यौ अहंकार॥
प्रेम भजन न नैँकु याकैँ, जाइ क्यौँ समुझाइ।
सूर प्रभु मन यहै आनी, ब्रजहिँ देउँ पठाइ॥२॥

संग मिलि कहौँ कासौँ बात।
यह तौ कहत जोग की बातैँ, जामैँ रस जरि जात॥
कहत कहा पितु मातु कौन के, पुरुष नारि कह नात।
कहाँ जसोदा सी है मैया, कहाँ नंद सम तात॥
कहँ वृषभानु सुता सँग कौ सुख, वह बासर वह प्रात।
सखी सखा सुख नहिं त्रिभुवन मैँ, नहिँ बैकुंठ सुहात॥
वै बातैँ कहिऐ किहिँ आगैँ, यह गुनि हरि पछितात।
सूरदास प्रभु ब्रज महिमा कहि, लिखी बदत बल भ्रात॥३॥

तबहिँ उपँग-सुत आइ गए।
सखा सखा कछु अंतर नाहीँ, भरि भरि अंक लए॥

अति सुंदर तन स्याम सरीखो, देखत हरि पछिताने ।
ऐसे कैँ वैसी बुधि होती, ब्रज पठऊँ मन आने ॥
या आगैँ रस-कथा प्रकासौँ, जोग-कथा प्रगटाऊँ ।
सूर ज्ञान याकौ दृढ़ करिकै, जुवतिन्ह पास पठाऊँ ॥४॥

हरि गोकुल की प्रीति चलाई ।
सुनहु उपँग-सुत मोहिँ न बिसरत, ब्रज बासी सुखदाई ॥
यह चित होत जाउँ मैँ अबहीँ, इहाँ नहीँ मन लागत ।
गोपी ग्वाल गाइ बन चारन, अति दुख पायौ त्यागत ॥
कहँ माखन-रोटी, कहँ जसुमति, जेँवहु कहि-कहि प्रेम ।
सूर स्याम के बचन हँसत सुनि, थापत अपनौ नेम ॥५॥

जदुपति लख्यौ तिहिँ मुसुकात ।
कहत हम मन रही जोई, भई सोई बात ॥
बचन परगट करन कारन, प्रेम कथा चलाइ ।
सुनहु ऊधौ मोहिँ ब्रज की, सुधि नहीँ बिसराइ ॥
रैनि सोवत, दिवस जागत, नाहिँनै मन आन ।
नंद-जसुमति, नारि-नर-ब्रज तहाँ मेरौ प्रान ॥
कहत हरि सुनि उपँग सुत यह, कहत हौँ रस रीति ।
सूर चित तैँ टरति नाहीँ, राधिका की प्रीति ॥६॥

सखा सुनि एक मेरी बात ।
वह लता-गृह संग गोपिन, सुधि करत पछितात ॥
बिधि लिखी नहिँ टरत क्यौँ हूँ, यह कहत अकुलात ।
हँसि उपँग-सुत बचन बोले, कहा करि पछितात ॥
सदा हित यह रहत नाहीँ, सकल मिथ्या जात ।
सूर-प्रभु यह सुनौ मोसौँ, एक ही सौँ नात ॥७॥

जब ऊधौ यह बात कही ।
तब जदुपति अति ही सुख पायौ, मानी प्रगट सही ॥
श्री मुख कह्यौ जाहु तुम ब्रज कौँ, मिलहु जाइ ब्रज-लोग ।
मो बिन, बिरह भरीँ ब्रजबाला, जाइ सुनावहु जोग ॥
प्रेम मिटाइ ज्ञान परबोधहु, तुम हौ पूरन ज्ञानी ।
सूर उपँग-सुत मन हरषाने, यह महिमा इन जानी ॥८॥

ऊधौ तुम यह निहचै जानौ ।
मन, बच, क्रम, मैं तुमहिं पठावत, ब्रज कौं तुरत पलानौ ॥
पूरन ब्रह्म अकल अविनासी, ताके तुम हौ ज्ञाता ।
रेख न रूप जाति कुल नाहीं, जाके नहिं पितु माता ॥
यह मत दै गोपिनि कौं आवहु, बिरह नदी मैं भासत ।
सूर तुरत तुम जाइ कहौ यह, ब्रह्म बिना नहिं आसत ॥९॥

ऊधौ मन अभिमान बढ़ायो ।
जदुपति जोग जानि जिय साँचौ, नैन अकास चढ़ायौ ॥
नारिनि पै मोकौं पठवत हैं, कहत सिखावन जोग ।
मन ही मन अप करत प्रसंसा, यह मिथ्या सुख-भोग ॥
आयसु मानि लियौ सिर ऊपर, प्रभु अज्ञा परमान ।
सूरदास प्रभु गोकुल पठवत, मैं क्यौं कहौं कि आन ॥१०॥

तुम पठवत गोकुल कौं जैहौं ।
जौ मानिहैं ब्रह्म की बातैं, तौ उनसौं मै कैहौं ॥
गदगद बचन कहत मन प्रफुलित, बार-बार समुझैहौं ।
आजु नहीं जो करौं काज तुव, कौन काज पुनि ऐहौं ॥
यह मिथ्या संसार सदाई, यह कहिकै उठि ऐहौं ॥
सूर दिना द्वै ब्रज-जन सुख दै, आइ चरन पुनि गैहौं ॥११॥

तुरत ब्रज जाहु उपँग-सुत आजु ।
ज्ञान बुझाइ खबरि दै आवहु, एक पंथ द्वै काज ॥
जब तैं मधुबन कौं हम आए, फेरि गयौ नहिं कोइ ।
जुवतनि पै ताही कौं पठवैं, जो तुम लायक होइ ॥
इक प्रवीन अरु सखा हमारे, ज्ञानी तुम सरि कौन ।
सोइ कीजौ जातैं ब्रज-बाला, साधन सीखैं पौन ॥
श्रीमुख स्याम कहत यह बानी, ऊधौ सुनत सिहात ।
आयसु मानि सूर-प्रभु जैहौं, नारि मानिहैं बात ॥१२॥

हलधर कहत प्रीति जसुमति की ।
कहा रोहिनी इतनी पावै, वह बोलनि अति हित की ॥
एक दिवस हरि खेलत मो सँग, झगरौ कीन्हौ पेलि ।
मोकौं दौरि गोद करि लीन्हौ, इनहिं दियौ कर ठेलि ॥

नंद बबा तब कान्ह गोद करि, खीझन लागे मोकौं।
सूर स्याम नान्हैं तेरौ भैया, छोह न आवत तोकौं ॥१३॥

जसुमति करति मोकौं हेत।
सुनौ ऊधौ कहत बनत न, नैन भरि-भरि लेत॥
दुहुँनि कौ कुसलात कहियौ, तुमहिँ भूलत नाहिँ।
स्याम हलधर सुत तुम्हारे, और के न कहाहिँ॥
आइ तुमकौं धाइ मिलिहैं, कछुक कारज और।
सूर हमकौं तुम बिना सुख कौ नहीं कहुँ ठौर ॥१४॥

तीन पाती तथा संदेश

स्याम कर पत्री लिखी बनाइ।
नंद बाबा सौं बिनै, कर जोरि जसुदा माइ॥
गोप ग्वाल सखान कौं हिलि-मिलन कंठ लगाइ।
और ब्रज-नर-नारि जे हैं, तिनहिँ प्रीति जनाइ॥
गोपिकनि लिखि जोग पठयो, भाव जानि न जाइ।
सूर-प्रभु मन और यह कहि, प्रेम लेत दिढ़ाइ॥१५॥

ऊधौ जात ब्रजहिँ सुने।
देवकी बसुदेव सुनि कै, हृदै हेत गुने॥
आपु सौं पाती लिखी, कहि धन्य जसुमति नंद।
सुत हमारे पालि पठए, अति दियौ आनंद॥
आइकै मिलि जात कबहुँ न, स्याम अरु बलराम।
इहौ कहत पठाइहौं अब, तबहिँ तन बिस्राम॥
बाल-सुख सब तुमहिँ लूट्यौ, मोहिँ मिले कुमार।
सूर यह उपकार तुम तैं, कहत बारंबार॥१६॥

हम पर काहैं झुकति ब्रजनारी।
साझे भाग नहीं काहू कौ, हरि की कृपा निनारी॥
कुबिजा लिख्यौ सँदेस सबनि कौ, अरु कीन्ही मनुहारी।
हौं तौ दासी कंसराइ की, देखौ मनहिँ बिचारी॥
फलनि माँझ ज्यौं करुइ तोमरी, रहत घुरे पर डारी।
अब तौ हाथ परी जंत्री के, बाजत राग दुलारी॥
तनु तैं टेढ़ी सब कोउ जानत, परसि भई अधिकारी।
सूरदास स्वामी करुनामय, अपने हाथ सँवारी॥१७॥

सुनियत ऊधौ लए सँदेसौ, तुम गोकुल कौं जात।
पाछैं करि गोपिनि सौं कहियौ, एक हमारी बात॥
मातु पिता कौ नेह समुझि कै, स्याम मधुपुरी आए।
नाहिँन कान्ह तुम्हारे प्रीतम, ना जसुदा के जाए॥
देखौ बूझि आपने जिय मैं, तुम धौं कौन सुख दीन्हे।
ये बालक तुम मत्त ग्वालिनी, सबे मूँड़ करि लीन्हे॥
तनक दही माखन के कारन, जसुदा त्रास दिखावै।
तुम हँसि सब बाँधन कौं दौरीं, काहू दया न आवै॥
जो बृषभान-सुता उत कीन्ही, सो सब तुम जिय जानी।
ताहीं जाल तज्यौ ब्रज मोहन, सब काहैं दुख मानौ॥
सूरदास-प्रभु सुनि सुनि बातैं, रहे भूमि सिर नाए।
इत कुबिजा उत प्रेम गोपिकनि, कहत न कछु बनि आए॥१८॥

तब ऊधौ हरि निकट बुलायौ।
लिखि पाती दोउ हाथ दई तिहिँ, औ मुख बचन सुनायौ॥
ब्रजबासी जावत नारी नर, जल थल द्रुम बन-पात।
जो जिहिँ बिधि तासौं तैसैँही, मिलि कहियौ कुसलात॥
जो सुख स्याम तुमहिँ तैं पावत, सो त्रिभुवन कहुँ नाहिँ।
सूरज-प्रभु दई सौंह आपुनी, समुझत हौ मन माहिँ॥१९॥

पहिलैं प्रनाम नँदराइ सौं।
ता पाछैं मेरौ पालागन, कहियौ जसुमति माइ सौं॥
बार एक तुम बरसाने लौं, जाइ सबै सुधि लीजौ।
कहि बृषभानु महर सौं मेरौ, समाचार सब दीजौ॥
श्रीदामाऽदि सकल ग्वालनि कौं मेरौ कोतौ भेँव्यौ।
सुख संदेस सुनाइ सबनि कौं, दिन दिन कौ दुख मेट्यौ॥
मित्र एक मन बसत हमारैं, ताहि मिलैं सुख पाइहौ।
करि करि समाधान नीकी बिधि, मोकौं माथौ नाइहौ॥
डरपहु जनि तुम सघन कुंज मैं, हैं तहँ के तरु भारी।
बृंदाबन मति रहति निरंतर, कबहुँ न होति निनारी॥
ऊधौ सौं समुझाइ प्रगट करि, अपने मन की बीती।
सूरदास स्वामी सौ छल सौं, कही सकल ब्रज-प्रीती॥२०॥

ऊधौ इतनी कहियौ जाइ ।
हम आवैंगे दोऊ भैया, मैया जनि अकुलाइ ।।
याकौ बिलग बहुत हम मान्यौ, जो कहि पठयौ धाइ।
वह गुन हमकौं कहा बिसरिहै, बड़े किए पय प्याइ ।।
अरु जब मिल्यौ नंद बाबा सौं, तब कहियौ समुझाइ ।
तौ लौं दुखी होन नहिँ पावैं, धौरी धूमरि गाइ ।।
जद्यपि इहाँ अनेक भाँति सुख, तदपि रह्यौ नहिँ जाइ ।
सूरदास देखौं ब्रजबासिनि, तबहीँ हियौ सिराइ ।।२१।।

नीकें रहियौ जसुमति मैया ।
आवैंगे दिन चारि पाँच मैं, हम हलधर दोउ भैया ॥
नोई, बेंत, बिषान, बाँसुरी, द्वार अबेर सबेरैं ।
लै जनि जाइ चुराइ राधिका, कछुव खिलौना मेरे ॥
जा दिन तैं हम तुमतैं बिछुरे, कोउ न कहत कन्हैया ।
उठि न सबेरे कियौ कलेऊ, साँझ न चीषी धैया ॥
कहियै कहा नंद बाबा सौं, जितौ निठुर मन कीन्हौ ।
सूरदास पहुँचाइ मधुपुरी, फेरि न सोधौ लीन्हौ ||२२॥

गहरु जनि लावहु गोकुल जाइ ।
तुमहिँ बिना ब्याकुल हम ह्वै हैं, जदुपति करी चतुराइ ॥
अपनौ ही रथ तुरत मँगायौ, दियौ तुरत पलनाइ ।
अपने अंग अभूषन करि-करि, आपुन ही पहिराइ ॥
अपनौ मुकुट पितंबर अपनौ, देत सबै सुख पाइ ।
सूर स्याम तदरूप उपँगसुत, भृगुपद एक बचाइ ॥२३॥

उद्धव ब्रज आगमन

जबहिं चले ऊधौ मधुबन तैं, गोपिनि मनहिँ जनाइ गई ।
बार-बार अलि लागे स्रवननि, कछु दुख कछु हिय हर्ष भई ।
जहँ तहँ काग उड़ावन लागी, हरि आवत उड़ि जाहिँ नहीँ ।
समाचार कहि जबहिँ मनावतिँ, उड़ि बैठत सुनि औचकहीँ ॥
सखी परस्पर यह कही बातैं, आजु स्याम कै आवत हैं ।
किधौ सूर कोऊ ब्रज पठयौ, आजु खबरि कै पावत हैं ॥२४॥

आजु कोउ नीकी बात सुनावै ।
कै मधुबन तैं नंद लाड़िलौ, कैऽब दूत कोउ आवै ॥

औरएक चहुँ दिसि तैं उड़ि-उड़ि, कानन लगि-लगि गावै ।
उत्तम भाषा ऊँचे चढ़ि-चढ़ि, अंग अंग सगुनावै ॥
भामिनि एक सखी सौं बिनवै, नैन नीर भरि आवै ।
सूरदास कोऊ ब्रज ऐसौ, जो ब्रजनाथ मिलावै ॥२५॥

तौ तू उड़ि न जाइ रे काग ।
जौ गुपाल गोकुल कौं आवैं, तौ ह्वै है बड़भाग ॥
दधि ओदन भरि दोनौ दैहौं, अरु अंचल की पाग ।
मिलि हौं हृदय सिराइ स्रवन सुनि, मेटि बिरह के दाग ॥
जैसैं मातु पिता नहिं जानत, अंतर कौ अनुराग ।
सूरदास-प्रभु करैं कृपा जब, तब तैं देह सुहाग ॥२६॥

है कोउ वैसी ही अनुहारि ।
मधुबन तन तैं आवत सखि री, देखौ नैन निहारि ॥
वैसोइ मुकुट मनोहर कुंडल, पीत बसन रुचिकारि ।
वैसहिं बात कहत सारथि सौं, ब्रज तन बाहँ पसारि ॥
केतिक बीच कियौ हरि अंतर, मनु बीते जुग चारि ।
सूर सकल आतुर अकुलानी, जैसैं मीन बिनु बारि ॥२७॥

घर घर इहै सब्द पर्‌यौ ।
सुनत जसुमति धाइ निकसी, हरष हियौ भर्‌यौ ॥
नंद हरषित चले आगैं, सखा हरषित अंग ।
झुंड झुंडनि नारि हरषित, चलीं उदधि तरंग ॥
गाइ हरषित ते स्रवतिं थन, चौकरत गौ बाल ।
उमँगि अंग न मात कोऊ, बिरध तरुनऽरु बाल ॥
कोउ कहत बलराम नाहीं, स्याम रथ पर एक ।
कोउ कहत प्रभु सूर दोऊ, रचित बात अनेक ॥२८॥

कोउ माई आवत है तनु स्याम ।
वैसे पट वैसिय रथ बैठनि, वैसीयै उर दाम ॥
जो जैसैं तैसैं उठि धाईं, छाँड़ि सकल गृह काम ।
पुलक रोम गदगद तेहीं छन, सोभित अँग अभिराम ॥
इतने बीच आइ गए ऊधौ, रहीं ठगी सब बाम ।
सूरदास प्रभु ह्याँ कत आवैं, बँधे कुबिजा रस-दाम ॥२९॥

जबहिँ कह्यौ ये स्याम नहीँ ।
परी मुरछि धरनी ब्रजबाला, जो जहँ रही सु तहीँ ।।
सपने की रजधानी ह्वै गइ, जो जागीँ कछु नाहीँ ।
बार-बार रथ ओर निहारहिँ, स्याम बिना अकुलाहीँ ।।
कहा आइ करिहैँ ब्रज मोहन, मिली कूबरी नारी ।
सूर कहत सब उधौ आए, गईँ काम-सर मारी ।।३०।।

भली भई हरि सुरति करी ।
उठौ महरि कुसलात बूझिऐ, आनँद उमँग भरी ।।
भुजा गहे गोपी परबोधति, मानहु सुफल घरी ।
पाती लिखि कछु स्याम पठायौ, यह सुनि मनहिँ डरी ।।
निकट उपँगसुत आइ तुलाने, मानौ रूप हरी ।
सूर स्याम कौ सखा यहै री, स्रवननि सुनी परी ।।३१।।

निरखत ऊधौ कौँ सुख पायौ ।
सुंदर सुलज सुबंस देखियत, यातैँ स्याम पठायौ ।।
नीकैँ हरि-संदेस कहैगौ, स्रवन सुनत सुख पैहै ।
यह जानति हरि तुरत आइहैँ, यह कहि हृदै सिरैहै ।।
घेरि लिए रथ पास चहूँधा, नंद गोप ब्रजनारी ।
महर लिवाइ गए निज मंदिर, हरषित लियौ उतारी ।।
अरघ देत भीतर तिहिँ लीन्हौ, धनि धनि दिन कहि आज ।
धनि धनि सूर उपँगसुत आए, मुदित कहत ब्रजराज ।।३२।।

कबहुँ सुधि करत गुपाल हमारी ।
पूछत पिता नंद ऊधौ सौँ, अरु जसुदा महतारी ।।
बहुतै चूक परी अनजानत, कहा अबकैँ पछिताने ।
बासुदेव घर भीतर आए, मैँ अहीर करि जाने ।।
पहिलैँ गर्ग कह्यौ हुतौ हमसौँ, संग दुःख गयौ भूल ।
सूरदास स्वामी के बिछुरैँ, राति दिवस भयौ सूल ।।३३।।

कह्यौ कान्ह सुनि जसुदा मैया ।
आवहिँगे दिन चारि पाँच मैँ, हम हलधर दोउ भैया ।।
मुरली बेँत बिषान हमारौ, कहूँ अबेर सबेरौ ।
मति लै जाइ चुराइ राधिका, कछुव खिलौना मेरौ ।।

जा दिन तैँ हम तुम सौँ बिछुरे, काहु न कह्यौ कन्हैया।
प्रात न कियौ कलेऊ कबहूँ, साँझ न पय पियौ धैया॥
कहा कहौँ कछु कहत न आवै, जननी जो दुख पायौ।
अब हमसौँ बसुदेव देवकी, कहत आपनौ जायौ॥
कहिऐ कहा नंद बाबा सौँ, बहुत निठुर मन कीन्हौ।
सूर हमहिँ पहुँचाइ मधुपुरी, बहुरि न सोधौ लीन्हौ।३४॥

हमतैँ कछु सेवा न भई।
धोखैँ ही धोखैँ जु रहे हम, जाने नाहिँ त्रिलोकमई॥
चरन पकरि कर बिनती करिबौ, सब अपराध छमा कीबे।
ऐसौ भाग होइगौ कबहूँ, स्याम गोद पुनि मैँ लीबे॥
कहै नंद आगैँ ऊधौ के, एक बेर दरसन दीबे।
सूरदास स्वामी मिलि अबकैँ, सबै दोष निज मन कीबे॥३५॥

ऊधौ कहौ साँची बात।
दधि, मह्यौ नवनीत माधव, कौन के घर खात॥
किन सखा सँग संग लीन्हे, गहे लकुटी हाथ।
कौन की गैयाँ चरावत, जात को धौँ साथ॥
कौन गोपी कूल-जमुना, रहत गहि-गहि घाट।
दान हठ कै लेत कापै, रोकि किनकी बाट॥
कौन ग्वालनि साथ भोजन, करत किनतैँ बात।
कौन कैँ माखन चुरावन, जात उठिकै प्रात॥
इतौ बूझत माइ जसुमति, परी मुरछित गात।
सूरदास किसोर मिलवहु, मेटि हिय की तात॥३६॥

उद्धव का गोपियों की पाती देना

ब्रज घर-घर सब होति बधाइ।
कंचन कलस दूब दधि रोचन लै वृंदाबन आइ॥
मिलि ब्रजनारि तिलक सिर कीनौ, करि प्रदच्छिना तासु।
पूछत कुसल नारि-नर हरषत, आए सब ब्रज-बासु॥
सकसकात तन धक धकात उर, अकबकात सब ठाढ़े।
सूर उपँग-सुत बोलत नाहीँ, अति हिरदै ह्वै गाढ़े॥३७॥

ऊधौ कहौ हरि कुसलात।
कह्यौ आवन किधौँ नाहीँ, बोलिऐ मुख बात॥

एक छिन जुग जात हमकौं, बिनु सुने हरि प्रीति।
आपु आए कृपा कीन्ही, अब कहौ कछु नीति ॥
तब उपँग सुत सबनि बोले, सुनौ श्रीमुख जोग।
सूर सुनि सब दौरि आईं, हटकि दीन्हौ लोग ॥३८॥

गोपी सुनहु हरि संदेस।
गए सँग अक्रूर मधुबन, हत्यौ कंस नरेस ॥
रजक मार्‍यौ बसन पहिरे, धनुष तोर्‍यौ जाइ।
कुवलया चानूर मुष्टिक, दिए धरनि गिराइ ॥
मातु पितु के बंद छोरे, बासुदेव कुमार।
राज दीन्हौ उग्रसेनहिँ, चौंर निज कर ढार।
कह्यौ तुमकौं ब्रह्म ध्यावन, छाँड़ि बिषय बिकार।
सूर पाती दई लिखि मोहिँ, पढ़ौ गोप-कुमारि ॥३९॥

पाती मधुबन ही तैं आई।
सुंदर स्याम आपु लिखि पठई, आइ सुनौ री माई ॥
अपने अपने गृह तैं दौरीं, लै पाती उर लाई।
नैननि निरखि निमेष न खंडित प्रेम-तृषा न बुझाई ॥
कहा करौं सूनौ यह गोकुल, हरि बिनु कछु न सुहाई।
सूरदास ब्रज कौन चूक तैं, स्याम सुरति बिसराई ॥४०॥

निरखतिं अंक स्याम सुंदर के बार बार लावतिं लै छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गइ स्याम स्याम जू की पाती ॥
गोकुल बसत नंदनंदन के, कबहुँ बयारि न लागी ताती।
अरु हम उती कह कहैं ऊधौ, जब सुनि बेनु नाद सँग जाती ॥
उनकैं लाड़ बदति नहिँ काहूँ, निसि दिन रसिक-रास-रस राती।
प्रान-नाथ तुम कबहि मिलौगे, सूरदास-प्रभु बाल-सँघाती ॥४१॥

पाती मधुबन तैं आई।
ऊधौ हरि के परम सनेही, ताकैं हाथ पठाई ॥
कोउ पढ़ति, कोउ धरित नैन पर, काहूँ हृदै लगाई।
कोउ पूछति फिरि फिरि ऊधौ कौं आपुन लिखी कन्हाई ?
बहुरौ दई फेरि ऊधौ कौं, तब उन बाँचि सुनाई।
मन मैं ध्यान हमारौ राख्यौ, सूर सदा सुखदाई ॥४२॥

लिखि आई ब्रजनाथ की छाप ।
ऊधौ बाँधे फिरत सीस पर, बाँचत आवै ताप ॥
उलटी रीति नंदनंदन की, घर-घर भयौ संताप ।
कहियौ जाइ जोग आराधैं, अबगति अकथ अमाप ॥
हरि आगैं कुबिजा अधिकारिनि, को जीवै इहिँ दाप ।
सूर सँदेस सुनावन लागे, कहौ कौन यह पाप ॥४३॥

कोउ ब्रज बाँचत नाहिँन पाती ।
कत लिखि-लिखि पठवत नँद-नंदन कठिन बिरह की काँती ॥
नैन सजल कागद अति कोमल, कर अँगुरी अति ताती ।
परसैं जरै, बिलोकैं भीँजै, दुहूँ भाँति दुख छाती ॥
को बाँचै ये अंक सूर-प्रभु कठिन मदन-सर-घाती ।
सब सुख लै गए स्याम मनोहर, हमकौं दुख दै थाती ॥४४॥

उधौ कहा करैं लै पाती ॥
जौ लौं मदनगुपाल न देखैं, बिरह जरावत छाती ॥
निमिष निमिष मोहि बिसरत नाहीँ सरद सुहाई राती ।
पीर हमारी जानत नाहीँ, तुम हौ स्याम सँघाती ॥
यह पाती लै जाहु मधुपुरी, जहँ वै बसैं सुजाती ।
मन जु हमारे उहाँ लै गए, काम कठिन सर घाती ॥
सूरदास-प्रभु कहा चहत हैं, कोटिक बात सुहाती ।
एक बेर मुख बहुरि दिखावहु, रहैं चरन रज-राती ॥४५॥

भ्रमर गीत

इहिँ अंतर मधुकर इक आयौ ।
निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै, सुंदर सब्द सुनायौ ॥
पूछन लागीँ ताहि गोपिका, कुबिजा तोहिँ पठायौ ।
कीधौं सूर स्याम सुंदर कौं, हमैं सँदेसौ लायौ ॥४६॥

(मधुप तुम) कहौ कहाँ तैं आए हौ ।
जानति हौं अनुमान आपनै, तुम जदुनाथ पठाए हौ ॥
वैसेइ बसन, बरन तन सुंदर, वेइ भूषन सजि ल्याए हौ ।
लै सरबसु सँग स्याम सिधारे, अब का पर पहिराए हौ ॥
अहो मधुप एकै मन सबकौ, सु तौ उहाँ लै छाए हौ ।
अब यह कौन सयान बहुरि ब्रज, ता कारन उठि धाए हौ ॥

मधुबन की मानिनी मनोहर, तहीँ जात जहँ भाए हौ।
सूर जहाँ लौँ स्याम गात हैँ, जानि भले करि पाए हौ ॥४७॥

रहु रे मधुकर मधु मतवारे।
कौन काज या निरगुन सौँ, चिर जीवहु कान्ह हमारे ॥
लोटत पीत पराग कीच मैं, नीच न अंग सँम्हारे।
बारंबार सरक मदिरा की, अपरस रटत उघारे ॥
तुम जानत हौ वैसी ग्वारिनि, जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबहिनि बिरमावत, जेते आवत कारे ॥
सुंदर बदन कमल-दल लोचन, जसुमति नंद-दुलारे।
तन मन सूर अरपि रहीँ स्यामहि, कापै लेहिँ उधारे ॥४८॥

मधुकर हम न होहिं वै बेलि।
जिन भजि तजि तुम फिरत और रँग, करन कुसुम-रस केलि ॥
बारे तैँ बर बारि बढ़ी हैँ, अरु पोषी पिय पानि।
बिनु पिय परस प्रात उठि फूलत, होति सदा हित हानि ॥
ये बेली बिरहीँ बृंदावन, उरझीँ स्याम तमाल।
प्रेम-पुहुप-रस बास हमारे, बिलसत मधुप गोपाल ॥
जोग समीर धीर नहिँ डोलतिँ, रूप डार दृढ़ लागीँ।
सूर पराग न तजतिँ हिए तैँ, श्री गुपाल अनुरागीँ ॥४९॥

उद्धव-गोपी संवाद

पहला संवाद

सुनौ गोपी हरि कौ संदेस।
करि समाधि अंतर गति ध्यावहु, यह उनकौ उपदेस ॥
वै अविगत अविनासी पूरन, सब-घट रहे समाइ।
तत्त्व ज्ञान बिनु मुक्ति नहीँ है, बेद पुराननि गाइ ॥
सगुन रूप तजि निरगुन ध्यावहु, इक चित इक मन लाइ।
वह उपाइ करि बिरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आइ ॥
दुसह सँदेस सुनत माधौ कौ, गोपी जन बिलखानी।
सूर बिरह की कौन चलावै, बूड़तिँ मनु बिनु पानी ॥५०॥

परी पुकार द्वार गृह-गृह तैँ, सुनौ सखी इक जोगी आयौ।
पवन सधावन, भवन छुड़ावन, रवन-रसाल, गोपाल पठायौ ॥

आसन बाँधि, परम ऊरध चित, बनत न तिनहिँ कहा हित ल्यायौ ।
कनक बेलि, कामिनि ब्रजबाला, जोग अगिनि दहिबे कौं धायौ ॥
भव-भय हरन, असुर मारन हित, कारन कान्ह मधुपुरी छायौ ।
जादव मैं ब्रज एकौ नाहीँ, काहैँ उलटी जस बिथरायौ ॥
सुथल जु स्याम थाम मैँ बैठौ, अबलनि प्रति अधिकार जनायौ ।
सूर बिसारी प्रीति साँवरे, भली चतुरता जगत हँसायौ ॥२१॥

देन आए ऊधौ मत नीकौ ।
आवहु री मिलि सुनहु सयानी, लेहु सुजस कौ टीकौ ॥
तजन कहत अंबर आभूषन, गेह नेह सुत ही कौ ।
अंग भस्म करि सीस जटा धरि, सिखवत निरगुन फीकौ ॥
मेरे जान यहै जुवतिनि कौ, देत फिरत दुख पी कौ ।
ता सराप तैँ भयौ स्याम तन, तउ न गहत डर जी कौ ॥
जाकी प्रकृति परी जिय जैसी, सोच न भली बुरी कौ ।
जैसैँ सूर ब्याल रस चाखैँ, मुख नहिँ होत अमी कौ ॥२२॥

प्रकृति जो जाकैँ अंग परी ।
स्वान पूँछ कोउ कोटिक लागै, सूधी कहुँ न करी ॥
जैसैँ काग भच्छ नहिँ छाँड़ै, जनमत जौन घरी ।
धोए रंग जात नहिँ कैसेहुँ, ज्यौँ कारी कमरी ॥
ज्यौँ अहि डसत उदर नहिँ पूरत, ऐसी धरनि धरी ।
सूर होइ सो होइ सोच नहिँ, तैसेइ एऊ री ॥२३॥

समुझि न परति तिहारी ऊधौ ।
ज्यौँ त्रिदोष उपजैँ जक लागत, बोलत बचन न सूधौ ॥
आपुन कौ उपचार करौ अति तब औरनि सिख देहु ।
बड़ौ रोग उपज्यौ है तुमकौँ भवन सबारैँ लेहु ॥
ह्याँ भेषज नाना भाँतिन के, अरु मधु-रिपु से बैद ।
हम कातर डरपतिँ अपनैँ सिर, यह कलंक है खेद ॥
साँची बात छाँड़ि अलि तेरी, झूठी को अब सुनिहै ।
सूरदास मुक्ताहल भोगी, हंस ज्वारि क्यौँ चुनिहै ॥२४॥

ऊधौ हम आजु भईँ बड़ भागी ।
जिन अँखियनि तुम स्याम बिलोके, ते अँखियाँ हम लागीँ ॥

जैसे सुमन बास लै आवत, पवन मधुप अनुरागी।
अति आनंद होत है तैसैं, अंग-अंग सुख रागी॥
ज्यौं दरपन मैं दरस देखियत, दृष्टि परम रुचि लागी।
तैसैं सूर मिले हरि हमकौं, बिरह बिथा तन त्यागी॥९५॥

(अलि हौं) कैसैं कहौं हरि के रूप रसहिं।
अपने तन मैं भेद बहुत बिधि, रसना जानै न नैन दसहिं॥
जिन देखे ते आहिं बचन बिनु, जिनहिं बचन दरसन न तिसहिं।
बिनु बानी ये उमँगि प्रेम जल, सुमिरि-सुमिरि वा रूप जसहिं॥
बार-बार पछितात यहै कहि, कहा करौं जो बिधि न बसहिं।
सूर सकल अंगनि की यह गति, क्यौं समुझावैं छपद पसुहिं॥९६॥

हम तौ सब बातनि सचु पायौ।
गोद खिलाइ पिवाइ देह पय, पुनि पालनैं झुलायौ॥
देखति रही फनिग की मनि ज्यौं, गुरुजन ज्यौं न भुलायौ।
अब नहिं समुझति कौन पाप तैं, बिधना सो उलटायौ॥
बिनु देखैं पल-पल नहिं छिन-छिन, ये ही चित ही चायौ।
अबहिं कठोर भए ब्रजपति-सुत, रोवत मुँह न धुवायौ॥
तब हम दूध दही के कारन, घर-घर बहुत खिझायौ।
सो अब सूर प्रगट ही लाग्यौ, योगऽरु ज्ञान पठायौ॥९७॥

मधुकर कहिऐ काहि सुनाइ।
हरि बिछुरत हम जिते सहे दुख, जिते बिरह के घाइ॥
बरु माधौ मधुबन ही रहते, कत जसुदा कैं आए।
कत प्रभु गोप-बेष ब्रज धरि कै, कत ये सुख उपजाए॥
कत गिरि धर्‌यौ, इंद्र मद मेट्यौ, कत बन रास बनाए।
अब कहा निठुर भए अबलनि कौं, लिखि लिखि जोग पठाए॥
तुम परबीन सबै जानत हौ, तातैं यह कहि आई।
अपनी को चालै सुनि सूरज, पिता जननि बिसराई॥९८॥

दूसरा संवाद

जानि करि बावरी जनि होहु।
तत्व भजैं वैसी ह्वै जैहौ, पारस परसैं लोहु॥
मेरौ बचन सत्य करि मानौ, छाँड़ौ सबकौ मोहु।
तौ लगि सब पानी की चुपरी, जौ लगि अस्थित दोहु॥

अरे मधुप ! बातैं ये ऐसी, क्यौं कहि आवतिं तोह ।
सूर सुबस्ती छाड़ि परम सुख, हमैं बतावत खोह ॥५६॥

ऊधौ हरि गुन हम चकडोर ।
गुन सौं ज्यौं भावै त्यौं फेरौ, यहै बात कौ ओर ॥
पैंड़ पैंड़ चलियै तो चलियै, ऊबट रपटै पाइँ ।
चकडोरी की रीति यहै फिरि, गुन हीं सौं लपटाइ ॥
सूर सहज गुन ग्रंथि हमारैं, दई स्याम उर माहिँ ।
हरि के हाथ परे तौ छूटै, और जतन कछु नाहिँ ॥६०॥

उलटी रीति तिहारी ऊधौ, सुनै सो ऐसी को है ।
अलप बयस अबला अहीरि सठ तिनहिँ जोग कत सोहै ॥
बूची खुभी, आँधरी काजर, नकटी पहिरै बेसरि ।
मुड़ली पटिया पारौ चाहै, कोढ़ी लावै केसरि ॥
बहिरी पति सौं मतौ करै तौ, तैसोइ उत्तर पावै ।
सो गति होइ सबै ताकी जो, ग्वारिनि जोग सिखावै ॥
सिखई कहत स्याम की बतियाँ, तुमकौं नाहीं दोष ।
राज काज तुम तैं न सरैगौ, काया अपनी पोष ॥
जाते भूलि सबै मारग मैं, इहाँ आनि का कहते ।
भली भई सुधि रही सूर, नतु मोह धार मैं बहते ॥६१॥

अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी ।
देख्यौ चाहतिं कमलनैन कौं निसि-दिन रहतिं उदासी ॥
आए ऊधौ फिरि गए आँगन, डारि गए गर फाँसी ।
केसरि तिलक मोतिनि की माला, बृंदावन के बासी ॥
काहू के मन की कोउ जानत, लोगनि के मन हाँसी !
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, करवत लैहौं कासी ॥६२॥

जब तैं सुंदर बदन निहारयौ ।
ता दिनतें मधुकर मन अटक्यौ, बहुत करी निकरै न निकारयौ ॥
मातु, पिता, पति, बंधु, सुजन नहिँ, तिनहूँ कौ कहिबौ सिर धारयौ ।
रही न लोक लाज मुख निरखत, दुसह क्रोध फीकौ करि डारयौ ॥
ह्वैबौ होइ सु होइ कर्मवस, अब जी कौ सब सोच निवारयौ ।
दासी भईं जु सूरदास-प्रभु, भलौ पोच अपनौ न बिचारयौ ॥६३॥

और सकल अंगनि तैं ऊधौ, अँखियाँ अधिक दुखारी।
अतिहिँ पिराति सिराति न कबहूँ, बहुत जतन करि हारी॥
मग जोवत पलकौ नहिँ लावतिँ, बिरह बिकल भईँ भारी।
भरि गइ बिरह बयारि दरस बिनु, निसि दिन रहतिँ उघारी॥
ते अलि अब ये ज्ञान सलाकैं, क्यौं सहि सकतिँ तिहारी।
सूर सु अंजन आँजि रूप रस, आरति हरहु हमारी॥६४॥

उपमा नैन न एक रही।
कवि जन कहत कहत सब आए, सुधि कर नाहिँ कही॥
कहि चकोर बिधु मुख बिनु जीवत, भ्रमर नहीं उड़ि जात।
हरि-मुख कमल कोष बिछुरे तैं, ठाले कत ठहरात॥
ऊधौ बधिक ब्याध ह्वै आए, मृग सम क्यौं न पलात।
भागि जाहिँ बन सघन स्याम मैं, जहाँ न कोऊ घात॥
खंजन मन-रंजन न होहिँ ये, कबहुँ नहीं अकुलात।
पंख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात॥
प्रेम न होइ कौन बिधि कहियै, झूठैं हीँ तन आड़त।
सूरदास मीनता कछू इक, जल भरि कबहुँ न छाँड़त॥६५॥

ऊधौ अँखियाँ अति अनुरागी।
इकटक मग जोवतिँ अरु रोवतिँ, भूलेहु पलक न लागी॥
बिनु पावस पावस करि राखी, देखत हौ बिदमान।
अब धौं कहा कियौ चाहत हौ, छाँड़ौ निरगुन ज्ञान॥
तुम हौ सखा स्याम सुंदर के, जानत सकल सुभाइ।
जैसैं मिलैं सूर के स्वामी, सोई करहु उपाइ॥६६॥

सब खोटे मधुबन के लोग।
जिनके संग स्याम सुंदर सखि, सीखे हैं अपजोग॥
आए हैं ब्रज के हित ऊधौ, जुवतिनि कौ लै जोग।
आसन, ध्यान नैन मूँदे सखि, कैसैं कढ़ै वियोग॥
हम अहीरि इतनी का जानैं, कुबिजा सौं संजोग,
सूर सुवैद कहा लै कीजै, कहैं न जानै रोग॥६७॥

मधुबन लोगनि को पतिआइ।
मुख औरै अंतरगति औरै, पतियाँ लिखि पठवत जु बनाइ॥

ज्यौं कोइल-सुत काग जियावै, भाव भगति भोजन जु खवाइ।
कुहुकि कुहुकि आऐं बसंत रितु, अंत मिलै अपने कुल जाइ॥
ज्यौं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, बहुरि न बूझै बातैं आइ।
सूर जहाँ लगि स्याम गात हैं, तिनसौं कीजै कहा सगाइ॥६८॥

आए जोग सिखावन पाँड़े।
परमारथी पुराननि लादे, ज्यौं बनजारे टाँड़े।
हमरे गति-पति कमल-नयन की, जोग सिखैं ते राँड़े।
कहौ मधुप कैसे समाहिंगे, एक म्यान दो खाँड़े॥
कहु षट्पद कैसैं खैयतु है हाथिनि कैं सँग गाँड़े।
काकी भूख गई बयारि भषि, बिना दूध घृत माँड़े।
काहे कौं झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डाँड़े।
सूरदास तीनौ नहिं उपजत, धनिया, धान कुम्हाँड़े॥६९॥

तीसरा संवाद

ज्ञान बिना कहुँवै सुख नाहीं।
घट घट ब्यापक दारु अगिनि ज्यौं, सदा बसै उर माहीं॥
निरगुन छाँड़ि सगुन कौं दौरतिं, सु धौं कहौ किहिं पाहीं।
तत्व भजौ जो निकट न छूटै, ज्यौं तनु तैं परछाहीं॥
तिहि तैं कहौ कौन सुख पायौ, जिहिं अब लौं अवगाहीं।
सूरदास ऐसैं करि लागत, ज्यौं कृषि कीन्हे पाही॥७०॥

ऊधौ कही सु फेरि न कहिऐ।
जौ तुम हमैं जिवायौ चाहत, अनबोले ह्वै रहिऐ॥
प्रान हमारे घात होत हैं, तुम्हरे भाऐं हाँसी।
या जीवन तैं मरन भलौ है, करवत लैहैं कासी॥
पूरब प्रीति सँभारि हमारी, तुमकौं कहन पठायौ।
हम तौ जरि बरि भस्म भईं तुम, आनि मसान जगायौ॥
कै हरि हमकौं आनि मिलावहु, कै लै चलिये साथै।
सूर स्याम बिनु प्रान तजति हैं, दोष तुम्हारे माथैं॥७१॥

घर ही के बाढ़े रावरे।
नाहिन मीत-वियोग बस परे, अनब्यौगे अलि बावरे॥
बरु मरि जाइ चरैं नहिं तिनुका, सिंह को यहै स्वभाव रे।
स्रवन सुधा-मुरली के पोषे, जोग जहर न खवाव रे॥

ऊधौ हमहिँ सीख कह देहौ, हरि बिनु अनत न ठाँव रे।
सूरजदास कहा लै कीजै, थाही नदिया नाव रे ॥७२॥

हमकौँ हरि की कथा सुनाउ।
ये आपनी ज्ञान गाथा अलि, मथुरा ही लै जाउ ॥
नागरि नारि भलैँ समझैँगी, तेरौ बचन बनाउ।
पा लागौँ ऐसी इन बातनि, उनही जाइ रिझाउ ॥
जौ सुचि सखा स्याम सुंदर कौ, अरु जिय मैँ सति भाउ।
तौ बारक आतुर इन नैननि, हरि मुख आनि दिखाउ ॥
जौ कोउ कोटि करै कैसिहुँ बिधि, बल बिद्या व्यवसाउ।
तउ सुनि सूर मीन कौँ जल बिनु, नाहिँन और उपाउ ॥७३॥

ऊधौ बानी कौन ढरैगौ, तोसौँ उत्तर कौन करैगौ।
या पाती के देखत हीँ अब, जल सावन कौ नैन ढरैगौ ॥
बिरह-अगिनि तन जरत निसा-दिन, करहिँ छुवत तुव जोग जरैगौ।
नैन हमारे सजल हैँ तारे, निरखत ही तेरौ ज्ञान गरैगौ ॥
हमहिँ वियोगऽरु सोग स्याम कौ, जोग रोग सौँ कौन अरैगौ।
दिन दस रहौ जु गोकुल महियाँ, तब तेरौ सब ज्ञान मरैगौ ॥
सिंगी सेल्ही भसमऽरु कंथा, कहि अलि काके गरैँ परैगौ।
जे ये लट हरि सुमननि गूँधी, सीस जटा अब कौन धरैगौ ॥
जोग सगुन लै जाहु मधुपुरी, ऐसै निरगुन कौन तरैगौ।
हमहिँ ध्यान पल छिन मोहन कौँ, बिनु दरसन कछुवै न ररैगौ ॥
निसि दिन सुमिरन रहत स्याम कौ, जोग अगिनि मैँ कौन जरैगौ।
कैसैँहु प्रेम नेम मोहन कौँ, हित चित तैँ हमरैँ न टरैगौ ॥
नित उठि आवत जोग सिखावन, ऐसी बातनि कौन भरैगौ।
कथा तुम्हारी सुनत न कोऊ, ठाढ़े ही अब आप ररैगौ ॥
बादिहिँ रटत उठत अपने जिय, को तोसौँ बेकाज लरैगौ।
हम अँग अंग स्याम रँग भीनी, को इन बातनि सूर डरैगौ ॥७४॥

ऊधौ तुम ब्रज की दसा बिचारौ।
ता पाछैँ यह सिद्धि आपनी, जोग कथा बिस्तारौ ॥
जा कारन तुम पठए माधौ, सो सोचौ जिय माहीँ।
केतिक बीच बिरह परमारथ, जानत हौ किधौँ नाहीँ ॥

तुम परवीन चतुर कहियत हौ, संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ, फिरि फिरि कहा कहत हौ॥
वह मुसकान मनोहर चितवनि, कैसेँ उर तैं टारौं।
जोग जुक्ति अरु मुक्ति परम निधि, वा मुरली पर वारौं॥
जिहिँ उर कमल-नयन जु बसत हैं, तिहिँ निरगुन क्यौं आवै।
सूरदास सो भजन बहाऊँ, जाहि दूसरौ भावै॥७५॥

ऊधौ हरि काहे के अंतरजामी।
अजहुँ न आइ मिलत इहिँ अवसर, अवधि बतावत लामी॥
अपनी चोप आइ उड़ि बैठत, अलि ज्यौं रस के कामी।
तिनकौ कौन परेखौ कीजै, जे हैं गरुड़ के गामी॥
आई उघरि प्रीति कलई सी, जैसी खाटी आमी।
सूर इते पर अनखनि मरियत, ऊधौ पीवत मामी॥७६॥

निरगुन कौन देस कौ बासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, बूझतिँ साँच न हाँसी॥
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी ?
कैसे बरन, भेष है कैसौ, किहिँ रस मैं अभिलाषी ?
पावैगौ पुनि कियौ आपनौ, जो रे करैगौ गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ बावरौ, सूर सबै मति नासी॥७७॥

कहियौ ठकुराइति हम जानी।
अब दिन चारि चलहु गोकुल मैं, सेवहु आइ बहुरि रजधानी॥
हमकौं हँसि बहुत देखन की संग लियैं कुबिजा पटरानी।
पहुनाई ब्रज कौ दधि माखन, बड़ौ पलँग, अरु तातौ पानी॥
तुम जनि डरौ उखल तौ तोज्यौ, दाँवरिहू अब भई पुरानी।
वह बल कहाँ जसोमति कैं कर, देह रावरैं सोच बुढ़ानी॥
सुरभी बाँटि दई ग्वालनि कौं, मोर-चंद्रिका सबै उड़ानी।
सूर नंद जू के पालागौं, देखहु आइ राधिका स्यानी॥७८॥

सुनि सुनि ऊधौ आवति हाँसी।
कहँ वै ब्रह्मादिक के ठाकुर, कहाँ कंस की दासी॥
इंद्रादिक की कौन चलावै, संकर करत खवासी।
निगम आदि बंदीजन जाके, सेष सीस के बासी॥

जाकैं रमा रहति चरननि तर, कौन गनै कुबिजा सी ।
सूरदास-प्रभु दृढ़ करि बाँधे, प्रेम-पुंज की पासी ॥७६॥

काहे कौं गोपीनाथ कहावत ।
जौ मधुकर वै स्याम हमारे, क्यौं न इहाँ लौं आवत ॥
सपने की पहिचानि मानि जिय हमहिँ कलंक लगावत ।
जौं पै कृष्न कूबरी रीझे सोइ किन बिरद बुलावत ॥
ज्यौं गजराज काज के औरै, औरै दसन दिखावत ।
ऐसैं हम कहिये सुनिबे कौं, सूर अनत बिरमावत ॥८०॥

साँवरौ साँवरी रैनि कौ जायौ ।
आधी राति कंस के त्रासनि, बसुद्यौ गोकुल ल्यायौ ॥
नंद पिता अरु मातु जसोदा, माखन मही खवायौ ।
हाथ लकुट कामरि काँधे पर, बछरुन साथ डुलायौ ॥
कहा भयौ मधुपुरी अवतरे, गोपीनाथ कहायौ ।
ब्रज बधुअनि मिलि साँट कटीली, कपि ज्यौं नाच नचायौ ॥
अब लौं कहाँ रहे हो ऊधौ, लिखि-लिखि जोग पठायौ ।
सूरदास हम यहै परेखौ, कुबरी हाथ बिकायौ ॥८१॥

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै ।
मूरी के पातनि के बदलैं, को मुक्ताहल दैहै ॥
यह ब्यौपार तुम्हारौ ऊधौ, ऐसैं ही धर्‌यौ रैहै ।
जिन पै तैं लै आए ऊधौ, तिनहिँ के पेट समैहै ॥
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी, को अपने मुख खैहै ।
गुन करि मोही सूर सावरैं, को निरगुन निरबैहै ॥८२॥

मीठी बातनि मैं कहा लीजै ।
जौ पै वै हरि होहिँ हमारे, करन कहैं सोइ कीजै ॥
जिन मोहन अपनैं कर काननि, करनफूल पहिराए ।
तिन मोहन माटी के मुद्रा, मधुकर हाथ पठाए ॥
एक दिवस बेनी बृंदाबन, रचि पचि बिबिध बनाइ ।
ते अब कहत जटा माथे पर, बदलौ नाम कन्हाइ ॥
लाइ सुगंध बनाइ अभूषन, अरु कीन्ही अरधंग ।
सो वै अब कहि-कहि पठवत हैं भसम चढ़ावन अंग ॥

हम कहा करैं दूरि नँद-नंदन, तुम जु मधुप मधुपाती।
सूर न होहिँ स्याम के मुख की, जाहु न जारहु छाती ॥८३॥

ऊधौ तुम हौ निकट के बासी।
यह निरगुन लै तिनहिँ सुनावहु, जे मुड़िबा बसैं कासी ॥
मुरलीधरन सकल अँग सुंदर, रूप सिंधु की रासी।
जोग बटोरे लिए फिरत हौ, ब्रजवासिन की फाँसी ॥
राजकुमार भलैं हम जाने, घर मैं कंस की दासी।
सूरदास जदुकुलहिँ लजावत, ब्रज मैं होति है हँसी ॥८४॥

जा दिन तैं गोपाल चले।
ता दिन तैं ऊधौ या ब्रज के, सब स्वभाव बदले ॥
घटे अहार बिहार हरष हित, सुख सोभा गुन गान।
ओज तेज सब रहित सकल बिधि, आरति असम समान ॥
बाढ़ी निसा, बलय आभूषन, उर-कंचुकी उसास।
नैननि जल अंजन अंचल प्रति, आवन अवधि की आस ॥
अब यह दसा प्रगट या तन की, कहियौ जाइ सुनाइ।
सूरदास प्रभु सो कीजौ जिहिँ, बेगि मिलहिँ अब आइ ॥८५॥

हम तौ कान्ह केलि की भूखी।
कहा करैं लै निर्गुन तुम्हरौ, बिरहिनि बिरह बिदूषी ॥
कहियै कहा यहै नहिँ जानत, कहौ जोग किहि जोग।
पालागौं तुमहीं से वा पुर, बसत बावरे लोग ॥
चंदन, अभरन, चीर चारु बर, नेकु आपु तन कीजै।
दंड, कमंडल, भसम, अधारी, तब जुवतिनि कौं दीजै ॥
सूर देखि दृढ़ता गोपिन की, ऊधौ दृढ़ ब्रत पायौ।
करी कृपा जदुनाथ मधुप कौं, प्रेमहिँ पढ़न पठायौ ॥८६॥

चौथा संवाद

गोपी सुनहु हरि संदेस।
कह्यौ पूरन ब्रह्म ध्यावहु, त्रिगुन मिथ्या भेष ॥
मैं कहौं सो सत्य मानहु, सगुन डारहु नाखि।
पंच त्रय-गुन सकल देही, जगत ऐसौ भाषि ॥

ज्ञान बिनु नर-मुक्ति नाहीँ, यह विषय संसार ।
रूप-रेख, न नाम जल थल, बरन अबरन सार ॥
मातु पितु कोउ नाहिँ नारी, जगत मिथ्या लाइ ।
सूर सुख-दुख नहीँ जाकैँ, भजौ ताकौँ जाइ ॥८७॥

ऐसी बात कहौ जनि ऊधौ ।
कमलनैन की कानि करति हैँ, आवत बचन न सूधौ ॥
बातनि ही उड़ि जाहिँ और ज्यौँ, त्यौँ नाहीँ हम काँची ।
मन, बच, कर्म सोधि एकै मत, नंद-नँदन रँग राँची ॥
सो कछु जतन करौ पालागौँ, मिटै हियै की सूल ।
मुरली धरहिँ आनि दिखरावहु, ओढ़े पीत दुकूल ॥
इनहीँ बातनि भए स्याम तनु, मिलवत हौ गढ़ि छोलि ।
सूर बचन सुनि रह्यौ ठगौसौ, बहुरि न आयौ बोलि ॥८८॥

फिरि फिरि कहा बनावत बात ।
प्रात काल उठि खेलत ऊधौ घर-घर माखन खात ॥
जिनकी बात कहत तुम हमसौँ, सो है हमसौँ दूरि ।
ह्याँ हैँ निकट जसोदा-नंदन, प्रान सजीवन मूरि ॥
बालक संग लिएँ दधि चोरत, खात खवावत डोलत ।
सूर सीस नीचौ कत नावत, अब काहैँ नहिँ बोलत ॥८९॥

फिरि-फिरि कहा सिखावत मौन ।
बचन दुसह लागत अलि तेरे, ज्यौँ पजरे पर लौन ॥
सृंगी, मुद्रा, भस्म, त्वचा-मृग, अरु अवराधन पौन ।
हम अबला अहीरि सठ मधुकर, धरि जानहिँ कहि कौन ॥
यह मत जाइ तिनहिँ तुम सिखवहु, जिनहिँ आजु सब सोहत ।
सूरदास कहुँ सुनी न देखी, पोत सूतरी पोहत ॥९०॥

ऊधौ हमहिँ न जोग सिखैयै ।
जिहिँ उपदेस मिलैँ हरि हमकौँ, सो ब्रत नेम बतैयै ॥
मुक्ति रहौ घर बैठि आपने, निर्गुन सुनि दुख पैयै ।
जिहिँ सिर केस कुसुम भरि गूँदे, कैसैँ भस्म चढ़ैयै ॥
जानि जानि सब मगन भई हैँ, आपुन आपु लखैयै ।
सूरदास-प्रभु सुनहु नवौ निधि, बहुरि कि इहिँ ब्रज अइयै ॥९१॥

मधुकर स्याम हमारे ईस ।
तिनकौ ध्यान धरेँ निसि बासर, औरहिँ नवै न सीस ॥
जोगिनि जाइ जोग उपदेसहु, जिनके मन दस-बीस ।
एकै चित एकै वह मूरति, तिन चितवतिँ दिन तीस ॥
काहेँ निरगुन ग्यान आपनौ, जित कित डारत खीस ।
सूरदास-प्रभु नंदनँदन बिनु, हमरे को जगदीस ॥१२॥

सतगुरु-चरन भजे बिनु विद्या, कहु कैसैँ कोउ पावै ।
उपदेसक हरि दूरि रहे तैँ, क्यौँ हमरे मन आवै ॥
जो हित कियौ तौ अधिक करहि किन, आपुन आनि सिखावैँ ।
जोग बोझ तैँ चलि न सकैँ तौ, हमहीँ क्यौँ न बुलावैँ ॥
जोग ज्ञान मुनि नगर तजे बरु, सघन गहन बन धावैँ ।
आसन मौन नेम मन संजम, बिपिन मध्य बनि आवैँ ॥
आपुन कहैँ करैँ कछु औरै, हम सबहिनि डहकावैँ ।
सूरदास ऊधौ सौँ स्यामा, अति संकेत जनावै ॥१३॥

ऊधौ मन नहिँ हाथ हमारैँ ।
रथ चढ़ाइ हरि संग गए लै, मथुरा जबहिँ सिधारे ॥
नातरु कहा जोग हम छाँड़हि, अति रुचि कै तुम ल्याए ।
हम तौ झँखतिँ स्याम की करनी, मन लै जोग पठाए ॥
अजहूँ मन अपनौ हम पावैँ, तुम तैँ होइ तौ होइ ।
सूर सपथ हमैँ कोटि तिहारी, कही करैँगी सोइ ।१४।

ऊधौ मन न भए दस बीस ।
एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग, को अवराधै ईस ॥
इंद्री सिथिल भईँ केसव बिनु, ज्यौँ देही बिनु सीस ।
आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिँ कोटि बरीस ॥
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस ।
सूर हमारैँ नंद-नँदन बिनु और, नहीँ जगदीस ॥१५॥

इहिँ उर माखन चोर गड़े ।
अब कैसैँ निकसत सुनि ऊधौ, तिरछे ह्वै जु अड़े ॥
जदपि अहीर जसोदा-नंदन, कैसैँ जात छँड़े ।
ह्वाँ जादौपति प्रभु कहियत हैँ, हमैँ न लगत बड़े ॥

को बसुदेव देवकी नंदन, को जानै को बूझै।
सूर नंदनंदन के देखत, और न कोऊ सूझै ॥९६॥

मन मैं रह्यौ नाहिँन ठौर।
नंदनंदन अछत कैसैं, आनियै उर और ॥
चलत चितवत दिवस जागत, स्वप्न सोवत राति।
हृदय तैं वह मदन मूरति, छिन न इत उत जाति ॥
कहत कथा अनेक ऊधौ, लोग लोभ दिखाइ।
कह करौं मन प्रेम पूरन, घट न सिंधु समाइ ॥
स्याम गात सरोज आनन, ललित मृदु मुख हास।
सूर इनकैं दरस कारन, मरत लोचन प्यास ॥९७॥

मधुकर स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियौ तनक चितवनि मैं, चपल नैन की कोर ॥
पकरे हुते हृदय उर अंतर, प्रेम प्रीति कैं जोर।
गए छुँड़ाइ तोरि सब बंधन, दैं गए हँसनि अँकोर ॥
चौंकि परीं जागत निसि बीती, दूत मिल्यौ इक भौंर।
सूरदास-प्रभु सरबस लूट्यौ, नागर नवल-किसोर ॥९८॥

सब दिन एकहिँ से नहिँ होते।
तब अलि ससि सीरौ अब तातौ, भयो बिरह जरि मो तैं ॥
तब षट मास रास-रस-अंतर, एकनु निमिष न जाने।
अब औरै गति भई कान्ह बिनु पल पूरन जुग माने ॥
कहा मति जोग ज्ञान साखा स्रुति ते किन कहे घनेरे।
अब कछु और सुहाइ सूर नहिँ, सुमिरि स्याम गुन केरे ॥९९॥

सखी री स्याम सबै इक सार।
मीठे बचन सुहाए बोलत, अंतर जारनहार ॥
भँवर कुरंग काक अरु कोकिल, कपटिन की चटसार।
कमलनैन मधुपुरी सिधारे, मिटि गयौ मंगलचार ॥
सुनहु सखी री दोष न काहू, जो बिधि लिख्यौ लिलार।
यह करतूति उनहिँ की नाहीं, पूरब बिबिध बिचार ॥
कारी घटा देखि बादर की, सोभा देति अपार।
सूरदास सरिता सर पोषत, चातक करत पुकार ॥१००॥

बिलग जनि मानौ ऊधौ कारे।
वह मथुरा काजर की ओबरी, जे आवैं ते कारे॥
तुम कारे सुफलक सुत कारे, कारे कुटिल सँवारे।
कमलनैन की कौन चलावै, सबहिनि मैं मनियारे॥
मानौ नील माट तैं काढ़े, जमुना आइ पखारे।
तातैं स्याम भई कालिंदी, सूर स्याम गुन न्यारे॥१०१॥

ऊधौ भली भई ब्रज आए।
बिधि कुलाल कीन्हे काँचे घट ते तुम आनि पकाए॥
रँग दीन्हौ हो कान्ह साँवरैं, अँग-अँग चित्र बनाए।
पातैं गरे न नैन नेह तैं, अवधि अटा पर छाए॥
ब्रज करि अँवा जोग ईंधन करि, सुरति आनि सुलगाए।
फूँक उसास बिरह प्रजरनि सँग, ध्यान दरस सियराए॥
भरे सँपूरन सकल प्रेम-जल, छुवन न काहू पाए।
राज काज तैं गए सूर-प्रभु, नंद-नँदन कर लाए॥१०२॥

जौ पै हिरदै माँझ हरी।
तौ कहि इती अवज्ञा उनपै, कैसैं सही परी॥
तब दावानल दहन न पायौ, अब इहिं बिरह जरी।
उर तैं निकसि नंद नंदन हम, सीतल क्यौं न करी॥
दिन प्रति नैन इंद्र जल बरषत, घटत न एक घरी।
अति ही सीत भीत तन भींजत, गिरि अंचल न धरी॥
कर-कंकन दरपन लै देखौ, इहिं अति अनख मरी।
क्यौं अब जियहिं जोग सुनि सूरज, बिरहिनि बिरह भरी॥१०३॥

ऐसौ जोग न हम पै होइ।
आँखि मूँदि कह पावैं ढूँढ़े, अँधरे ज्यौं टकटोइ॥
भसम लगावत कहत जु हमकौ, अंग कुंकमा धोइ।
सुनि कै बचन तुम्हारे ऊधौ, नैना रावत ओइ॥
कुंतल कुटिल मुकुट कुंडल छबि, रही जु चित मैं पोइ।
सूरज प्रभु बिनु प्रान रहै नहिं, कोटि करौ किन कोइ॥१०४॥

हमसौं उनसौं कौन सगाई।
हम अहीर अबला ब्रजवासी, वै जदुपति जदुराई॥

कहा भयौ जु भए जदुनंदन, अब यह पदवी पाई।
सकुच न आवत घोष बसत की, तजि ब्रज गए पराई॥
ऐसे भए उहाँ जादौपति, गए गोप बिसराई।
सूरदास यह ब्रज कौ नातौ, भूलि गए बलभाई॥१०५॥

तौ हम मानैं बात तुम्हारी।
अपनौ ब्रह्म दिखावहु ऊधौ, मुकुट पितांबर धारी॥
भनिहैं तब ताकौ सब गोपी, सहि रहिहैं बरु गारी।
भूत समान बतावत हमकौं, डारहु स्याम बिसारी॥
जे मुख सदा अँचवत हैं, ते बिष क्यौं अधिकारी।
सूरदास-प्रभु एक अंग पर, रीझि रहीं ब्रजनारी॥१०६॥

ऊधौ जोग बिसरि जनि जाहु।
बाँधौ गाँठि छूटि परिहै कहुँ, फिरि पाछैं पछिताहु॥
ऐसी बहुत अनूपम मधुकर, मरम न जानै और।
ब्रज बनितनि के नहीं काम की, है तुम्हरेई ठौर॥
जो हित करि पठयौ मनमोहन, सो हम तुमकौं दीनौ।
सूरदास ज्यौं बिप्र नारियर, करहीं बंदन कीनौ॥१०७॥

ऊधौ काहे कौं भक्त कहावत।
जु पै जोग लिखि पठयौ हमकौं, तुमहूँ न भस्म चढ़ावत॥
शृंगी मुद्रा भस्म अधारी, हमहीं कहा सिखावत।
कुबिजा अधिक स्याम की प्यारी, ताहिं नहीं पहिरावत॥
यह तौ हमकौं तबहिं न सिखयौ, जब तैं गाइ चरावत।
सूरदास-प्रभु कौं कहियौ अब, लिखि-लिखि कहा पठावत॥१०८॥

(ऊधौ) ना हम बिरहिनि ना तुम दास।
कहत सुनत घट प्रान रहत हैं, हरि तजि भजहु अकास॥
बिरही मीन मरै जल बिछुरैं, छाँड़ि जियन की आस।
दास भाव नहिं तजत पपीहा, बरषत मरत पियास॥
पंकज परम कमल मैं बिहरत, बिधि कियौ नीर निरास।
राजिव रवि कौ दोष न मानत, ससि सौं सहज उदास॥
प्रगट प्रीति दसरथ प्रतिपाली, प्रीतम कैं बनबास।
सूर स्याम सौं दृढ़ ब्रत राख्यौ, मेटि जगत उपहास॥१०९॥

ऊधौ लै चल लै चल ।
जहँ वै सुंदर स्याम बिहारी, हमकौँ तहँ लै चल ।।
आवन-आवन कहि गए ऊधौ, करि गए हमसौँ छल ।
हृदय की प्रीति स्याम जू जानत, कितिक दूरि गोकुल ।।
आपुन जाइ मधुपुरी छाए, उहाँ रहे हिलि मिल ।
सूरदास स्वामी के बिछुरैँ, नैननि नीर प्रबल ।।११०।।

गुप्त मते की बात कहौँ, जो कहौ न काहू आगैँ ।
कै हम जानैँ कै हरि तुमहूँ, इतनी पावहिँ माँगैँ ।।
एक बेर खेलत बृंदाबन, कंटक चुभि गयौ पाइँ ।
कंटक सौँ कंटक लै काढ़्यौ, अपनैँ हाथ सुभाइ ।।
एक दिवस बिहरत बन भीतर, मैँ जु सुनाई भूख ।
पाके फल वै देखि मनोहर, चढ़े कृपा करि रूख ।।
ऐसी प्रीति हमारी उनकी, बसतैँ गोकुल बास ।
सूरदास-प्रभु सब बिसराई, मधुबन कियौ निवास ।।१११।।

ऊधौ जौ हरि हितू तुम्हारे ।
तौ तुम कहियौ जाइ कृपा करि, ए दुख सबै हमारे ।।
तन तरिवर उर स्वास पवन मैँ, बिरह दवा अति जारे ।
नहिँ सिरात नहिँ जात छार ह्वै, सुलगि-सुलगि भए कारे ।
जद्यपि प्रेम उमँगि जल सीँचे, बरषि-बरषि घन हारे ।
जौ सीँचे इहिँ भाँति जतन करि, तौ एतैँ प्रतिपारे ।।
कीर कपोत कोकिला चातक, बधिक बियोग बिडारे ।
क्यौँ जीवैँ इहिँ भाँति सूर प्रभु, ब्रज के लोग बिचारे ।।११२।।

बिलग हम मानैँ ऊधौ काकौ ।
तरसत रहे बसुदेव देवकी, नहिँ हित मातु पिता कौ ।।
काके मातु पिता को काकौ, दूध पियौ हरि जाकौ ।
नंद जसोदा लाड़ लड़ायौ, नाहिँ भयौ हरि ताकौ ।।
कहियौ जाइ बनाइ बात यह, को हित है अबला कौ ।
सूरदास प्रभु प्रीति है कासौँ, कुटिल मीत कुबिजा कौ ।।११३।।

जीवन मुख देखे कौ नीकौ ।
दरस, परस दिन राति पाइयत, स्याम पियारे पी कौ ।।

सूनौ जोग कहा लै कीजै, जहाँ ज्यान है जी कौ।
नैननि मूँदि मूँदि कह देखौ, बँधौ ज्ञान पोथी कौ॥
आछे सुंदर स्याम हमारे, और जगत सब फीकौ।
खाटी मही कहा रुचि मानै, सूर खवैया घी कौ॥११४॥

अपने सगुन गोपालहिँ माई इहिँ बिधि काहैँ देति।
ऊधौ की इन मीठी बातनि, निर्गुन कैसैँ लेति॥
धर्म, अर्थ, कामना सुनावत, सब सुख मुक्ति समेति।
काकी भूख गई मन लाडू, सो देखहु चित चेति॥
जाकौ मोच्छ बिचारत बरनत, निगम कहत हैँ नेति।
सूर स्याम तजि को भुस फटकै, मधुप तुम्हारे हेति॥११५।

पाँचवाँ संवाद

वे हरि सकल ठौर के बासी।
पूरन ब्रह्म अखंडित मंडित, पंडित मुनिनि बिलासी॥
सप्त पताल ऊरध अध पृथ्वी, तल नभ बरुन बयारी।
अभ्यंतर दृष्टी देखन कौँ, कारन रूप मुरारी॥
मन बुधि चित अहँकार दसेंद्रिय प्रेरक थंभनकारी।
ताकैँ काज वियोग बिचारत, ये अबला-ब्रजनारी॥
जाकौँ जैसौ रूप मन रुचै, सो अपबस करि लीजै।
आसन बैसन ध्यान धारना, मन आरोहन कीजै॥
षट दल अठ द्वादस दल निरमल, अजपा जाप जपाली।
त्रिकुटी संगम ब्रह्म द्वार भिदि, यौँ मिलिहैँ बनमाली॥
एकादस गीता स्रुति साखी, जिहिँ बिधि मुनि समुझाए।
ते सँदेस श्रीमुख गोपिनि कौ, सूर सु मधुप सुनाए॥११६॥

ऊधौ हमरी सौँ तुम जाहु।
यह गोकुल पूनौ कौ चंदा, तुम ह्वै आए राहु॥
ग्रह के ग्रसे गुसा परगास्यौ, अब लौँ करि निरबाहु।
सब रस लै नँदलाल सिधारे, तुम पठए बड़ साहु॥
जोग बेचि कै तंदुल लीजै, बीच बसेरे खाहु।
सूरदास जबहीँ उठि जैहौ, मिटिहै मन कौ दाहु॥११७॥

ऊधौ मौन साधि रहे।
जोग कहि पछितात मन-मन, बहुरि कछु न कहे ॥
स्याम कौँ यह नहीँ बूझै, अतिहि रहे खिसाइ ।
कहा मैँ कहि-कहि लजानौ, नार रह्यौ नवाइ ॥
प्रथम ही कहि बचन एकै, रह्यौ गुरु करि मानि ।
सूर-प्रभु मोकौँ पठायौ, यहै कारन जानि ॥११८॥

मधुकर भली करी तुम आए ।
वै बातैँ कहि कहि या दुख मैँ, ब्रज के लोग हँसाए ॥
मोर मुकुट मुरली पीतांबर, पठवहु सौँज हमारी ।
आपुन जटाजूट, मुद्रा धरि, लीजै भस्म अधारी ॥
कौन काज वृंदावन कौ सुख, दही भात की छाक ।
अब वै स्याम कूबरी दोऊ, बने एक ही ताक ॥
वै प्रभु बड़े सखा तुम उनके, जिनकैँ सुगम अनीति ।
या जमुना जल कौ सुभाव यह, सूर बिरह की प्रीति ॥११९॥

काहे कौँ रोकत मारग सूधौ ।
सुनहु मधुप निरगुन कंटक तैँ, राजपंथ क्यौँ रूँधौँ ॥
कै तुम सिखि पठए हौ कुबिजा, कह्यौ स्यामघनहूँ धौँ ।
वेद पुरान सुमृति सब ढूँढ़ौ, जुवतिनि जोग कहूँ धै ॥
ताकौ कहा परेखौ कीजै, जानै छाँछ न दूधौ ।
सूर मूर अक्रूर गयौ लै, ब्याज निबेरत ऊधौ ॥१२०॥

ऊधौ कोउ नाहिँन अधिकारी ।
लै न जाहु यह जोग आपनौ, कत तुम होत दुखारी ॥
यह तौ बेद उपनिषद मत है, महा पुरुष ब्रतधारी ।
हम अबला अहीरि ब्रज-बासिनि, नाहीँ परत सँभारी ॥
को है सुनत कहत हौ कासौँ, कौन कथा बिस्तारी ।
सूर स्याम कैँ संग गयौ मन, अहि काँचुली उतारी ॥१२१॥

वै बातैँ जमुना-तीर की ।
कबहुँक सुरति करत हैँ मधुकर, हरन हमारे चीर की ॥
लीन्हे बसन देखि ऊँचे द्रुम, रबकि चढ़न बलबीर की ।
देखि-देखि सब सखी पुकारतिँ, अधिक जुड़ाई नीर की ॥

दोऊ हाथ जोरि करि माँगैं, ध्वाई नंद अहीर की।
सूरदास-प्रभु सब सुख-दाता, जानत हैं पर पीर की ॥१२२॥

प्रेम न रुकत हमारे बूतैं।
किहिँ गयंद बाँध्यौ सुनि मधुकर, पदुम नाल के काँचे सूतैं ?
सोवत मनसिज आनि जगायौ, पठै सँदेस स्याम के दूतैं।
बिरह-समुद्र सुखाइ कौन बिधि, रंचक जोग अगिनि के लूतैं ॥
सुफलक सुत अरु तुम दोऊ मिलि, लीजै मुकुति हमारे हूतैं।
चाहतिँ मिलन सूर के प्रभु कौं, क्यौं पतियाहिँ तुम्हारे धूतैं ॥१२३॥

ऊधौ सुनहु नैकु जो बात।
अबलनि कौं तुम जोग सिखावत, कहत नहीं पछितात ॥
ज्यौं ससि बिना मलीन कुमुदिनी, रबि बिनुहीं जलजात।
त्यौं हम कमलनैन बिनु देखे, तलफि-तलफि मुरझात ॥
जिन स्रवननि मुरली धुर अँचयौ, मुद्रा सुनत डरात।
जिन अधरनि अमृत-फल चाख्यौ, ते क्यौं कटु फल खात ॥
कुंकुम चंदन घसि तन लावतिँ, तिहिँ न बिभूति सुहात।
सूरदास प्रभु बिनु हम यौं हैं, ज्यौं तरु जीरन पात ॥१२४॥

ऊधौ जोग जोग हम नाहीं।
अबला सार-ज्ञान कह जानैं, कैसैं ध्यान धराहीं ॥
तेई मूँदन नैन कहत हौ, हरि मूरति जिन माहीं।
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हमतैं सुनी न जाहीं ॥
स्रवन चीरि सिर जटा बँधावहु, ये दुख कौन समाहीं।
चंदन तजि अँग भस्म बतावत, बिरह-अनल अति दाहीं ॥
जोगी भ्रमत जाहि लगि भूले, सो तौ है अप माहीं।
सूरस्याम तैं न्यारी न पल-छिन, ज्यौं घट तैं परछाहीं ॥१२५॥

हम तौ नंद-घोष के बासी।
नाम गुपाल जाति कुल गोपक, गोप गुपाल उपासी ॥
गिरिवर धारी गोधन चारी, बृंदावन अभिलाषी।
राजा नंद जसोदा रानी, सजल नदी जमुना सी ॥
मीत हमारे परम मनोहर, कमलनैन सुख-रासी।
सूरदास-प्रभु कहौं कहाँ लौं, अष्ट महा-सिधि दासी ॥१२६॥

यह गोकुल गोपाल-उपासी ।
जे गाहक निरगुन के ऊधौ, ते सब बसत ईस-पुर कासी ॥
जद्यपि हरि हम तजी अनाथ करि, तदपि रहतिँ चरननि रस रासी ।
अपनी सीतलता नहिँ छाँड़त, जद्यपि बिधु भयौ राहु-गरासी ॥
किहिँ अपराध जोग लिखि पठवत, प्रेम भगति तैँ करत उदासी ।
सूरदास ऐसी को बिरहिनि, माँगि मुक्ति छाँड़ै गुन रासी ॥१२७॥

ऐसौ सुनियत द्वै बैसाख ।
देखति नहीँ ब्यौँत जीवे कौ, जतन करौ कोउ लाख ॥
मृगमद मलय कपूर कुमकुमा, केसर मलियै साख ।
जरत अगिनि मैँ ज्यौँ घृत नायौ, तन जरि ह्वै है राख ॥
ता ऊपर लिखि जोग पठावत, खाहु नीम, तजि दाख ।
सूरदास ऊधौ की बतियाँ, सब उड़ि बैठीँ ताख ॥१२८॥

इहिँ बिधि पावस सदा हमारैँ ।
पूरब पवन स्वास उर ऊरध, आनि मिले इकठारैँ ॥
बादर स्याम सेत नैननि मैँ, बरसि आँसु जल ढारैँ ।
अरुन प्रकास पलक दुति दामिनि, गरजनि नाम पियारैँ ॥
चातक दादुर मोर प्रकट ब्रज, बसत निरंतर धारैँ ।
ऊधव ये तब तैँ अटके ब्रज, स्याम रहे हित टारैँ ॥
कहिऐ काहि सुनै कत कोऊ, या ब्रज के ब्यौहारैँ ।
तुमही सौँ कहि-कहि पछितानी, सूर बिरह के धारैँ ॥१२९॥

ऊधौ कोकिल कूजत कानन ।
तुम हमकौँ उपदेस करत हौ, भस्म लगावन आनन ॥
औरौ सिखी सखा सँग लै लै, टेरत चढ़े पखानन ।
बहुरौ आइ पपीहा कैँ मिस, मदन हनत निज बानन ॥
हमतौ निपट अहीरि बावरी, जोग दीजिऐ जानन ।
कहा कथत मासी के आगैँ, जानत नानी नानन ॥
तुम तौ हमैँ सिखावन आए, जोग होइ निरवानन ।
सूर मुक्ति कैसैँ पूजति है, वा मुरली के तानन ॥१३०॥

हमतैँ हरि कबहूँ न उदास ।
रास खिलाइ पिलाइ अधर रस, क्यौँ बिसरत ब्रज बास ॥

तुमसौं प्रेम कथा कौ कहिबौ, मनौ काटिबौ घास।
बहिरौ तान-स्वाद कह जानै, गूँगौ बात मिठास॥
सुनि री सखी बहुरि हरि ऐहैं, वह सुख वहै बिलास।
सूरदास ऊधौ अब हमकौं, भए तेरहैं मास॥१३१॥

आयौ घोष बड़ौ ब्यौपारी।
खेप लादि गुरु ज्ञान जोग की, ब्रज मैं आनि उतारी॥
फाटक दै कै हाटक माँगत, भोरौ निपट सुधारी।
धुरही तैं खोटौ खायौ है, लिये फिरत सिर भारी॥
इनकै कहे कौन डहकावे, ऐसी कौन अनारी।
अपनौ दूध छाँड़ि को पीवै, खारे कूप कौ बारी॥
ऊधौ जाहु सबारैं ह्याँ तैं, बेगि गहरु जनि लावहु।
मुख मागौ पैहौ सूरज प्रभु, साहुहिं आनि दिखावहु॥१३२॥

ऊधौ जोग कहा है कीजतु।
ओढ़ियत है कि बिछैयत है, किधौं खैयत है किधौं पीजत॥
कीधौं कछू खिलौना सुंदर, की कछु भूषन नीकौ।
हमरे नंद-नँदन जो चहियतु, मोहन जीवन जी कौ॥
तुम जु कहत हरि निगुन निरंतर, निगम नेति है रीति।
प्रगट रूप की रासि मनोहर, क्यौं छाँड़े परतीति॥
गाइ चरावन गए घोष तैं, अबहीं हैं फिरि आवत।
सोई सूर सहाइ हमारे, बेनु रसाल बजावत॥१३३॥

अपने स्वारथ के सब कोऊ।
चुप करि रहौ मधुप रस-लंपट, तुम देखे अरु ओऊ॥
जो कछु कह्यौ कह्यौ चाहत हौ, कहि निरवारौ सोऊ।
अब मेरैं मन ऐसियै षटपद, होनी होउ सु होऊ॥
तब कत रास रच्यौ बृंदावन, जौ पै ज्ञान हुतोऊ।
लीन्हे जोग फिरत जुवतिनि मैं, बड़े सुपत तुम दोऊ॥
छुटि गयौ मान परेखौ रे अलि, हदै हुतौ वह जोऊ।
सूरदास-प्रभु गोकुल बिसरयौ, चित चिंतामनि खोऊ॥१३४॥

मधुकर प्रीति किये पछितानी।
हम जानी ऐसैंहि निबहैगी, उन कछु औरै ठानी॥

वा मोहन कौँ कौन पतीजै, बोलत मधुरी बानी।
हमकौँ लिखि लिखि जोग पठावत, आपु करत रजधानी॥
सूनी सेज सुहाइ न हरि बिनु, जागत रैनि बिहानी।
जब तैँ गवन कियौ मधुबन कौँ, नैननि बरषत पानी॥
कहियौ जाइ स्याम सुंदर कौँ, अंतरगत की जानी।
सूरदास प्रभु मिलि कै बिछुरे, तातैँ भईँ दिवानी॥१३५॥

हमारैँ हरि हारिल की लकरी।
मनक्रम बचन नंद-नंदन उर, यह दृढ़ करि पकरी॥
जागत सोवत स्वप्न दिवस-निसि, कान्ह-कान्ह जकरी।
सुनत जोग लागत है ऐसौ, ज्यौँ करुई ककरी॥
सु तौ ब्याधि हमकौँ लै आए, देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिनहिँ लै सौँपौ, जिनके मन चकरी॥१३६॥

कहा होत जो हरि हित चित धरि, एक बार ब्रज आवते।
तरसत ब्रज के लोग दरस कौँ, निरखि-निरखि सुख पावते॥
मुरली सब्द सुनावत सबहिनि, हरते तन की पीर।
मधुरे बचन बोलि अमृत मुख, बिरहिनि देते धीर॥
सब मिलि जग जस गावत उनकौ, हरष मानि उर आनत।
नासत चिंता ब्रज बनितनि की, जनम सुफल करि जानत॥
दुरी दुरा कौ खेल न कोऊ, खेलत है ब्रज महियाँ।
बाल दसा लपटाइ गहत हे, हँसि-हँसि हमरी बहियाँ॥
हम दासी बिनु मोल की उनकी, हमहिँ जु चित्त बिसारी।
इत तैँ उन हरि रमि रहे अब तौ, कुबिजा भई पियारी॥
हिय मैँ बातैँ समुझि-समुझि कै, लोचन भरि-भरि आए।
सूर सनेही स्याम प्रीति के, ते अब भए पराए॥१३७॥

मधुकर आपुन होहिँ बिराने।
बाहर हेत हितू कहवावत, भीतर काज सयाने॥
ज्यौँ सुक पिंजर माहिँ उचारत, ज्यौँ ज्यौँ कहत बखाने।
छूटत हीँ उड़ि मिलै अपुन कुल, प्रीति न पल ठहराने॥
जद्यपि मन नहिँ तजत मनोहर, तद्यपि कपटी जाने।
सूरदास प्रभु कौन काज कौँ, माखी मधु लपटाने॥१३८॥

हरि तैं भली सुपति सीता कौ ।
जाकैं बिरह जतन ए कीन्हे, सिंधु कियौ बीता कौ ॥
लंका जारि सकल रिपु मारे, देख्यौ मुख पुनि ताकौ ।
दूत हाथ उन लिखि जु पठायौ, ज्ञान कह्यौ गीता कौ ॥
तिनकौ कहा परेखौ कीजै, कुबिजा के मीता कौ ।
चढ़े सेज सातौं सुधि बिसरी, ज्यौं पीता चीता कौ ॥
करि अति कृपा जोग लिखि पठयौ, देखि डराईं ताकौ ।
सूरजदास प्रीति कह जानैं, लोभी नवनीता कौ ॥१३९॥

ऊधौ क्यौं बिसरत वह नेह ।
हमरैं हृदय आनि नँदनंदन, रचि-रचि कीन्हे गेह ॥
एक दिवस गई गाइ दुहावन, वहाँ जु बरष्यौ मेह ।
लिए उढ़ाइ कामरी मोहन, निज करि मानी देह ॥
अब हमकौं लिखि-लिखि पठवत हैं जोग जुगुति तुम लेहु ।
सूरदास बिरहिनि क्यौं जीवैं कौन सयानप एहु ॥१४०॥

ऊधौ मन माने की बात ।
दाख छुहारा छाँड़ि अमृत-फल, बिषकीरा बिष खात ॥
ज्यौं चकोर कौं देइ कपूर कोउ, तजि अंगार अघात ।
मधुप करत घर मोरि काठ मैं, बँधत कमल के पात ॥
ज्यौं पतंग हित जानि आपनौ, दीपक सौं लपटात ।
सूरदास जाकौ मन जासौं, सोई ताहि सुहात ॥१४१॥

इहिं डर बहुरि न गोकुल आए ।
सुनि री सखी हमारी करनी, समुझि मधुपुरी छाए ॥
अधरातक तैं उठि सब बालक, मोहिं टेरैंगे आइ ।
मातु पिता मौकौं पठवैंगे, बनहिं चरावन गाइ ॥
सूने भवन आइ रोकैंगी, दधि-चोरत नवनीत ।
पकरि जसोदा पै लै जैहैं, नाचहु गावहु गीत ॥
ग्वारिनि मोहिं बहुरि बाँधैंगी, कैतव बचन सुनाइ ।
वै दुख सूर सुमिरि मन ही मन, बहुरि सहै को जाइ ॥१४२॥

जौ कोउ बिरहिनि कौ दुख जाने ।
तौ तजि सगुन साँवरी मूरति, कत उपदेसै ज्ञानै ।

कुमुद चकोर मुदित बिधु निरखत, कहा करै लै भानै ।
चातक सदा स्वाति कौ सेवक, दुखित होत बिनु पानै ॥
भौंर, कुरंग, काग, कोइल कौं, कबिजन कपट बखानैं ।
सूरदास जौ सरबस दीजै, कारे कृतहि न मानैं ॥१४३॥

ऊधौ सुधि नाहीं या तन की ।
जाइ कहौ तुम कित हौ भूले, हमऽब भईं बन-बन की ।
इक बन ढूँढ़ि सकल बन ढूँढ़े, बन बेली मधुबन की ॥
हारी परीं बृंदाबन ढूँढ़त, सुधि न मिली मोहन की ।
किए बिचार उपचार न लागत, कठिन बिथा भइ मन की ॥
सूरदास कोउ कहै स्याम सौं, सुरति करैं गोपिनि की ।१४४॥

लरिकाईं कौ प्रेम कहौ अलि कैसैं छूटत ।
कहा कहौं ब्रजनाथ चरित, अंतरगति लूटत ॥
वह चितवनि वह चाल मनोहर, वह मुसकानि मंद-धुनि गावनि ।
नटवर-भेष नंद-नंदन कौ वह बिनोद, वह बन तैं आवनि ॥
चरन कमल की सौंह करति हौं, यह संदेस मोहिं विष लागत ।
सूरदास पल मोहिं न बिसरति, मोहन मूरति सोवत जागत ॥१४५॥

उद्धव हृदय परिवर्तन तथा गोपी संदेश

मैं ब्रजबासिन की बलिहारी ।
जिनकै संग सदा क्रीड़त हैं, श्री गोबरधन-धारी ॥
किनहूँ कैं घर माखन चोरत, किनहूँ कैं सँग दानी ।
किनहूँ कैं सँग धेनु चरावत, हरि की अकथ कहानी ॥
किनहूँ कैं सँग जमुना कैं तट, बंसी टेरि सुनावत ।
सूरदास बलि-बलि चरननि की, यह सुख मोहिं नित भावत ॥१४६॥

हौं इन मोरनि की बलिहारी ।
जिनकी सुभग चंद्रिका माथैं, धरत गोबरधनधारी ।
बलिहारी वा बाँस-बंस की, बंसी सी सुकुमारी ।
सदा रहति है कर जु स्याम कैं, नैकहुँ होति न न्यारी ॥
बलिहारी वा गुंज-जाति की, उपजी जगत उज्यारी ।
सुंदर हृदय रहत मोहन कैं, कबहूँ टरत न टारी ॥
बलिहारी कुल सैल सरित जिहिं, कहत कलिंद-दुलारी ।
निसि-दिन कान्ह अंग आलिंगन आपुनहूँ भई कारी ॥

बलिहारी वृंदावन भूमिहिँ, सुतौ भाग की सारी।
सूरदास-प्रभु नाँगे पाइनि, दिन प्रति गैया चारी ॥१४७॥

हम पर हेत किये रहिबौ।
या ब्रज कौ ब्यौहार सखा तुम, हरि सौँ सब कहिबौ ॥
देखे जात आपनी अँखियनि, या तन कौ दहिबौ।
तन की बिथा कहा कहैँ तुमसौँ, यह हमकौँ सहिबौ ॥
तब न कियौ प्रहार प्राननि कौ, फिरि फिरि क्यौँ चहिबौ।
अब न देह जरि जाइ सूर इनि नैननि कौ बहिबौ ॥१४८॥

स्वामी पहिलौ प्रेम सँभारौ।
ऊधौ जाइ चरन गहि कहियै, जी तैँ हित न उतारौ ॥
जो तुम मधुबन राज काज भए, गोकुल हम न अधारौ।
कमल नयन सो चैन न देखौ, नित उठि गोधन चारौ ॥
ये ब्रज लोग मया के सेवक, तिनसौँ क्यौँ न बिहारौ।
सूरदास प्रभु एक बार मिलि, सकल बिरह दुख टारौ ॥१४९॥

इतनी बात अलि कहियौ हरि सौँ, कब लगि यह मन दुख मैँ गारैँ।
पथ जोहत तन कोकिल बरन भइँ, निसि न नींद पिय पियहिँ पुकारैँ ॥
जा दिन तैँ बिछुरे नँद-नंदन अति दुख दारुन क्यौँ निरवारैँ।
सूरदास प्रभु बिनु यह बिपदा, काकौ दरसन देखि बिसारैँ ॥१५०॥

ऊधौ जू, कहियौ तुम हरि सौँ जाइ, हमारे हिय कौ दरद।
दिन नहिं चैन, रैन नहिँ सोवति, पावक भई जुन्हाई सरद ॥
जबतैँ लै अक्रूर गए हैँ भई बिरह तन बाइ छरद।
काम प्रबल जाके अति ऊधौ, सोचत भइ जस पीत-हरद ॥
सखा प्रवीन निरंतर हरि के, तातैँ कहति हैँ खोलि परद।
ध्यावतिँ रूप दरस तजि हरि कौ, सूर मूरि बिनु होतिँ मुरद ॥१५१॥

ऊधौ इक पतिया हमरी लीजै।
चरन लागि गोबिँद सौँ कहियौ, लिखौ हमारौ दीजै ॥
हम तौ कौन रूप गुन आगरि, जिहिँ गुपाल जू रीझैँ।
निरखत नैन-नीर भरि आए, अरु कंचुकि पट भीजैँ ॥
तलफत रहति मीन चातक ज्यौँ, जल बिनु तृषा न छीजै।
अति ब्याकुल अकुलातिँ बिरहिनी, सुरति हमरी कीजै ॥

अँखियाँ खरी निहारति मधुबन, हरि-बिनु ब्रज बिष पीजै ।
सूरदास-प्रभु कबहिँ मिलैँगे, देखि देखि मुख जीजै ॥१५२॥

हम मति हीन कहा कछु जानैँ, ब्रजवासिनी अहीर ।
वै जु किसोर नवल नागर तन, बहुत भूप की भीर ॥
बचन की लाज सुरति क र राखौ, तुम अलि इतनौ कहियौ ।
भली भई जो दूत पठायौ, इतनौ बोल निबहियौ ॥
एक बार तौ मिलौ कृपा करि, जौ अपनौ ब्रज जानौ ।
यहै रीति संसार सबनि की, कहा रंक कह रानौ ॥
हम अनाथ तुम नाथ गुसाईँ राखौ, क्यौँ, नहिँ सोई ।
षट रितु ब्रज पै आनि पुकारैँ, सूरदास अब कोई ॥१५३॥

नंदनँदन सौँ इतनी कहियौ ।
जद्यपि ब्रज अनाथ करि डार्‌यौ, तद्यपि सुरति किये चित रहियौ ॥
तिनका तोर करहु जनि हम सौँ, एक बास की लाज निबहियौ ।
गुन औगुननि दोष नहिँ कीजतु, हम दासिनि की इतनी सहियौ ॥
तुम बिनु प्रान कहा हम करिहैँ, यह अवलंब न सुपनेहु लहियौ ।
सूरदास पाती लिखि पठई, जहाँ प्रीति तहँ ओर निबहियौ ॥१५४॥

बिनु गुपाल बैरिनि भईँ कुंजैँ ।
तब वै लता लगति तन सीतल, अब भईँ बिषम ज्वाल की पुंजैँ ॥
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल-फूलनि अलि-गुंजैँ ।
पवन, पान, घनसार, सजीवन, दधि-सुत किरनि भानु भईँ भुंजैँ ॥
यह ऊधौ कहियौ माधौ सौँ, मदन मारि कीन्हीँ हम लुंजैँ ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौँ, मग-जोवत अँखियाँ भईँ छुंजैँ ॥१५५॥

ऊधौ इतनी कहियौ बात ।
मदन गुपाल बिना या ब्रज मैँ, होन लगे उतपात ॥
तृनावर्त, बक, बकी, अघासुर, धेनुक फिरि-फिरि जात ।
व्योम, प्रलंब, कंस केसी इत, करत जिअनि की घात ॥
काली काल रूप दिखियत है, जमुना जलहिँ अन्हात ।
बरुन फाँस फाँस्यौ चाहत है, सुनियत अति मुरझात ॥
इंद्र आपने परिहँस कारन, बार-बार अनखात ।
गोपी, गाइ, गोप, गोसुत सब, थर थर काँपत गात ॥

अंचल फारति जननि जसोदा, पाग लिये कर तात ।
लागौ बेगि गुहारि सूर-प्रभु, गोकुल बैरिनि घात ॥१२६॥

ऊधौ इतनी कहियौ जाइ ।
अति कृस गात भई ये तुम बिनु, परम दुखारी ॥
जल समूह बरषतिँ दोउ अँखियाँ, हूँकति लीन्हेँ नाउँ ।
जहाँ जहाँ गो दोहन कीन्हौ, सूँघतिँ सोई ठाउँ ॥
परति पछार खाइ छिन ही छिन, अति आतुर ह्वै दीन ।
मानहु सूर काढ़ि डारी हैँ, वारि मध्य तैँ मीन ॥१२७॥

अति मलीन वृषभानु-कुमारी ।
हरि स्रम-जल भींज्यौ उर-अंचल, तिहिँ लालच न धुवावति सारी ॥
अध मुख रहति अनत नहिँ चितवति, ज्यौँ गथ हारे थकित जुवारी ।
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने, ज्यौँ नलिनी हिमकर की मारी ॥
हरि सँदेस सुनि सहज मृतक भइ, इक बिरहिनि, दूजे अलि जारी ।
सूरदास कैसैँ करि जीवैँ, ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी ॥१२८॥
ऊधौ तिहारे पा लागति हौँ, बहुरिहुँ इहिँ ब्रज करबी भाँवरी ।
निसि न नीँद भोजन नहिँ भावै; चितवत मग भइ दृष्टि झाँवरी ॥
वहै वृंदाबन वहै कुंज-घन, वहै जमुना वहै सुभग साँवरी ।
एक स्याम बिनु कछु न भावै, रटति फिरतिँ ज्यौँ बकति बावरी ॥
चलि न सकति मग डुलत धरत-पग, आवति बैठत उठत ताँवरी ।
सूरदास प्रभु आनि मिलावहु, जग मैँ कीरति होइ रावरी ॥१२९॥

पूर्ण परिवर्तन तथा यशोदा संदेश

अब अति चकितवंत मन मेरौ ।
आयौ हो निरगुन उपदेसन, भयौ सगुन कौ चेरौ ॥
जो मैँ ज्ञान कह्यौ गीता कौ, तुमहिँ न परस्यौ नेरौ ।
अति अज्ञान कछु कहत न आवै, दूत भयौ हरि केरौ ॥
निज जन जानि मानि जतननि तुम कीन्हौ नेह घनेरौ ।
सूर मधुप उठि चले मधुपुरी, बोरि जोग को बेरौ ॥१३०॥
ऊधौ पा लागति हौँ कहियौ, स्यामहिँ इतनी बात ।
इतनी दूरि बसत क्यौँ बिसरे, अपने जननी-तात ॥
जा दिन तैँ मधुपुरी सिधारे, स्याम मनोहर गात ।
ता दिन तै मेरे नैन पपीहा, दरस प्यास अकुलात ॥

जहँ खेलन के ठौर तुम्हारे, नंद देखि मुरझात।
जौ कबहूँ उठि जात खरिक लौं, गाइ दुहावन प्रात॥
दुहत देखि औरनि के लरिका, प्रान निकसि नहिँ जात।
सूरदास बहुरौ कब देखौं, कोमल कर दधि-खात॥१६१॥

तब तुम मेरैं काहे कौं आए।
मथुरा क्यौं न रहे जदुनंदन, जौ पै कान्ह देवकी जाए॥
दूध, दही काहे कौं चोरयौ, काहे कौं बन बच्छ चराए।
अघ अरिष्ट, काली फनि काढ्यौ, विष जल तैं सब सखा जिवाए॥
पय पीवत हरे प्रान पूतना, सदा किए जसुमति के भाए।
सूरदास लोगनि के भुरए, काहैं कान्ह, अब होत पराए॥१६२॥

(मोहन) अपनी गैयाँ घेरि लै।
बिडरी जातिं काहु नहिँ मानतिं, नैंकु मुरलि की टेर दै॥
धौरी, धूमरि, पीरी, काजरि, बन-बन फिरती पीय।
अपनी जानि कै आनि सँभारहु, धरौ चेत अब जीय॥
तुम हौ जग जीवनि प्रतिपालक, निठुराई नहिँ कीजै।
ग्वालऽरु बाल बच्छ गो बिलखत, सूर सु दरसन दीजै॥१६३॥

तब तैं छीन सरीर सुबाहु।
आधौ भोजन सुबल करत है, सब ग्वालनि उर दाहु॥
नंद गोप पिछवारे डोलत, नैननि नीर प्रवाहु।
आनँद मिट्यौ मिटी सब लीला, काहू मन न उछाहु॥
एक बेर बहुरौ ब्रज आवहु, दूध पतूखी खाहु।
सूर सपथ गोकुल जौ पैठहु, उलटि मधुपुरी जाहु॥१६४॥

कहियौ जसुमति की आसीस।
जहाँ रहौ तहँ नँद लाड़िलौ, जीवौ कोटि बरीस॥
मुरली दई दोहनी घृत भरि, ऊधौ धरि लइ सीस।
यह तौ घृत उनही सुरभिनि कौ, जे प्यारी जगदीस॥
ऊधौ चलत सखा मिलि आए, ग्वाल बाल दस-बीस।
अबकैं यह ब्रज फेरि बसावहु, सूरदास के ईस॥१६५॥

उद्धव मथुरा प्रत्यागमन तथा कृष्ण उद्धव संवाद

ऊधौ जब ब्रज पहुँचे जाइ।
तबकी कथा कृपा करि कहियै, हम सुनिहैं मन लाइ॥

बाबा नंद, जसोदा मैया, मिले कौन हित आइ ?
कबहूँ सुरति करत माखन की, किधौं रहे बिसराइ ॥
गोप सखा दधि-भात खात बन, अरु चाखते चखाइ ।
गाऊ बच्छ मुरली सुनि उमड़त, अब जु रहत किहिँ भाइ ॥
गोपिन गृह व्यवहार बिसारे, मुख सन्मुख सुख पाइ ।
पलक ओट निमि पर अनखातीं, यह दुख कहाँ समाइ ॥
एक सखी उनमैं जो राधा, लेति मनहिँ जु चुराइ ।
सूर स्याम यह बार बार कहि मनहीं मन पछिताइ ॥१६६॥

जब मैं इहाँ तैं जु गयौ ।
तब ब्रजराज सकल गोपी जन, आगैं होइ लयौ ।
उतरे जाइ नंद बाबा कैं, सबहीं सोध लह्यौ ॥
मेरी सौं मोसौं साँची कहि, मैया कहा कह्यौ ?
बारंबार कुसल पूछी मोहिँ, लै लै तुम्हरौ नाम ।
ज्यौं जल तृषा बढ़ी चातक चित, कृष्न-कृष्न बलराम ॥
सुंदर परम बिचित्र मनोहर, यह मुरली दै घाली ।
लई उठाउ सुख मानि सूर-प्रभु प्रीति आनि उर साली ॥१६७॥

सुनियै ब्रज की दसा गुसाईं
रथ की धुजा पीत-पट भूषन देखत ही उठि धाईं ॥
जो तुम कही जोग की बातैं, सो हम सबै बताईं ।
श्रवन मूँदि गुन-कर्म तुम्हारे, प्रेम मगन मन गाईं ॥
औरौ कछू सँदेस सखी इक, कहत दूरि लौं आई ।
हुतौ कछू हमहूँ सौं नातौ निपट कहा बिसराई ॥
सूरदास प्रभु बन बिनोद करि, जे तुम गाइ चराई ।
ते गाई अब ग्वाल न घेरत, मानौ भई पराई ॥१६८॥

ब्रज के बिरही लोग दुखारे ।
बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े, अति दुर्बल तन कारे ॥
नंद, जसोदा मारग जोवति, निसि-दिन साँझ, सकारे ।
चहुँ-दिसि कान्ह-कान्ह कहि टेरत, अँसुवन बहत पनारे ॥
गोपी, ग्वाल, गाइ, गो-सुत सब, अतिहीं दीन बिचारे ।
सूरदास-प्रभु बिनु यौं देखियत, चंद बिना ज्यौं तारे ॥१६९॥

सुनहु स्याम वै सब ब्रज-बनिता बिरह तुम्हारैं भईं बावरी ।
नाहीं बात और कहि आवति, छाँड़ि जहाँ लगि कथा रावरी ॥
कबहुँ कहतिं हरि माखन खायौ, कौन बसै या कठिन गाँव री ।
कबहुँ कहतिं हरि ऊखल बाँधे, घर-घर ते लै चलौ दाँवरी ॥
कबहुँ कहतिं ब्रजनाथ बन गए, जोवत-मग भई दृष्टि झाँवरी ।
कबहुँ कहति वा मुरली महियाँ लै-लै बोलत हमरौ नावँ री ॥
कबहुँ कहतिं ब्रजनाथ साथ तैं, चंद उयौ है इहै ठाँव री ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु अब वह मूरति भईं साँवरी ॥१७०॥

फिरि ब्रज बसौ नंदकुमार ।
हरि तिहारे बिरह राधा, भई तन जरि छार ॥
बिनु अभूषन मैं जु देखी, परी है बिकरार ।
एकई रट रटत भामिनि, पीव पीव पुकार ॥
सजल लोचन चुअत उनके, बहति जमुना धार ।
बिरह अगिनि प्रचंड उनकैं, जरे हाथ लुहार ॥
दूसरी गति और नाहीं, रटति बारंबार ।
सूर प्रभु कौ नाम उनकैं, लकुट अंध अधार ॥१७१॥

ब्रज तैं द्वै रितु पै न गई ।
ग्रीषम अरु पावस प्रवीन हरि, तुम बिनु अधिक भई ॥
ऊर्ध उसास समीर नैन घन, सब जल जोग जुरे ।
बरषि प्रगट कीन्हे दुख दादुर, हुते जो दूरि दुरे ॥
बिषम बियोग जु बृष दिनकर सम, हिय अति उदौ करै ।
हरि पद बिमुख भए सुनि सूरज, को तन ताप हरै ॥१७२॥

दिन दस घोष चलहु गोपाल ।
गाइनि की अवसेरि मिटावहु, मिलहु आपने ग्वाल ॥
नाचत नहीं मोर ता दिन तैं, रटत न बरषा-काल ।
मृग दुबरे तुम्हरे दरसन बिनु, सुनत न बेनु रसाल ॥
बृंदावन हरयौ होत न भावत, देख्यौ स्याम तमाल ।
सूरदास मैया अनाथ है, घर चलियै नँदलाल ॥१७३॥

ऊधौ भलौ ज्ञान समुझायौ ।
तुम मोसौं अब कहा कहत हौ, मैं कहि कहा पठायौ ॥

कहावावत हौ बड़े चतुर पै, उहाँ न कछु कहि आयौ।
सूरदास ब्रज बासिन कौ हित, हरि हिय माहँ दुरायौ ॥१७४॥

मैं समुझाई अति अपनौ सौ।
तदपि उन्हैं परतीति न उपजी, सबै लख्यौ सपनौ सौ॥
कही तुम्हारी सबै कही मैं, और कही कछु अपनी।
स्रववनि बचन सुनत भइ उनकैं, ज्यौं घृत नाएँ अगनी॥
कोऊ कहौ बनाइ पचासक, उनकी बात जु एक।
धन्य धन्य ब्रजनारि बापुरी, जिनकी और न टेक॥
देखत उमग्यौ प्रेम इहाँ कौ, धरे रहे सब ऊलौ।
सूर स्याम हैं रह्यौ थक्यौ सौ, ज्यौं मृग चौका भूल्यौ ॥१७५॥

बातैं सुनहु तौ स्याम सुनाऊँ।
जुवतिनि सौं कहि कथा जोग की, क्यौं न इतौ दुख पाऊँ॥
हौं पचि एक कहौं निरगुन की, ताहू मैं अटकाऊँ।
वै उमड़ैं बारिधि के जल ज्यौं, क्यौं हूँ थाह न पाऊँ॥
कौन कौन कौ उत्तर दीजै, तातैं भज्यौ अगाऊँ।
वै मेरे सिर पटिया पारैं, कंथा काहि उढ़ाऊँ॥
एक आँधरौ, हिय की फूटी, दौरत पहिरि खराऊँ।
सूर सकल षट दरसन वै, हौं बारहखरी पढ़ाऊँ ॥१७६॥

कहिबे मैं न कछू सक राखी।
बुधि बिबेक अनुमान आपनैं, मुख आई सो भाषी॥
हौं मरि एक कहौं पहरक मैं, वै पल माहिँ अनेक।
हारि मानि उठि चल्यौ दीन ह्वै, छाँड़ि आपनी टेक॥
हौं पठयौ कतहीँ बे काजै, सठ मूरख जु अयानौ।
तुमहिं बूझ बहुतै बातनि की, उहाँ जाहु तौ जानौं॥
श्री मुख के सिखए ग्रंथादिक, ते सब भए कहानी।
एक होइ तौ उत्तर दीजै, सूर सु मठी उफानी ॥१७७॥

कोऊ सुनत न बात हमारी।
मानैं कहा जोग जादवपति, प्रगट प्रेम ब्रजनारी॥
कोउ कहति हरि गए कुंज बन, सैन धाम वै देत।
कोऊ कहति इंद्र बरषा तकि, गिरि गोबर्धन लेत॥

कोऊ कहति नाग काली सुनि, हरि गए जमुना तीर ।
कोऊ कहति अघासुर मारन, गए संग बलबीर ॥
कोऊ कहत ग्वाल बालनि सँग, खेलत बनहिँ लुकाने ।
सूर सुमिरि गुन नाथ तुम्हारे, कोऊ कह्यौ न माने ॥१७८॥

माधौ जू कहा कहौं उनकी गति ।
देखत बनै कहत नहिँ आवे, अति प्रतीति तुम तैं रति ॥
जद्यपि हौं षट मास रह्यो ढिग, लही नहीँ उनकी मति ।
तासौं कहौं सबै एकै बुधि, परमोधी नहिँ मानति ॥
तुम कृपालु करुनामय कहियत, तातैं मिलत कहा छति ।
सूरदास-प्रभु सोई कीजै, जातैं तुम पावहु पति ॥१७९॥

ब्रज मैं एकै धरम रह्यौ ।
स्रुति सुंमृति और बेद पुराननि, सबै गोविंद कह्यौ ॥
बालक बृद्ध तरुन अबलनि कौ, एक प्रेम निबह्यौ ।
सूरदास-प्रभु छाड़ि जमुन जल, हरि की सरन गह्यौ ॥१८०॥

तब तैं इन सबहिनि सचु पायौ ।
जब तैं हरि सँदेस तुम्हारौ, सुनत ताँवरौ आयौ ॥
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे, पवन पेट भरि खायौ ।
खोले मृगनि चौक चरननि के, हुतौ जु जिय बिसरायौ ॥
ऊँचे बैठि बिहंग सभा मैं, सुक बनराइ कहायौ ।
किलकि-किलकि कुल सहित आपनैं, कोकिल मंगल गायौ ॥
निकसि कंदराहू तैं केहरि, पूँछ मूड़ पर ल्यायौ ।
गहवर तैं गजराज आइकै, अंगहिं गर्व बढ़ायौ ॥
अब जनि गहरु करहु हो मोहन, जौ चाहत हौ ज्यायौ ।
सूर बहुरि ह्वै है राधा कौं, सब बैरिनि कौ भायौ ॥१८१॥

माधौ जू मैं अतिही सचु पायौ ।
अपनौ जानि सँदेस ब्याज करि, ब्रज जन मिलन पठायौ ॥
छमा करौ तौ करौं बीनती, उनहिँ देखि जौ आयौ ।
श्रीमुख ग्यान पंथ जौ उचरयौ, सो पै कछु न सुहायौ ॥
सकल निगम सिद्धांत जन्म क्रम, स्यामा सहज सुनायौ ।
नहिँ स्रुति, सेष, महेस प्रजापति, जो रस गोपिनि गायौ ॥

कटुक-कथा लागी मोहिँ मेरी, वह रस सिंधु उम्हायौ।
उत तुम देखे और भाँति मैं, सकल तृषा जु बुझायौ॥
तुम्हरी अकथ कथा तुम जानौ, हम जन नाहिँ बसायौ।
सूर स्याम सुंदर यह सुनि कै, नैननि नीर बहायौ॥१८२॥

ब्रज मैं संभ्रम मोहिँ भयौ।
तुम्हरौ ज्ञान संदेसौ प्रभु जू, सबै जू भूलि गयौ॥
तुमहीँ सौँ बालक किसोर बपु, मैं घर-घर प्रति देख्यौ।
मुरलीधर घन स्याम मनोहर, अद्भुत नटवर पेख्यौ॥
कौतुक रूप ग्वाल बृंदनि सँग, गाइ चरावन जात।
साँझ प्रभातहिँ गो दोहन मिस, चोरी माखन खात॥
नँद-नंदन अनेक लीला करि, गोपिनि चित्त चुरावत।
वह सुख देखि जु नैन हमारे, ब्रह्म न देख्यौ भावत॥
करि करुना उन दरसन दीन्हौ, मैं पचि जोग बह्यौ।
छन मानहु षट्मास सूर-प्रभु, देखत भूलि रह्यौ॥१८३॥

ब्रज मैं एक अचंभौ देख्यौ।
मोर मुकुट पीतांबर धारे, तुम गाइनि सँग पेख्यौ॥
गोप बाल सँग धावत तुम्हरैँ, तुम घर घर प्रति जात।
दूध दहीऽरु मही लै ढारत, चोरी माखन खात॥
गोपी सब मिलि पकरतिँ तुमकौँ, तुम छुड़ाइ कर भागत।
सूर स्याम नित प्रति यह लीला, देखि देखि मन लागत॥१८४॥

श्रीकृष्ण बचन

सुनि ऊधौ मोहिँ नैकु न बिसरत वै ब्रजबासी लोग।
तुम उनकौँ कछु भली न कीन्ही, निसि दिन दियौ वियोग॥
जउ बसुदेव-देवकी मथुरा, सकल राज-सुख भोग।
तद्यपि मनहिँ बसत बंसी बट, बन जमुना संजोग॥
वै उत रहत प्रेम अवलंबन, इत तैँ पठयौ जोग।
सूर उसाँस छाँड़ि भरि लोचन, बढ्यौ बिरह ज्वर सोग॥१८५॥

ऊधौ मोहिँ ब्रज बिसरत नाहीँ।
बृंदाबन गोकुल बन उपवन, सघन कुंज की छाहीँ॥
प्रात समय माता जसुमति अरु नंद देखि सुख पावत।
माखन रोटी दह्यौ सजायौ, अति हित साथ खवावत॥

गोपी ग्वाल बाल सँग खेलत, सब दिन हँसत सिरात ।
सूरदास धनि-धनि ब्रजबासी, जिनसौं हित जदु-तात ॥१८६॥

ऊधौ मोहिँ ब्रज बिसरत नाहीँ ।
हंस-सुता की सुंदर कगारी, अरु कुंजनि की छांहीँ ॥
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीँ ।
ग्वाल-बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाहीँ ॥
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि-मुक्ताहल जाहीँ ।
जबहिँ सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाहीँ ॥
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा नंद निबाहीँ ।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि-कहि पछिताहीँ ॥१८७॥

जो जन ऊधो मोहिँ न बिसारत, तिहिँ न बिसारौँ एक घरी ।
मेटौँ जनम जनम के संकट, राखौँ सुख आनंद भरी ॥
जो मोहिँ भजै भजौँ मैँ ताकौँ, यह परिमिति मेरे पाइँ परी ।
सदा सहाइ करौँ वा जन की, गुप्त हुती सो प्रगट करी ॥
ज्यौँ भारत भरुही के अंडा, राखे गज के घंट तरी ।
सूरजदास ताहि डर काकौ, निसि बासर जौ जपत हरी ॥१८८॥

द्वारिका चरित

द्वारिका प्रयाण

बार सत्तरह जरासंध, मथुरा चढ़ि आयौ।
गयौ सो सब दिन हारि, जात घर बहुत लजायौ ।।
तब खिस्याइ कै कालजवन, अपनैं सँग ल्यायौ।
हरि जू कियौ बिचार, सिंधु तट नगर बसायौ ।।
उग्रसेन सब लै कुटुंब, ता ठौर सिधायौ।
अमर पुरी तैं अधिक, तहाँ सुख लोगनि पायौ ।।
कालजवन मुचुकुंदहिं सौं, हरि भस्म करायौ।
बहुरि आइ भरमाइ, अचल रिपु ताहि जरायौ ।।
जरासिंधु हू ह्वाँ तैं पुनि, निज देस सिधायौ।
गए द्वारिका स्याम राम, जस सूरज गायौ ।।१।।

रुक्मिणी परिणय

हरि हरि हरि सुमिरन करौ। हरि चरनारबिंद उर धरौ ।।
हरि सुमिरन जब रुकमिनि कर्यौ। हरि करि कृपा ताहि तब बर्यौ ।।
कहौँ सो कथा सुनौ चित लाइ। कहै सुने सो रहै सुख पाइ ।।
कुंडिनपुर को भीषम राइ। बिस्नु भक्ति कौ तिहिं चित चाइ ।।
रुक्म आदि ताके सुत पाँच। रुक्मिनि पुत्री हरि रँग राँच ।।
नृपति रुक्म सौं कह्यौ बनाइ। कुँवरि जोग बर श्री जदुराइ ।।
रुक्म रिसाइ पिता सौं कह्यौ। जदुपति ब्रज जो चोरत मह्यौ ।।
रुक्मिनि कौं सिसुपालहि दीजै। करि विवाह जग मैं जस लीजै ।।
यह सुनि नृप नारी सौं कह्यौ। सुनि ताकौं अंतरगत दह्यौ ।।
रुक्म चँदेरी बिप्र पठायौ। ब्याह काज सिसुपाल बुलायौ ।।
सो बारात जोरि तहँ आयौ। श्री रुकमिनि के मन नहिं भायौ ।।
कह्यौ मेरे पति श्री भगवान। उनहिं बरौं कै तजौं परान ।।
यह निहचै करि पत्री लिखी। बोल्यौ बिप्र सहज इक सखी ।।
पाती दै कह्यौ बचन सुनाइ। हरि कौ दै कहियौ या भाइ ।।
भीषम सुता रुकमिनी बाम। सूर जपति निसि दिन तुव नाम ।।२।।

द्विज पाती दै कहियौ स्यामहिं ।
कुंडिनपुर की कुँवरि रुकमिनी, जपति तिहारे नामहिं ।
पालागौं तुम जाहु द्वारिका, नंद-नँदन के धामहिं ।।
कंचन, चीर-पटंबर दैहौं, कर कंकन जु इनामहिं ।
यह सिसुपाल असुचि अज्ञानी, हरत पराई बामहिं ।।
सूर स्याम-प्रभु तुम्हरौ भरोसौ, लाज करौ किन नामहिं ।।३।।

द्विज कहियौ जदुपति सौं बात ।
बेद बिरुद्ध होत कुंडिनपुर, हंस के अंस काग नियरात ।।
जनि हमरे अपराध बिचारहु, कन्या लिख्यौ मेटि गुरु तात ।
तन आतमा समरप्यौ तुमकौं, उपजि परी तातैं यह बात ।।
कृपा करहु उठि बेगि चढ़हु रथ, लगन समै आवहु परभात ।
कृष्न सिंह बलि धरी तुम्हारी, लैबे कौं जंबुक अकुलात ।।
तातैं मैं द्विज बेगि पठायौ, नेम धरम मरजादा जात ।
सूरदास सिसुपाल पानि गहै, पावक रचौं करौं अपघात ।।४।।

सुनत हरि रुकमिनि कौ संदेस ।
चढ़ि रथ चले बिप्र कौं सँग लै, कियौ न गेह प्रवेस ।।
बारंबार बिप्र कौं पूछत, कुँवरि बचन सो सुनावत ।
दीनबंधु करुना निधान सुनि, नैन नीर भरि आवत ।।
कह्यौ हलधर सौं आवहु दल लै, मैं पहुँचत हौं धाइ ।
सूरज प्रभु कुंडिनपुर आए, बिप्र सो जाइ सुनाइ ।।५।।

रुकमिनि देवी-मंदिर आई ।
धूप दीप पूजा-सामग्री, अली संग सब ल्याई ।।
रखवारी कौं बहुत महाभट, दीन्हे रुकम पठाई ।
ते सब सावधान भए चहुँ दिसि, पंछी तहाँ न जाई ।।
कुँवरि पूजि गौरी बिनती करी, वर देउ जादवराई ।
मैं पूजा कीन्ही इहिं कारन, गौरी सुनि मुसकाई ।।
पाइ प्रसाद अंबिका-मंदिर, रुकमिनि बाहर आई ।
सुभट देखि सुंदरता मोहे, धरनि गिरे मुरझाई ।।
इहिं अंतर जादौपति आए, रुकमिनि रथ बैठाई ।
सूरज-प्रभु पहुँचे दल अपनैं, तब सुभटनि सुधि पाई ।।६।।

आवहु री मिलि मंगल गावहु ।
हरि रुकमिनी लिए आवत हैं, यह आनँद जदुकुलहिं सुनावहु ॥
बाँधहु बंदनवार मनोहर, कनक कलस भरि नीर धरावहु ।
दधि अच्छत फल फूल परम रुचि, आँगन चंदन चौक पुरावहु ॥
कदली जूथ अनूप किसल दल, सुरँग सुमन लै मंडल छावहु ।
हरद दूब केसर मग छिरकहु, भेरी मृदँग निसान बजावहु ॥
जरासंध सिसुपाल नृपति तैं, जीते हैं उठि अरघ चढ़ावहु ।
बल समेत तन कुसल सूर प्रभु, आए हैं आरती बनावहु ॥७॥

बलभद्र ब्रज यात्रा

स्याम राम के गुन नित गाऊँ । स्याम राम ही सौं चित लाऊँ ॥
एक बार हरि निज पुर छए । हलधर जी वृंदाबन गए ॥
रथ देखत लोगनि सुख पाए । जान्यौ स्याम राम दोउ आए ॥
नंद जसोमति जब सुधि पाई । देह गेह की सुरति भुलाई ॥
आगैं ह्वै लैबे कौं धाए । हलधर दौरि चरन लपटाए ॥
बल कौं हित करि गरें लगाए । दै असीस बोले या भाए ॥
तुम तौ भली करी बलराम । कहाँ रहे मन मोहन स्याम ॥
देखौ कान्हर की निठुराई । कबहूँ पाती हू न पठाई ॥
आपु जाइ ह्वाँ राजा भए । हमकौं बिछुरि बहुत दुख दए ॥
कहौ कबहुँ हमरी सुधि करत । हम तौ उन बिनु बहु दुख भरत ॥
कहा करैं ह्वाँ कोउ न जात । उन बिनु पल पल जुग सम जात ॥
इहिं अंतर आए सब ग्वार । भेंटे सबनि जथा ब्यौहार ॥
नमस्कार काहूँ कौ कियो । काहू कौं अंकम भरि लियौ ॥
पुनि गोपी जुरि मिलि सब आईं । तिन हित साथ असीस सुनाईं ॥
हरि सुधि करि सुधि बुधि बिसराई । तिनकौ प्रेम कह्यौ नहिं जाई ॥
कोउ कहै हरि ब्याही बहु नार । तिनकौ बढ़्यौ बहुत परिवार ॥
उनकौं यह हम देतिं असीस । सुख सौं जीवैं कोटि बरीस ॥
कोउ कहै हरि नाहीं हम चीन्हौ । बिनु चीन्हैं उनकौं मन दीन्हौ ॥
निसि दिन रोवत हमैं बिहाइ । कहौ करैं अब कहा उपाइ ॥
कोउ कहै इहाँ चरावत गाइ । राजा भए द्वारिका जाइ ॥
काहे कौं वै आवैं इहाँ । भोग बिलास करत नित उहाँ ॥
कोऊ कहै हरि रिपु छै किए । अरु मित्रनि कौ बहु सुख दिए ॥

बिरह हमारौ कहँ रहि गयौ । जिन हमकौं अति हीं दुख दयौ ॥
कोउ कहै जे हरि की रानी । कौन भाँति हरि कौं पतियानी ॥
कोऊ चतुर नारि जो होइ । करै नहीं पतिआरौ सोइ ॥
कोउ कहै हम तुम कत पतियाईं । उनकैं हित कुल लाज गवाईं ॥
हरि कछु ऐसौ टोना जानत । सबकौं मन अपनैं बस आनत ॥
कोउ कहै हरि हम सब बिसराईं । कहा कहैं कछु कह्यौ न जाई ॥
हरिकौं सुमिरि नयन जल ढारैं । नैंकु नहीं मन धीरज धारैं ॥
हरिकौं सुमिरि नयन जल ढारैं । नैंकु नहीं मन धीरज धारैं ॥
यह सुनि हलधर धीरज धारि । कह्यौ आइहैं हरि निरधारि ॥
जब बल यह संदेस सुनायौ । तब कछु इक मन धीरज आयौ ॥
बल तहँ बहुरि रहे द्वै मास । ब्रज बासिनि सौं करत बिलास ॥
सब सौं मिलि पुनि निजपुर आए । सूरदास हरि के गुन गाए ॥८॥

सुदामा चरित

कंत सिधारौ मधुसूदन पै सुनियत हैं वे मीत तुम्हारे ।
बाल-सखा अरु बिपति बिभंजन, संकट हरन मुकुंद मुरारे ॥
और जु अतिसय प्रीति देखियै, निज तन मन की प्रीति बिसारे ।
सरबस रीझि देत भक्तनि कौं, रंक नृपति काहू न बिचारे ॥
जद्यपि तुम संतोष भजत हौ, दरसन सुख तैं होत जु न्यारे ।
सूरदास प्रभु मिले सुदामा, सब सुख दै पुनि अटल न टारे ॥९॥

सुदामा सोचत पंथ चले ।
कैसैं करि मिलिहैं मोहिं श्रीपति, भए तब सगुन भले ॥
पहुँच्यौ जाइ राजद्वारे पर, काहू नहिं अटकायौ ।
इत उत चितै धँस्यौ मंदिर मैं, हरि कौ दरसन पायौ ॥
मन मैं अति आनंद कियौ हरि, बाल-मीत पहिचान ।
धाए मिलन नगन पग आतुर, सूरज-प्रभु भगवान ॥१०॥

दूरिहिं तैं देख्यौ बलवीर ।
अपने बालसखा जु सुदामा, मलिन बसन अरु छीन सरीर ॥
पौढ़े हे परजंक परम रुचि, रुकमिनि चौंर डुलावति तीर ।
उठि अकुलाइ अगमने लीन्हे, मिलत नैन भरि आए नीर ॥
निज आसन बैठारि स्याम-घन, पूछी कुसल कह्यौ मति धीर ।
ल्याए हौ सु देहु किन हमकौं, कहा दुरावन लागे चीर ॥

दरस परस हम भए सभागे, रही न मन मैं एकहु पीर ।
सूर सुमति तंदुल चाबत ही, कर पकर्‌यौ कमला भई धीर ।।११।।

ऐसी प्रीति की बलि जाउँ ।
सिंहासन तजि चले मिलन कौं, सुनत सुदामा नाउँ ॥
कर जोरे हरि बिप्र जानि कै, हित करि चरन पखारे ।
अंक माल दै मिले सुदामा, अर्धासन बैठारे ॥
अर्धंगी पूछति मोहन सौं, कैसे हितू तुम्हारे ।
तन अति छीन मलीन देखियत, पाउँ कहाँ तैं धारे ॥
संदीपन कैं हमऽरु सुदामा, पढ़े एक चटसार ।
सूर स्याम की कौन चलावै, भक्तनि कृपा अपार ।।१२॥

गुरु-गृह हम जब बन कौं जात ।
जोरत हमरे बदलैं लकरी, सहि सब दुख निज गात ॥
एक दिवस बरषा भई बन मैं, रहि गए ताहीं ठौर ।
इनकी कृपा भयौ नहिँ मोहिँ स्रम, गुरु आए भऐं भोर ॥
सो दिन मोहिँ बिसरत न सुदामा, जो कीन्हौ उपकार ।
प्रति उपकार कहा करौं सूरज, भाषत आप मुरार ।।१३॥

सुदामा गृह कौं गमन कियौ ।
प्रगट बिप्र कौं कछु न जनायौ, मन मैं बहुत दियौ ॥
वेई चीर कुचील वहै बिधि, मोकौं कहा भयौ ।
धरिहौं कहा जाय तिय आगैं, भरि-भरि लेत हियौ ॥
सो संतोष मानि मन हीं मन, आदर बहुत लियौ ।
सूरदास कीन्हे करनी बिनु, को पतियाइ बियौ ।।१४॥

सुदामा मंदिर देखि डर्‌यौ ।
इहाँ हुती मेरी तनक मड़ैया, को नृप आनि छर्‌यौ ।।
सीस धुनै दोऊ कर मीँड़ै, अंतर सोच पर्‌यौ ।
ठाढ़ी तिया जु मारग जोवै ऊँचैं, चरन धर्‌यौ ॥
तोहिँ आदर्‌यौ त्रिभुवन कौ नायक, अब क्यौं जात फिर्‌यौ ।
सूरदास प्रभु की यह लीला, दारिद दुःख हर्‌यौ ॥१५॥

हौं फिरि बहुरि द्वारिका आयौ ।
समुझि न परी मोहिँ मारग की, कोउ बूझौ न बतायौ ।।

कहिहैं स्याम सत्त इन छाँड्यौ, उतौ राँक ललचायौ ।
तृन की छाहँ मिटी निधि माँगत कौन दुखनि सौं छायो ॥
सागर नहीं समीप कुमति कैं, बिधि कह अंत भ्रमायौ ।
चितवत चित्त बिचारत मेरौ, मन सपनैं डर छायौ ॥
सुरतरु, दासी, दास, अस्व, गज, बिभौ बिनोद बनायौ ।
सूरज-प्रभु नँद-सुवन मित्र ह्वै, भक्तनि लाड़ लड़ायौ ॥१६॥

कहा भयौ मेरौ गृह माटी कौ ।
हौं तौ गयौ गुपालहिं भेंटन, और खरच तंदुल गाँठी कौ ।
बिनु ग्रीवा कल सुभग न आन्यौ, हुतौ कमंडल दृढ़ काठी कौ ।
घुनौ बाँस जुत बुनौ खटोला, काहु कौ पलँग कनक पाटी कौ ॥
नूतन छीरोदक जुवती पै, भूषन हुतौ न लोह माटी कौ ।
सूरदास प्रभु कहा निहोरौ, मानत रंक त्रास टाटी कौ ॥१७॥

भूलौ द्विज देखत अपनौ घर ।
औरहिं भाँति रची रचना रुचि, देखतही उपज्यौ हिरदै डर ॥
कै वह ठौर छुड़ाइ लियौ किहुँ, कोऊ आइ बस्यौ समरथ नर ।
कै हौं भूलि अनतहीं आयौ, यह कैलास जहाँ सुनियत हर ॥
बुध-जन कहत दुबल घातक बिधि, सो हम आजु लही या पटतर ।
ज्यौं नलिनी बन छाँड़ि बसै जल, दाहै हेम जहाँ पानी-सर ॥
पाछे तैं तिय उतरि कह्यौ पति, चलिए द्वार गह्यौ कर सौं कर ।
सूरदास यह सब हित हरि कौ, द्वारैं आइ भयो जु कलपतर ॥१८॥

कैसैं मिले पिय स्याम सँघाती ।
कहियै कंत कौन बिधि परसे, बसन कुचील छीन अति गाती ॥
उठिकै दौरि अंक भरि लीन्हौ, मिलि पूछी इत-उत कुसलाती ।
पटतैं छोरि लिए कर तंदुल, हरि समीप रुकमिनी जहाँ ती ॥
देखि सकल तिय स्याम-सुँदर गुन, पट दै ओट सबै मुसक्यातीं ।
सूरदास प्रभु नवनिधि दीन्ही, देते और जो तिय न रिसाती ॥१६॥

हरि बिनु कौन दरिद्र हरै ।
कहत सुदामा सुनि सुंदरि, हरि मिलन न मन बिसरै ॥
और मित्र ऐसी गति देखत, को पहिचान करै ।
बिपति परैं कुसलात न बूझै, बात नहीं बिचरै ॥

उठि भेटे हरि तंदुल लीन्हे, मोहिं न बचन फुरै ।
सूरदास लछि दई कृपा करि, टारी निधि न टरै ॥२०॥

ब्रजनारी पथिक संवाद

तब तैं बहुरि न कोऊ आयौ ।
वहै जु एक बेर ऊधौ सौं, कछु संदेसौ पायौ ॥
छिन छिन सुरति करत जदुपति की, परत न मन समुझायौ ।
गोकुलनाथ हमारैं हित लगि, लिखि हू क्यौं न पठायौ ॥
यहै विचार करौं धौं सजनी, इतौ गहरु क्यौं लायौ ।
सूर स्याम अब बेगि न मिलहू, मेघनि अंबर छायौ ॥२१॥

बहुरौ हो ब्रज बात न चाली ।
वहै सु एक बेर ऊधौ कर, कमल नयन पाती दै घाली ॥
पथिक तिहारे पा लागति हैं, मथुरा जाहु जहाँ बनमाली ।
कहियौ प्रगट पुकारि द्वार ह्वै, कालिंदी फिरि आयौ काली ॥
तब वह कृपा हुती नँदनंदन रुचि रुचि रसिक प्रीति प्रतिपाली ।
माँगत कुसुम देखि ऊँचे द्रुम, लेत उछंग गोद करि आली ॥
जब वह सुरति होति उर अंतर, लागति काम बान की भाली ।
सूरदास प्रभु प्रीति पुरातन सुमिरत, दुसह सूल उर साली ॥२२॥

तुम्हरे देस कागद मसि खूटी ।
भूख प्यास अरु नींद गई सब, बिरह लयौ तन लूटी ॥
दादुर मोर पपीहा बोले, अवधि भई सब झूठी ।
पाछैं आइ तुम कहा करौगे, जब तन जैहै छूटी ॥
राधा कहति सँदेस स्याम सौं, भई प्रीति की टूटि ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु, सखी करति हैं कूटि ॥२३॥
पथिक कह्यौ ब्रज जाइ, सुने हरि जात सिंधु तट ।
सुनि सब अँग भए सिथिल, गयौ नहिं बज्र हियौ फट ॥
नर नारी घर-घरनि सबै यह करतिं बिचारा ।
मिलिहैं कैसी भाँति हमैं अब नंद कुमारा ॥
निकट बसत हुती आस कियौ अब दूरि पयाना ।
बिना कृपा भगवान उपाइ न सूरज आना ॥२४॥

नैना भए अनाथ हमारे ।
मदनगुपाल उहाँ तैं सजनी, सुनियत दूरि सिधारे ॥

वै समुद्र हम मीन बापुरी, कैसैं जीवैं न्यारे ।
हम चातक वै जलद स्याम-घन, पियतिं सुधा-रस प्यारे ॥
मथुरा बसत आस दरसन की, जोइ नैन मग हारे ।
सूरदास हमकौं उलटी बिधि मृतकहुँ तैं पुनि मारे ॥२५॥

उती दूर तैं को आवै री ।
जासौं कहि संदेस पठाऊँ सो कहि कहन कहा पावै री ॥
सिंधु कूल इक देस बसत है, देख्यौ सुन्यौ न मन धावै री ।
तहँ नव-नगर जु रच्यौ नंद-सुत, द्वारावति पुरी कहावै री ॥
कंचन के बहु भवन मनोहर, रंक तहाँ नहिँ त्रन छावै री ।
ह्वाँ के बासी लोगनि कौं क्यौं, ब्रज कौ बसिबौ मन भावै री ॥
बहु बिधि करतिं बिलाप बिरहिनी, बहुत उपायनि चित लावैं री ।
कहा करौं कहँ जाउँ सूर प्रभु, को हरि पिय पै पहुँचावै री ॥२६॥

हौं कैसैं कै दरसन पाऊँ ।
सुनहु पथिक उहिँ देस द्वारिका जौ तुम्हरैं सँग जाऊँ ॥
बाहर भीर बहुत भूपनि की, बूझत बदन दुराऊँ ।
भीतर भीर भोग भामिनि की, तिहि ठाँ काहि पठाऊँ ॥
बुधि बल जुक्ति जतन करि उहिँ पुर हरि पिय पै पहुँचाऊँ ।
अब बन बसि निसि कुंज रसिक बिनु, कौनैं दसा सुनाऊँ ॥
स्रम कै सूर जाउँ प्रभु पासहिँ, मन मैं भलैं मनाऊँ ।
नव-किसोर मुख मुरलि बिना इन नैननि कहा दिखाऊँ ॥२७॥

तातैं अति मरियत अपसोसनि ।
मथुरा हू तैं गए सखी री, अब हरि कारे कोसनि ॥
यह अचरज सु बड़ौ मेरैं जिय, यह छाड़नि वह पोषनि ।
निपट निकाम जानि हम छाँड़ी, ज्यौं कमान बिन गोसनि ॥
इक हरि के दरसन बिनु मरियत, अरु कुबिजा के ठोसनि ।
सूर सुजरनि कहा उपजी जो, दूरि होति करि ओसनि ॥२८॥

माई री कैसैं बनै हरि कौ ब्रज आवन ।
कहियत है मधुबन तैं सजनी, कियौ स्याम कहुँ अनत गवन ॥
अगम जु पंथ दूरि दच्छिन दिसि, तहँ सुनियत सखि सिंधु लवन ।
अब हरि ह्वाँ परिवार सहित गए, मग मैं मार्‌यौ कालजवन ॥

निकट बसत मतिहीन भईं हम, मिलिहुँ न आईं सु त्यागि भवन।
सूरदास तरसत मन निसि-दिन, जदुपति लौं लै जाइ कवन ॥२९॥

सुनियत कहुँ द्वारिका बसाई।
दच्छिन दिसा तीर सागर कैं, कंचन कोट गोमती खाई॥
पंथ न चलै सँदेस न आवै, इती दूर नर कोउ न जाई।
सत जोजन मथुरा तैं कहियत, यह सुधि एक पथिक पै पाई॥
सब ब्रज दुखी नंद जसुदा हू, इक टक स्याम राम लव लाई।
सूरदास प्रभु के दरसन बिनु, भई बिदित ब्रज काम दुहाई ॥३०॥

बीर बटाऊ पाती लीजौ।
जब तुम जाहु द्वारिका नगरी, हमरे रसाल गुपालहिँ दीजौ॥
रंगभूमि रमनीक मधुपुरी, रजधानी ब्रज की सुधि कीजौ।
छार समुद्र छाँड़ि किन आवत, निर्मल जल जमुना कौ पीजौ॥
या गोकुल की सकल ग्वालिनी, देतिँ असीस बहुत जुग जीजौ।
सूरदास प्रभु हमरे कोतैं, नंद नँदन के पाइँ परीजौ ॥३१॥

रुक्मिनी कृष्ण संवाद

रुकमिनि बूझति हैं गोपालहिँ।
कहौ बात अपने गोकुल की कितिक प्रीति ब्रजबालहिँ॥
तब तुम गाइ चरावन जाते, उर धरते बनमालहिँ।
कहा देखि रीझे राधा सौं, सुंदर नैन बिसालहिँ॥
इतनी सुनत नैन भरि आए, प्रेम बिबस नँदलालहिँ।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, घोष बात जनि चालहिँ ॥३२॥

रुकमिनी मोहिँ निमेष न बिसरत, वे ब्रजबासी लोग।
हम उनसौं कछु भली न कीन्ही, निसि-दिन मरत बियोग॥
जदपि कनक मनि रची द्वारिका, विषय सकल संभोग।
तदपि मन जु हरत बंसी-बट, ललिता कैं संजोग॥
मैं ऊधौ पठयौ गोपिनि पै, दैन संदेसौ जोग।
सूरदास देखत उनकी गति, किहिँ उपदेसै सोग ॥३३॥

रुकमिनि मोहिँ ब्रज बिसरत नाहीँ।
वह क्रीड़ा वह केलि जमुन तट, सघन कदम की छाहीँ॥
गोप बधुनि की भुजा कंध धरि, बिहरत कुंजनि माहीँ।
और बिनोद कहाँ लगि बरनौं, बरनत बरनि न जाहीँ॥

जद्यपि सुख निधान द्वारावति, गोकुल के सम नाहीं।
सूरदास घन स्याम मनोहर, सुमिरि-सुमिरि पछिताहीं ॥३४॥

रुकमिनि चलौ जन्म भूमि जाहिँ।
जद्यपि तुम्हरौ बिभव द्वारिका, मथुरा कैँ सम नाहिँ ॥
जमुना कैँ तट गाइ चरावत, अमृत जल अँचवाहिँ।
कुंज केलि अरु भुजा कंध धरि, सीतल द्रुम की छाँहिँ ॥
सरस सुगंध मंद मलयानिल, बिहरत कुंजन माहिँ।
जो क्रीड़ा श्री बृंदावन मैँ, तिहूँ लोक मैँ नाहिँ ॥
सुरभी ग्वाल नंद अरु जसुमति, मम चित तैँ नट राहिँ।
सूरदास प्रभु चतुर सिरोमनि, तिनकी सेव कराहिँ ॥३५॥

कुरुक्षेत्र में कृष्ण-ब्रजबासी भेंट

ब्रज बासिनि कौ हेत, हृदय मैँ राखि मुरारी।
सब जादव सौँ कह्यौ, बैठि कै सभा मझारी।
बड़ौ परब रवि-ग्रहन, कहा कहौँ तासु बड़ाई।
चलौ सकल कुरुखेत, तहाँ मिलि न्हैयै जाई ॥
तात, मात निज नारि लिए, हरि जू सब संगा।
चले नगर के लोग, साजि रथ तरल तुरंगा ॥
कुरुच्छेत्र मैँ आइ, दियौ इक दूत पठाई।
नंद जसोमति गोपि ग्वाल सब सूर बुलाई ॥३६॥

हौँ इहाँ तेरेहि कारन आयौ।
तेरी सौँ सुनि जननि जसोदा, मोहिँ गोपाल पठायौ ॥
कहा भयौ जो लोग कहत हैँ, देवकि माता जायौ।
खान-पान परिधान सबै सुख, तैँही लाड़ लड़ायौ ॥
इतौ हमारौ राज द्वारिका, मोँ जी कछू न भायौ।
जब-जब सुरति होति उहिँ हित की, बिछुरि बच्छ ज्यौं धायौ ॥
अब हरि कुरुच्छेत्र मैँ आए, सो मैँ तुम्हैँ सुनायौ।
सब कुल सहित नंद सूरज प्रभु, हित करि उहाँ बुलायौ ॥३७॥

बायस गहगहात सुनि सुंदरि, बानी बिमल पूर्ब दिसि बोली।
आजु मिलावा होइ स्याम कौ, तू सुनि सखी राधिका भोली ॥
कुच भुज नैन अधर फरकत हैँ, बिनहिँ बात अंचल ध्वज डोली।
सोच निवारि करौ मन आनँद, मानौ भाग दसा बिधि खोली ॥

सुनत बात सजनी के मुख की, पुलकित प्रेम तरकि गई चोली ।
सूरदास अभिलाष नंदसुत, हरषी सुभग नारि अनमोली ॥३८॥

राधा नैन नीर भरि आए ।
कब धौं मिलैं स्याम सुंदर सखि, जदपि निकट हैं आए ॥
कहा करौं किहिं भाँति जाहुँ अब, पंख नहीं तन पाए ।
सूर स्याम सुंदर घन दरसैं, तन के ताप नसाए ॥३९॥

अब हरि आइहैं जनि सोचै ।
सुनु बिधुमुखी बारि नैननि तैं, अब तू काहैं मोचै ॥
लै लेखनि मसि लिखि अपने, संदेसहिं छाँड़ि सँकोचै ।
सूर सु बिरह जनाउ करत कत, प्रबल मदन रिपु पोचै ॥४०॥

पथिक, कहियौ हरि सौं यह बात ।
भक्त बछल है बिरद तुम्हारौ, हम सब किए सनाथ ॥
प्रान हमारे संग तिहारैं, हमहूँ हैं अब आवत ।
सूर स्याम सौं कहत सँदेसौ, नैनन नीर बहावत ॥४१॥

नंद जसोदा सब ब्रजबासी ।
अपने-अपने सकट साजिकै, मिलन चले अविनासी ॥
कोउ गावत कोउ बेनु बजावत, कोउ उतावल धावत ।
हरि दरसन की आसा कारन, बिविध मुदित सब आवत ॥
दरसन कियौ आइ हरि जू कौ, कहत स्वप्न कै साँची ।
प्रेम मगन कछु सुधि न रही अँग, रहे स्याम रँग राँची ॥
जासौं जैसी भाँति चाहियै, ताहि मिले त्यौं धाइ ।
देस-देस के नृपति देखि यह, प्रीति रहे अरगाइ ॥
उमँग्यौ प्रेम समुद्र दुहूँ दिसि, परिमिति कही न जाइ ।
सूरदास यह सुख सो जानै, जाकैं हृदय समाइ ॥४२॥

तेरी जीवन मूरि मिलहि किन माई ।
महाराज जदुनाथ कहावत, तबहिं हुते सिसु कुँवर कन्हाई ॥
पानि परे भुज धरे कमल मुख, पेखत पूरब कथा चलाई ।
परम उदार पानि अवलोकत, हीन जानि कछु कहत न जाई ॥
फिरि-फिरि अब सनमुख ही चितवति, प्रीति सकुच जानी जदुराई ।
अब हँसि भेंटहु कहि मोहिं निज-जन, बाल तिहारौ नंद दुहाई ॥

रोम पुलक गद गद तन तीछन, जलधारा नैननि बरषाई ॥
मिले सु तात, मात, बांधव सब, कुसल-कुसल करि प्रश्न चलाई।
आसन देइ बहुत करी बिनती, सुत धोखै तव बुद्धि हिराई ॥
सूरदास प्रभु कृपा करी अब, चितहिँ धरे पुनि करी बड़ाई ॥४३।

माधव या लगि है जग जीजत ।
जातैँ हरि सौँ प्रेम पुरातन, बहुरि नयौ करि लीजत ॥
कह हाँ तुम जदुनाथ सिंधु तट, कहँ हम गोकुल बासी ।
वह बियोग, यह मिलन कहाँ अब, काल चाल औरासी ॥
कहँ रवि राहु कहाँ यह अवसर, विधि संजोग बनायौ ।
उहिँ उपकार आजु इन नैननि, हरि दरसन सचुपायौ ॥
तब अरु अब यह कठिन परम अति, निमिषहुँ पीर न जानी।
सूरदास प्रभु जानि आपने, सबहिनि सौँ रुचि मानी ।।४४॥

ब्रजबासिनि सौ कह्यौ सबनि तैँ ब्रज-हित मेरैँ
तुमसौँ नाहीँ दूरि रहत हौँ निपटहिँ नेरैँ ॥
भजै मोहिँ जो कोइ, भजौँ मैँ तेहिँ ता भाई ।
मुकुर माहिँ ज्यौँ रूप, आपनैँ सम दरसाई ॥
यह कहि कै समदे सकल, नैन रहे जल छाइ ।
सूर स्याम कौ प्रेम कछु, मो पै कह्यौ न जाइ ॥४५॥

सबहिनि तैँ हित है जन मेरौ ।
जनम जनम सुनि सुबल सुदामा, निबहौँ यह प्रन बेरौ ॥
ब्रह्मादिक इंद्रादिक तेऊ, जानत बल सब केरौ ।
एकहि साँस उसास त्रास उड़ि, चलते तजि निज खेरौ ॥
कहा भयौ जो देस द्वारिका, कीन्हौ दूर बसेरौ ।
आपुन ही या ब्रज के कारन, करिहौँ फिरि-फिरि फेरौ ।
इहाँ-उहाँ हम फिरत साधु हित, करत असाधु अहेरौ ।
सूर हृदय तैँ टरत न गोकुल, अंग छुअत हौँ तेरौ ॥४६॥

हम तौ इतनैँ ही सचु पायौ ।
सुंदर स्याम कमल दल-लोचन, बहुरौ दरस दिखायौ ॥
कहा भयौ जो लोग कहत हैँ, कान्ह द्वारिका छायौ ।
सुनिकै बिरह दसा गोकुल की, अति आतुर ह्वै धायौ ॥

रजक धेनु गज कंस मारि कै, कीन्हौ जन कौ भायौ ॥
महाराज ह्वै मातु पिता मिलि, तऊ न ब्रज बिसरायौ ।
गोपि गोपऽरु नंद चले मिलि, प्रेम समुद्र बढ़ायौ ॥
अपने बाल गुपाल निरखि मुख, नैननि नीर बहायौ ॥
जद्यपि हम सकुचे जिय अपनैं, हरि हित अधिक जनायौ ।
वैसेइ सूर बहुरि नँदनंदन, घर-घर माखन खायौ ॥४७॥

राधा कृष्ण मिलन

हरि सौं बूझति रुकमिनि इनमैं को बृषभानु किसोरी ।
बारक हमैं दिखावहु अपने बालापन की जोरी ॥
जाकौ हेत निरंतर लीन्हे, डोलत ब्रज की खोरी ।
अति आतुर ह्वै गाइ दुहावन, जाते पर-घर चोरी ॥
रचते सेज स्वकर सुमननि की, नव-पल्लव पुट तोरी ।
बिन देखैं ताके मन तरसै, छिन बीतै जुग कोरी ॥
सूर सोच सुख करि भरि लोचन, अंतर प्रीति न थोरी ।
सिथिल गात मुख बचन फुरत नहिँ, ह्वै जु गई मति भोरी ।४८॥

बूझति है रुकुमिनि पिय इनमैं को बृषभानु किसोरी ।
नैंकु हमैं दिखरावहु अपनी बाला-पन की जोरी ॥
परम चतुर जिन कीन्हे मोहन, अल्प बैस ही थोरी ।
बारे तैं जिहिँ यहै पढ़ायौ, बुधि बल कल बिधि चोरी ॥
जाके गुन गनि ग्रंथित माला, कबहुँ न उर तैं छोरी ।
मनसा सुमिरन, रूप ध्यान उर, दृष्टि न इत उर मोरी ॥
वह लखि जुवति वृंद मैं ठाढ़ी, नील बसन तन गोरी ।
सूरदास मेरौ मन वाकी, चितवनि बंक हर्‍यौ री ॥४९॥

रुकमिनि राधा ऐसैं भैंटी ।
जैसैं बहुत दिननि की बिछुरी, एक बाप की बेटी ॥
एक सुभाव एक वय दोऊ, दोऊ हरि कौं प्यारी ।
एक प्रान मन एक दुहुनि कौ, तन करि दीसति न्यारी ॥
निज मंदिर लै गई रुकमिनी, पहुनाई बिधि ठानी ।
सूरदास प्रभु तहँ पग धारे, जहँ दोऊ ठकुरानी ॥५०॥

हरि जू इते दिन कहाँ लगाए ।
तबहिं अवधि मैं कहत न समुझी, गनत अचानक आए ॥

भली करी जु बहुरि इन नैननि, सुंदर दरस दिखाए।
जानी कृपा राज काजहु हम, निमिष नहीँ बिसराए।।
बिरहिनि बिकल बिलोकि सूर प्रभु, धाइ हृदै करि लाए।
कछु इक सारथि सौँ कहि पठयौ, रथ के तुरँग छुड़ाए ।।४१।।

हरि जू वै सुख बहुरि कहाँ।
जदपि नैन निरखत वह मूरति, फिरि मन जात तहाँ ?
मुख मुरली सिर मोर पखौवा, गर घुँघचिनि कौ हार।
आगैँ धेनु रेनु तन मंडित, तिरछी चितवनि चार।।
राति दिवस सब सखा लिए सँग, हँसि मिलि खेलत खात।
सूरदास प्रभु इत उत चितवत, कहि न सकत कछु बात।।४२।।

राधा माधव भेँट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति ह्वै जु गई।।
माधव राधा के रँग राँचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना करि सो कहि न गई।।
बिहँसि कह्यौ हम तुम नहिँ अंतर, यह कहिकै उन ब्रज पठई।
सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज-बिहार नित नई नई।।४३।।

परिशिष्ट

(क) रामचरित

रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर ।
देस-देस तैं टीकौ आयौ, रतन कनक-मनि-हीर ।
घर-घर मंगल होत बधाई, अति पुरबासिनि भीर ।
आनँद-मगन भए सब डोलत, कछू न सोध सरीर ।
मागध-बंदी-सूत लुटाए, गो-गयन्द-हय-चीर ।
देत असीस सूर, चिरजीवौ रामचन्द्र रनधीर ॥१॥

करतल-सोभित बान धनुहियाँ ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरे लाल पनहियाँ ।
दसरथ-कौसिल्या के आगैँ, लसत सुमन की छहियाँ ।
मानौ चारि हंस सरवर तैँ बैठे आइ सदेहियाँ ।
रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि, प्रगटे भूतल महियाँ ।
आए ओप देन रघुकुल कौँ, आनँद-निधि सब कहियाँ ।
यह सुख तीनि लोक मैँ नाहीँ, जो पाए प्रभु पहियाँ ।
सूरदास हरि बोलि भक्त कौँ, निरबाहत गहि बहियाँ ॥२॥

कर कंपै, कंकन नहिँ छूटै ।
राम सिया-कर-परस मगन भए, कौतुक निरखि सखी सुख लूटैँ ।
गावत नारि गारि सब दै दै, तात-भ्रात की कौन चलावै ।
तब कर-डोरि छुटै रघुपति जू, जब कौसिल्या माता आवै ।
पूँगी-फल-जुत जल निरमल धरि, आनी भरि कुंडी जो कनक की ।
खेलत जूप सकल जुवतिनि मैँ, हारे रघुपति, जिती जनक की ।
धरे निसान अजिर गृह मंगल, बिप्र बेद-अभिषेक करायौ ।
सूर अमित आनंद जनकपुर, सोइ सुकदेव पुराननि गायौ ॥३॥

परसुराम तेहिँ औसर आए ।
कठिन पिनाक कहौ किन तोर्‌यौ, क्रोधित बचन सुनाए ।
बिप्र जानि रघुबीर धीर दोउ, हाथ जोरि, सिर नायौ ।
बहुत दिननि कौ हुतौ पुरातन, हाथ छुअत उठि आयौ ।

तुम तौ द्विज, कुल पूज्य हमारे, हम-तुम कौन लराई ?
क्रोधवंत कछु सुन्यौ नहीं, लियौ सायक धनुष चढ़ाई ।
तबहूँ रघुपति क्रोध न कीन्हौ, धनुष न बान सँभार्‌यौ ।
सूरदास प्रभु रूप समुझि, बन परसुराम पग धार्‌यौ ॥४॥

कहि धौं सखी बटाऊ को हैं ?
अद्भुत बधू लिये संग डोलत देखत त्रिभुवन मोहैं ।
परम सुसील सुलच्छन जोरी, बिधि की रची न होइ ।
काकी तिनकौं उपमा दीजै, देह धरे धौं कोइ ।
इनमैं को पति आहिं तिहारे, पुरजनि पूछैं धाइ ।
राजिवनैन मैन की मूरति, सैननि दियौ बताइ ।
गईं सकल मिलि संग दूरि लौं, मन न फिरत पुर-बास ।
सूरदास स्वामी के बिछुरत, भरि भरि लेतिं उसास ॥५॥

राम धनुष अरु सायक साँधे ।
सिय-हित मृग पाछैं उठि धाए, बलकल बसन, फेंट दृढ़ बाँधे ।
नव-धन, नील-सरोज बरन बपु, बिपुल बाहु, केहरि-फल काँधे ।
इंदु बदन, राजीव नैन बर, सीस जटा सिव-सम सिर बाँधे ।
पालत, सृजत, सँहारत, सैंतत, अंड अनेक अवधि पल आधे ।
सूर भजन-महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन आराधे ॥६॥

सुनौ अनुज, इहिं बन इतननि मिलि जानकी प्रिया हरी ।
कछु इक अंगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी ।
कटि केहरि, कोकिल कल बानी, ससि मुख-प्रभा धरी ।
मृग मूसी नैननि की सोभा, जाति न गुप्त करी ।
चंपक-बरन, चरन-कर कमलनि, दाड़िम दसन लरी ।
गति मराल अरु बिंब अधर-छबि, अहि अनूप कबरी ।
अति करुना रघुनाथ गुसाईं, जुग ज्यौं जाति घरी ।
सूरदास प्रभु प्रिया प्रेम-बस, निज महिमा बिसरी ॥७॥

बिछुरी मनौ संग तैं हिरनी ।
चितवत रहत चकित चारौं दिसि, उपजी बिरह तन जरनी ।
तरुवर-मूल अकेली ठाढ़ी, दुखित राम की घरनी ।
बसन कुचील, चिहुर लपिटाने, बिपति जाति नहिं बरनी ।

लेति उसास नयन जल भरि-भरि, धुकि सो परै धरि धरनी।
सूर सोच जिय पोच निसाचर, राम नाम की सरनी ॥८॥

सो दिन त्रिजटी, कहु कब ऐहै ?

जा दिन चरनकमल रघुपति के हरषि जानकी हृदय लगैहै।
कबहुँक लछिमन पाइ सुमित्रा, माइ-माइ कहि मोहिं सुनैहै।
कबहुँक कृपावंत कौशिल्या, बधू-बधू कहि मोहिं बुलैहै।
जा दिन कंचनपुर प्रभु ऐहैं विमल ध्वजा रथ पर फहरैहै।
ता दिन जनम सुफल करि मानौं, मेरी हृदय-कालिमा जैहै।
जा दिन राम रावनहिं मारैं, ईसहिं लै दससीस चढ़ैहै।
ता दिन सूर राम पै सीता सरबस वारि बधाई दैहै ॥९॥

जननी, हौं अनुचर रघुपति कौ।

मति माता करि कोप सरापै, नहिं दानव ठग मति कौ।
आज्ञा होई, देउँ कर मुँदरी, कहौं सँदेसौ पति कौ।
मति हिय बिलख करौ सिय, रघुबर हतिहैं कुल दैयत कौ।
कहौ तौ लंक उखारि डारि देउँ, जहाँ पिता संपति कौ।
कहौ तौ मारि-सँहारि निसाचर, रावन करौं अगति कौ।
सागर-तीर भीर बनचर की, देखि कटक रघुपति कौ।
अबै मिलाऊँ तुम्हैं सूर प्रभु, राम-रोष डर अति कौ ॥१०॥

सुनु कपि, वै रघुनाथ नहीं ?

जिन रघुनाथ पिनाक पिता-गृह तोर्यौ निमिष महीं।
जिन रघुनाथ फेरि भृगुपति-गति डारी काटि तहीं।
जिन रघुनाथ हाथ खर-दूषन-प्रान हरे सरहीं।
कै रघुनाथ तज्यौ प्रन अपनौ, जोगिनि दसा गही ?
कै रघुनाथ दुखित कानन, कै नृप भए रघुकुलहीं।
कै रघुनाथ अतुल बल राच्छस दसकंधर डरहीं ?
छाँड़ी नारि बिचारि पवन-सुत लंक बाग बसहीं।
कै हौं कुटिल, कुचील, कुलच्छनि, तजी कंत तबहीं !
सूरदास स्वामी सौं कहियौ अब बिरमाहिं नहीं ॥११॥

मैं परदेसिन नारि अकेली।

बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, मातु-पिता न सहेली।

रावन भेष धर्‌यो तपसी कौ, कत मैं भिच्छा मेली।
अति अज्ञान मूढ़-मति मेरी, राम-रेख पग पेली।
बिरह-ताप तन अधिक जरावत, जैसैं देव द्रुम बेली।
सूरदास प्रभु बेगि मिलावौ प्रान जात हैं खेली ॥१२॥

तब हौं नगर अजोध्या जैहौं।
एक बात सुनि निस्चय मेरी, राज्य बिभीषन दैहौं।
कपि-दल जोरि और सब सेना, सागर सेतु बधैहौं।
काटि दसौ सिर, बीस भुजा तब दसरथ सुत जु कहैहौं।
छिन इक माहिँ लंक गढ़ तोरौं, कंचन-कोट ढहैहौं।
सूरदास प्रभु कहत बिभीषन, रिपु हति सीता लैहौं ॥१३॥

दूसरैं कर बान न लैहौं।
सुनि सुग्रीव, प्रतिज्ञा मेरी, एकहिँ बान असुर सब हैहौं।
सिव-पूजा जिहिँ भाँति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं।
दैत्य प्रहारि पाप-फल-प्रेरित, सिर माला सिव सीस चढ़ैहौं।
मनौ तूल-गन परत अगिनि-मुख, जारि जड़नि जम-पंथ पठैहौं।
करिहौं नाहिँ बिलंब कछू अब, उठि रावन सम्मुख ह्वै धैहौं।
इमि दमि दुष्ट देव द्विज मोचन, लंक बिभीषन, तुमकौं दैहौं।
लछिमन, सिया समेत सूर कपि, सब सुख सहित अयोध्या जैहौं॥१४॥

आजु अति कोपे हैं रन राम
ब्रह्मादिक आरूढ़ बिमाननि, देखत हैं संग्राम।
घन तन दिव्य कवच सजि करि अरु कर धार्‌यौ सारंग।
सुचि करि सकल बान सूधे करि, कटि-तट कस्यौ निषंग।
सुरपुर तैं आयौ रथ सजि कै, रघुपति भए सवार।
काँपी भूमि कहा अब ह्वैहै, सुमिरत नाम मुरारि।
छोभि सिंधु, सेष-सिर कंपित, पवन भयौ गति पंग।
इंद्र हँस्यौ, हर हिय बिलखान्यौ, जानि बचन कौ भंग।
धर-अंबर, दिसि-बिदिसि, बढ़े अति सायक किरन-समान।
मानौ महा-प्रलय के कारन उदित उभय षट भान।
टूटत धुजा पताक छत्र-रथ, चाप-चक्र-सिरत्रान।
जूझत सुभट जरत ज्यौं दव द्रुम बिनु साखा बिनु पान।

स्रोनित छिंछ उछरि आकासहिँ, गज-बाजिनि-सिर लागि।
मानौ निकरि तरनि रंध्रनि तैँ, उपजी है अति आगि।
परि कबंध भहराइ रथनि तैँ, उठत मनौ झर जागि।
फिरत सृगाल सज्यौ सब काटत चलत सो सिर लै भागि।
रघुपति रिस पावक प्रचंड अति, सीता स्वास समीर।
रावन-कुल अरु कुंभकरन बन सकल सुभट रनधीर।
भए भस्म कछु बार न लागी, ज्यौं ज्वाला पट चीर।
सूरदास प्रभु आपु बाहुबल कियौ निमिष मैँ कीर ॥१५॥

बैठी जननि करति सगुनौती।
लछिमन-राम मिलैँ अब मोकौँ, दोउ अमोलक मोती।
इतनी कहत सुकाग उहाँ तैँ हरी डार उड़ि बैठ्यौ।
अंचल गाँठि दई, दुख भाज्यौ, सुख जु आनि उर पैठ्यौ।
जब लौँ हौँ जीवौँ जीवन भर, सदा नाम तव जपिहौँ।
दधि-ओदन दोना भरि दैहौँ, अरु भाइनि मैँ थपिहौँ।
अब कैँ जौ परचौ करि पावौँ अरु देखौँ भरि आँखि।
सूरदास सोने कैँ पानी मढ़ौँ चोँच अरु पाँखि ॥१६॥

हमारी जन्मभूमि यह गाउँ।
सुनहु सखा सुग्रीव-विभीषन, अवनि अजोध्या नाउँ।
देखत बन-उपवन-सरिता-सर, परम मनोहर ठाउँ।
अपनी प्रकृति लिए बोलत हौँ, सुर पुर मैं न रहाउँ।
ह्याँ के बासी अवलोकत हौँ, आनँद उर न समाउँ।
सूरदास जौ बिधि न सँकोचै, तौ बैकुंठ न जाउँ ॥१७॥

बिनती किहिँ बिधि प्रभुहिँ सुनाऊँ ?
महाराज रघुबीर धीर कौँ, समय न कबहूँ पाऊँ !
जाम रहत जामिनि के बीतैँ, तिहिँ औसर उठि धाऊँ।
सकुच होत सुकुमार नीँद मैँ, कैसैँ प्रभुहिँ जगाऊँ।
दिनकर-किरनि-उदित, ब्रह्मादिक-रुद्रादिक इक ठाऊँ।
अगनित भीर अमर-मुनि गन की, तिहिँ तैँ ठौर न पाऊँ।
उठत सभा दिन मधि, सैनापति भीर देखि, फिरि आऊँ।
न्हात-खात सुख करत साहिबी, कैसैँ करि अनखाऊँ।

रजनी-मुख आवत गुन-गावत, नारद तुंबुर नाऊँ।
तुमहीँ कहौ कृपा निधि रघुपति, किहिं गिनती मैं आऊँ?
एक उपाउ करौ कमलापति, कहौ तौ कहि समुझाऊँ।
पतित-उधारन नाम सूर प्रभु, यह रुक्का पहुँचाऊँ ॥१८॥

(ख) सूरसागर का द्वादशस्कंधी रूप

स्कंध	अवतार	पद-संख्या
१	१ व्यास (विनयपद १-२२३)	३४३
२	(चौबीस अवतारों की सूची)	३८
३	२ सनकादि, ३ वाराह,	
	४ कपिलदेव	१३
४	५ दत्तात्रेय, ६ यज्ञपुरुष,	
	७ हरि (ध्रुववरदेन), ८ पृथु	१३
५	९ ऋषभदेव	४
६	१० अजामील उद्धार (अथवा मनु)	८
७	नृसिंह, १२ नारद	८
८	१३ गजमोचन (अथवा हयग्रीव), १४ कूर्म,	
	१५ धन्वन्तरि, १६ वामन, १७ मत्स्य	१७
९	१८ राम, १९ परशुराम,	१७४
१०	२० कृष्ण, पूर्वार्द्ध (ब्रज चरित)	४१६०
	उत्तरार्द्ध (द्वारिका चरित)	१५९
११	२१ नारायण, २२ हंस	४
१२	२३ बुद्ध, २४ कल्कि	५
		४९३६

सूचना—दस मुख्य अवतार रेखांकित हैं।

लिखि आई ब्रजनाथ की छाप।
ऊधौ बाँधे फिरत सीस पर, बाँचत आवै ताप ॥
उलटी रीति नंदनंदन की, घर-घर भयौ संताप।
कहियौ जाइ जोग आराधैं, अवगति अकथ अमाप ॥
हरि आगैं कुबिजा अधिकारिनि, को जीवै इहिं दाप।
सूर सँदेस सुनावन लागे, कहौ कौन यह पाप ॥४३॥

कोउ ब्रज बाँचत नाहिँन पाती।
कत लिखि-लिखि पठवत नँद-नंदन कठिन बिरह की काँती ॥
नैन सजल कागद अति कोमल, कर अँगुरी अति ताती।
परसैं जरै, बिलोकैं भीँजै, दुहूँ भाँति दुख छाती ॥
को बाँचै ये अंक सूर-प्रभु कठिन मदन-सर-घाती।
सब सुख लै गए स्याम मनोहर, हमकौं दुख दै थाती ॥४४॥

उधौ कहा करैं लै पाती ॥
जौ लौं मदनगुपाल न देखैं, बिरह जरावत छाती ॥
निमिष निमिष मोहि बिसरत नाहीं सरद सुहाई राती।
पीर हमारी जानत नाहीं, तुम हौ स्याम सँघाती ॥
यह पाती लै जाहु मधुपुरी, जहँ वै बसैं सुजाती।
मन जु हमारे उहाँ लै गए, काम कठिन सर घाती ॥
सूरदास-प्रभु कहा चहत हैं, कोटिक बात सुहाती।
एक बेर मुख बहुरि दिखावहु, रहैं चरन रज-राती ॥४५॥

भ्रमर गीत

इहिं अंतर मधुकर इक आयौ।
निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै, सुंदर सब्द सुनायौ ॥
पूछन लागीं ताहि गोपिका, कुबिजा तोहिं पठायौ।
कीधौं सूर स्याम सुंदर कौं, हमैं सँदेसौ लायौ ॥४६॥

(मधुप तुम) कहौ कहाँ तैं आए हौ।
जानति हैं अनुमान आपनै, तुम जदुनाथ पठाए हौ ॥
वैसेइ बसन, बरन तन सुंदर, वेइ भूषन सजि ल्याए हौ।
लै सरबसु सँग स्याम सिधारे, अब का पर पहिराए हौ ॥
अहो मधुप एकै मन सबकौ, सु तौ उहाँ लै छाए हौ।
अब यह कौन सयान बहुरि ब्रज, ता कारन उठि धाए हौ ॥

मधुबन की मानिनी मनोहर, तहीँ जात जहँ भाए हौ।
सूर जहाँ लौं स्याम गात हैँ, जानि भले करि पाए हौ ।।४७।।

रहु रे मधुकर मधु मतवारे।
कौन काज या निरगुन सौँ, चिर जीवहु कान्ह हमारे ॥
लोटत पीत पराग कीच मैं, नीच न अंग सँम्हारे।
बारंबार सरक मदिरा की, अपरस रटत उघारे ।।
तुम जानत हौ वैसी ग्वारिनि, जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबहिनि बिरमावत, जेते आवत कारे ।।
सुंदर बदन कमल-दल लोचन, जसुमति नंद-दुलारे।
तन मन सूर अरपि रहीँ स्यामहि, कापै लेहिँ उधारे ।।४८।।

मधुकर हम न होंहि वै बेलि।
जिन भजि तजि तुम फिरत और रँग, करन कुसुम-रस केलि ।।
बारे तैँ बर बारि बढ़ी हैँ, अरु पोषी पिय पानि।
बिनु पिय परस प्रात उठि फूलत, होति सदा हित हानि ।।
ये बेली बिरहीँ बृंदावन, उरझीँ स्याम तमाल।
प्रेम-पुहुप-रस-बास हमारे, बिलसत मधुप गोपाल ।।
जोग समीर धीर नहिँ डोलतिँ, रूप डार दृढ़ लागीँ।
सूर पराग न तजतिँ हिए तैँ, श्री गुपाल अनुरागीँ ।।४९।।

उद्धव-गोपी संवाद

पहला संवाद

सुनौ गोपी हरि कौ संदेस।
करि समाधि अंतर गति ध्यावहु, यह उनकौ उपदेस ।।
वै अविगत अविनासी पूरन, सब-घट रहे समाइ।
तत्व ज्ञान बिनु मुक्ति नहीँ है, बेद पुराननि गाइ ।।
सगुन रूप तजि निरगुन ध्यावहु, इक चित इक मन लाइ।
वह उपाइ करि बिरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आइ ।।
दुसह सँदेस सुनत माधौ कौ, गोपी जन बिलखानी।
सूर बिरह की कौन चलावै, बूड़तिँ मनु बिनु पानी ।।५०।।

परी पुकार द्वार गृह-गृह तैँ, सुनौ सखी इक जोगी आयौ।
पवन सधावन, भवन छुड़ावन, रवन-रसाल, गोपाल पठायौ ।।

आसन बाँधि, परम ऊरध चित, बनत न तिनहिं कहा हित ल्यायौ।
कनक बेलि, कामिनि ब्रजबाला, जोग अगिनि दहिबे कौं धायौ॥
भव-भय हरन, असुर मारन हित, कारन कान्ह मधुपुरी छायौ।
जादव मैं ब्रज एकौ नाहीं, काहैं उलटी जस बिथरायौ॥
सुथल जु स्याम थाम मैं बैठौ, अबलनि प्रति अधिकार जनायौ।
सूर बिसारी प्रीति साँवरै, भली चतुरता जगत हँसायौ॥२१॥

देन आए ऊधौ मत नीकौ।
आवहु री मिलि सुनहु सयानी, लेहु सुजस कौ टीकौ॥
तजन कहत अंबर आभूषन, गेह नेह सुत ही कौ।
अंग भस्म करि सीस जटा धरि, सिखवत निरगुन फीकौ॥
मेरे जान यहै जुवतिनि कौ, देत फिरत दुख पी कौ।
ता सराप तैं भयौ स्याम तन, तउ न गहत डर जी कौ॥
जाकी प्रकृति परी जिय जैसी, सोच न भली बुरी कौ।
जैसैं सूर ब्याल रस चाखैं, मुख नहिं होत अमी कौ॥२२॥

प्रकृति जो जाकैं अंग परी।
स्वान पूँछ कोउ कोटिक लागै, सूधी कहुँ न करी॥
जैसैं काग भच्छ नहिं छाँड़ै, जनमत जौन घरी।
धोए रंग जात नहिं कैसेहुँ, ज्यौं कारी कमरी॥
ज्यौं अहि डसत उदर नहिं पूरत, ऐसी धरनि धरी।
सूर होइ सो होइ सोच नहिं, तैसेइ एऊ री॥२३॥

समुझि न परति तिहारी ऊधौ।
ज्यौं त्रिदोष उपजैं जक लागत, बोलत बचन न सूधौ॥
आपुन कौ उपचार करौ अति तब औरनि सिख देहु।
बड़ौ रोग उपज्यौ है तुमकौं भवन सबारैं लेहु॥
ह्वाँ भेषज नाना भाँतिन के, अरु मधु-रिपु से बैद।
हम कातर डरपतिं अपनैं सिर, यह कलंक है खेद॥
साँची बात छाँड़ि अलि तेरी, झूठी को अब सुनिहै।
सूरदास मुक्काहल भोगी, हंस ज्वारि क्यौं चुनिहै॥२४॥

ऊधौ हम आजु भईं बड़ भागी।
जिन अँखियनि तुम स्याम बिलोके, ते अँखियाँ हम लागीं॥

जैसे सुमन बास लै आवत, पवन मधुप अनुरागी।
अति आनंद होत है तैसैं, अंग-अंग सुख रागी॥
ज्यौं दरपन मैं दरस देखियत, दृष्टि परम रुचि लागी।
तैसें सूर मिले हरि हमकौं, बिरह-बिथा तन-त्यागी॥४५॥

(अलि हौं) कैसैं कहौं हरि के रूप रसहिं।
अपने तन मैं भेद बहुत बिधि, रसना जानै न नैन दसहिं॥
जिन देखे ते आहिं बचन बिनु, जिनहिं बचन दरसन न तिसहिं।
बिनु बानी ये उमँगि प्रेम जल, सुमिरि-सुमिरि वा रूप जसहिं॥
बार-बार पछितात यहै कहि, कहा करौं जो बिधि न बसहिं।
सूर सकल अंगनि की यह गति, क्यौं समुझावैं छपद पसुहिं॥४६॥

हम तौ सब बातनि सचु पायौ।
गोद खिलाइ पिवाइ देह पय, पुनि पालनैं झुलायौ॥
देखति रही फनिग की मनि ज्यौं, गुरुजन ज्यौं न भुलायौ।
अब नहिं समुझति कौन पाप तैं, बिधना सो उलटायौ॥
बिनु देखैं पल-पल नहिं छन-छन, ये ही चित ही चायौ।
अबहिं कठोर भए ब्रजपति-सुत, रोवत मुँह न धुवायौ॥
तब हम दूध दही के कारन, घर-घर बहुत खिझायौ।
सो अब सूर प्रगट ही लाग्यौ, योगऽरु ज्ञान पठायौ॥४७॥

मधुकर कहिए काहि सुनाइ।
हरि बिछुरत हम जिते सहे दुख, जिते बिरह के घाइ॥
बरु माधौ मधुबन ही रहते, कत जसुदा कैं आए।
कत प्रभु गोप-बेष ब्रज धरि कै, कत ये सुख उपजाए॥
कत गिरि धर्‌यौ, इंद्र मद मेट्यौ, कत बन रास बनाए।
अब कहा निठुर भए अबलनि कौं, लिखि लिखि जोग पठाए॥
तुम परबीन सबै जानत हौ, तातैं यह कहि आई।
अपनी को चालै सुनि सूरज, पिता जननि बिसराई॥४८॥

दूसरा संवाद

जानि करि बावरी जनि होहु।
तत्व भजैं वैसी ह्वै जैहौ, पारस परसैं लोहु॥
मेरौ बचन सत्य करि मानौ, छाँड़ौ सबकौ मोहु।
तौ लगि सब पानी की चुपरी, जौ लगि अस्थित दोहु॥

अरे मधुप ! बातैँ ये ऐसी, क्यौँ कहि आवतिँ तोह ।
सूर सुबस्ती छाड़ि परम सुख, हमैँ बतावत खोह ॥५९॥

ऊधौ हरि गुन हम चकडोर ।
गुन सौँ ज्यौँ भावै त्यौँ फेरौ, यहै बात कौ ओर ॥
पैँड़ पैँड़ चलियै तो चलियै, ऊबट रपटै पाइँ ।
चकडोरी की रीति यहै फिरि, गुन हीँ सौँ लपटाइ ॥
सूर सहज गुन ग्रंथि हमारैँ, दई स्याम उर माहिँ ।
हरि के हाथ परे तौ छूटै, और जतन कछु नाहिँ ॥६०॥

उलटी रीति तिहारी ऊधौ, सुनै सो ऐसी को है ।
अलप बयस अबला अहीरि सठ तिनहिँ जोग कत सोहै ॥
बूची खुभी, आँधरी काजर, नकटी पहिरै बेसरि ।
मुड़ली पटिया पारौ चाहै, कोढ़ी लावै केसरि ॥
बहिरी पति सौं मतौ करै तौ, तैसोइ उत्तर पावै ।
सो गति होइ सबै ताकी जो, ग्वारिनि जोग सिखावै ॥
सिखई कहत स्याम की बतियाँ, तुमकौँ नाहीँ दोष ।
राज काज तुम तैँ न सरैगौ, काया अपनी पोष ॥
जाते भूलि सबै मारग मैँ, इहाँ आनि का कहते ।
भली भई सुधि रही सूर, नतु मोह धार मैँ बहते ॥६१॥

अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी ।
देख्यौ चाहति कमलनैन कौँ निसि-दिन रहतिँ उदासी ॥
आए ऊधौ फिरि गए आँगन, डारि गए गर फाँसी ।
केसरि तिलक मोतिनि की माला, बृंदावन के बासी ॥
काहू के मन की कोउ जानत, लोगनि के मन हाँसी !
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौँ, करवत लैहौँ कासी ॥६२॥

जब तैँ सुंदर बदन निहार्यौ ।
ता दिनतैँ मधुकर मन अटक्यौ, बहुत करी निकरै न निकार्यौ ॥
मातु, पिता, पति, बंधु, सुजन नहिँ, तिनहूँ कौ कहिबौ सिर धार्यौ ।
रही न लोक लाज मुख निरखत, दुसह क्रोध फीकौ करि डार्यौ ॥
ह्वैबौ होइ सु होइ कर्मबस, अब जी कौ सब सोच निवार्यौ ।
दासी भईँ जु सूरदास-प्रभु, भलौ पोच अपनौ न बिचार्यौ ॥६३॥

और सकल अंगनि तैं ऊधौ, अँखियाँ अधिक दुखारी।
अतिहिँ पिराति सिराति न कबहूँ, बहुत जतन करि हारी॥
मग जोवत पलकौ नहिँ लावतिँ, बिरह बिकल भइँ भारी।
भरि गइ बिरह बयारि दरस बिनु, निसि दिन रहति उघारी॥
ते अलि अब ये ज्ञान सलाकैं, क्यौं सहि सकतिँ तिहारी।
सूर सु अंजन आँजि रूप रस, आरति हरहु हमारी॥६४॥

उपमा नैन न एक रही।
कवि जन कहत कहत सब आए, सुधि कर नाहिँ कही॥
कहि चकोर बिधु मुख बिनु जीवत, भ्रमर नहीँ उड़ि जात।
हरि-मुख कमल कोष बिछुरे तैं, ठाले कत ठहरात॥
ऊधौ बधिक ब्याध ह्वै आए, मृग सम क्यौं न पलात।
भागि जाहिँ बन सघन स्याम मैं, जहाँ न कोऊ घात॥
खंजन मन-रंजन न होहिँ ये, कबहुँ नहीँ अकुलात।
पंख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात॥
प्रेम न होइ कौन बिधि कहिये, झूठैं हीँ तन आड़त।
सूरदास मीनता कछू इक, जल भरि कबहुँ न छाँड़त॥६५॥

ऊधौ अँखियाँ अति अनुरागी।
इकटक मग जोवतिँ अरु रोवतिँ, भूलेहुँ पलक न लागी॥
बिनु पावस पावस करि राखी, देखत हौ बिदमान।
अब धौं कहा कियौ चाहत हौ, छाँड़ौ निरगुन ज्ञान॥
तुम हौ सखा स्याम सुंदर के, जानत सकल सुभाइ।
जैसैं मिलैं सूर के स्वामी, सोई करहु उपाइ॥६६॥

सब खोटे मधुबन के लोग।
जिनके संग स्याम सुंदर सखि, सीखे हैं अपजोग॥
आए हैं ब्रज के हित ऊधौ, जुवतिनि कौ लै जोग।
आसन, ध्यान नैन मूँदे सखि, कैसैं कढ़ै वियोग॥
हम अहीरि इतनी का जानैं, कुबिजा सौं संजोग,
सूर सुवैद कहा लै कीजै, कहैं न जानै रोग॥६७॥

मधुबन लोगनि को पतियाइ।
मुख औरै अंतरगति औरै, पतियाँ लिखि पठवत जु बनाइ॥

ज्यौं कोइल-सुत काग जियावै, भाव भगति भोजन जु खवाइ।
कुहुकि कुहुकि आऐं बसंत रितु, अंत मिलै अपने कुल जाइ॥
ज्यौं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, बहुरि न बूझै बातैं आइ।
सूर जहाँ लगि स्याम गात हैं, तिनसौं कीजै कहा सगाइ॥६८॥

आए जोग सिखावन पाँड़े।
परमारथी पुराननि लादे, ज्यौं बनजारे टाँड़े।
हमरे गति-पति कमल-नयन की, जोग सिखैं ते राँड़े।
कहौ मधुप कैसे समाहिंगे, एक म्यान दो खाँड़े॥
कहु षटपद कैसैं खैयतु है. हाथिनि कैं सँग गाँड़े।
काकी भूख गई बयारि भषि, बिना दूध घृत माँड़े।
काहे कौं झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डाँड़े।
सूरदास तीनौ नहिं उपजत, धनिया, धान कुम्हाँड़े॥६९॥

तीसरा संवाद

ज्ञान बिना कहुँवै सुख नाहीं।
घट घट ब्यापक दारु अगिनि ज्यौं, सदा बसै उर माहीं॥
निरगुन छाँड़ि सगुन कौं दौरति, सु धौं कहौ किहिं पाहीं।
तत्व भजौ जो निकट न छूटै, ज्यौं तनु तैं परछाहीं॥
तिहि तैं कहौ कौन सुख पायौ, जिहिं अब लौं अवगाहीं।
सूरदास ऐसैं करि लागत, ज्यौं कृषि कीन्हे पाही॥७०॥

ऊधौ कही सु फेरि न कहिऐ।
जौ तुम हमैं जिवायौ चाहत, अनबोले ह्वै रहिऐ॥
प्रान हमारे घात होत हैं, तुम्हरे भाऐं हाँसी।
या जीवन तैं मरन भलौ है, करवत लैहैं कासी॥
पूरब प्रीति सँभारि हमारी, तुमकौं कहन पठायौ।
हम तौ जरि बरि भस्म भईं तुम, आनि मसान जगायौ॥
कै हरि हमकौं आनि मिलावहु, कै लै चलियै साथै।
सूर स्याम बिनु प्रान तजति हैं, दोष तुम्हारे माथैं॥७१॥

घर ही के बाढ़े रावरे।
नाहिन मीत-वियोग बस परे, अनब्यौंगे अलि बावरे॥
बरु मरि जाइ चरैं नहिं तिनुका, सिंह को यहै स्वभाव रे।
स्रवन सुधा-मुरली के पोषे, जोग जहर न खवाव रे॥

ऊधौ हमहिँ सीख कह दैहौ, हरि बिनु अनत न ठाँव रे ।
सूरजदास कहा लै कीजै, थाही नदिया नाव रे ।।७२।।

हमकौं हरि की कथा सुनाउ ।
ये आपनी ज्ञान गाथा अलि, मथुरा ही लै जाउ ।।
नागरि नारि भलैं समझैंगी, तेरौ बचन बनाउ ।
पा लागौं ऐसी इन बातनि, उनही जाइ रिझाउ ।।
जौ सुचि सखा स्याम सुंदर कौ, अरु जिय मैं सति भाउ ।
तौ बारक आतुर इन नैननि, हरि मुख आनि दिखाउ ।।
जौ कोउ कोटि करै कैसिहुँ बिधि, बल विद्या व्यवसाउ ।
तउ सुनि सूर मीन कौं जल बिनु, नाहिँन और उपाउ ।।७३।।

ऊधौ बानी कौन ढरैगौ, तोसौं उत्तर कौन करैगो ।
या पाती के देखत हीं अब, जल सावन कौ नैन ढरैगौ ।।
बिरह-अगिनि तन जरत निसा-दिन, करहिं छुवत तुव जोग जरैगौ ।
नैन हमारे सजल हैं तारे, निरखत ही तेरौ ज्ञान गरैगौ ।।
हमहिँ वियोगऽरु सोग स्याम कौ, जोग रोग सौं कौन अरैगौ ।
दिन दस रहौ जु गोकुल महियाँ, तब तेरौ सब ज्ञान मरैगौ ।।
सिंगी सेल्ही भसमऽरु कंथा, कहि अलि काके गरैं परैगौ ।
जे ये लट हरि सुमननि गूँधी, सीस जटा अब कौन धरैगौ ।।
जोग सगुन लै जाहु मधुपुरी, ऐसै निरगुन कौन तरैगौ ।
हमहिँ ध्यान पल छिन मोहन कौं, बिनु दरसन कछुवै न सरैगौ ।।
निसि दिन सुमिरन रहत स्याम कौ, जोग अगिनि मैं कौन जरैगौ ।
कैसैंहु प्रेम नेम मोहन कौं, हित चित तैं हमरैं न टरैगौ ।।
नित उठि आवत जोग सिखावन, ऐसी बातनि कौन भरैगौ ।
कथा तुम्हारी सुनत न कोऊ, ठाढ़े ही अब आप ररैगौ ।।
बादिहिँ रटत उठत अपने जिय, को तोसौं बेकाज लरैगौ ।
हम अँग अंग स्याम रँग भीनी, को इन बातनि सूर डरैगौ ।।७४।।

ऊधौ तुम ब्रज की दसा बिचारौ ।
ता पाछैं यह सिद्धि आपनी, जोग कथा बिस्तारौ ।।
जा कारन तुम पठए माधौ, सो सोचौ जिय माहीं ।
केतिक बीच बिरह परमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं ।।